लोहे की लाशें

सुदर्शन मजीठिया
एम० ए०, पी-एच० डी०

अपनी बात…

तिलनखेड़ी बस्ती…। नागपुर छोड़े वैसे तो एक अरसा हो गया है, परन्तु लगता है कि जैसे यह बस्ती और उसके लोग मेरे अवचेतन मन पर छाए हुए हैं, जैसे कि मुझपर उनका एक प्रकार का ऋण है। मुझ जैसे एक साधारण और औसत दर्जे के मनुष्य के लिए इस ऋण को चुकाना संभव तो नहीं है, हां इतना मैंने अवश्य करने का प्रयास किया है, कि उजड़ती हुई इस बस्ती के निचले तबके के लोगों के मोह, हर्ष, शोक, वैर, करुणा, सुख-दुख, विषाद, कुण्ठा, ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, लालसा और बढ़ती हुई महगाई के परिणामस्वरूप असंतोष आदि के भावों को वाणी देने का प्रयास करूँ। आज की औद्योगिक सस्कृति का तकाज़ा है कि शहरों का विकास हो और हो भी रहा है। नागपुर के बृहत्तर निर्माण के कारण ही तिलनखेड़ी के आसपास—दूर तक किसी समय वीरान रहने वाले मैदानों मे आज एक-से-एक आलीशान इमारतें बन गई हैं। चौड़े रास्ते बन गए हैं—'सभ्य' लोगों की सख्या शहर मे बढ़ती जा रही है। सभ्यता के ये भारी-भरकम रोलर तिलनखेड़ी बस्ती को रौंद देना चाहते हैं। नवनिर्माण का यह अजगर सारी बस्ती को ग्रस लेना चाहता है। इससे पहले कि यह बस्ती ही नक्शे से मिट जाए, इसकी कहानी तो कम-से-कम आप तक पहुँचा दूँ।

आज सारा राष्ट्र विघटन से पीड़ित है। जुलूस, हड़ताल, नारेबाज़ी, घेरे तथा बंध जैसे आज के दैनिक जीवन की प्रक्रिया के अग-से बन गए हैं। राजनीतिक पार्टियों में मात्र सत्ता प्राप्त करने की ही होड़ लगी है। जनता के हितों के नाम पर समस्त राजनीतिक पार्टियाँ घोर स्वार्थलिप्सा में ही रत हैं। पुरानी मान्यताएँ और परम्पराएँ छिन्न-भिन्न हो रही हैं। आज का मनुष्य विभिन्न तनावों की ही छाया मे जी रहा है। ये तनाव, जो कि उसकी भावनाओं पर हावी हो गए हैं। जीवन के चले आते मूल्य टूट गए हैं। इन टूटे हुए मूल्यों को नए मूल्यों ने स्थानांतरित नहीं किया। परिणाम

है एक अनिश्चितता। इस टूटे हुए राष्ट्र का टूटा हुआ मनुष्य, इसी अनिश्चय के चौराहे पर खड़ा है। सामने एक भीषण प्रश्नचिह्न है, कौन उत्तर देगा—या दे सकता है ?

तिलनखेड़ी बस्ती पर भला इन सबका प्रभाव कैसे न पड़ता ?

और इसी बस्ती में और उसके आसपास फैली हैं लाशें…। स्वार्थ-लिप्सा में रत नेता, सत्ता और सम्पत्ति से मदान्ध वर्ग, जड़ परम्पराएँ और अन्धविश्वास, धार्मिक रूढ़ियाँ और खोखले आदर्श—ही ये लाशें हैं। इन्हीं लाशों की सड़ाँध के साये में निम्न और मध्यम वर्ग जी रहा है। इसके कारण ही एक मौत का साया धीरे-धीरे सारे देश पर फैलता चला जा रहा है। यह एक कोढ़ है, जो धीरे-धीरे सारे देश को ग्रस रहा है। और यह भी एक व्यंग्य है कि लोग जीवन का नहीं बल्कि लाशों का आदर करते हैं। पर ये लाशें हैं लोहे की…, इन्हें पिघलाने और गलाने के लिए जिस आग की ज़रूरत है वह भला कहाँ से आएगी ? सामान्य क्रांतियों की भाषा, तोड़फोड़, जुलूस, हड़ताल और आज की नारेबाज़ी की आग से इन लाशों को गलाया या पिघलाया नहीं जा सकता। यह आग आज की कोई भी राजनीतिक पार्टी नहीं दे सकती। ज़रूरत है उस आग की जो इन लाशों को जलाकर, इनके लोहे को गलाकर फौलाद का निर्माण कर सके—वह फौलाद, जो एक नए देश और एक नए युग का सृजन करे।

पाँच वर्ष पहले इस रचना को आरम्भ किया था। तब से आज तक कितना युग-परिवर्तन हो गया है। नवीन यांत्रिक विस्मय शाश्वत सत्यों को ही बदल रहे हैं। इससे पहले कि पुस्तक प्रेस से निकले वह पुरानी हो जाती है, परन्तु मेरी कहानी तो केवल सन् बयालीस से बासठ तक ही है।

इस रचना को प्रकाश में लाने का श्रेय राधाकृष्ण प्रकाशन के श्री ओमप्रकाश जी को है। यदि उन्होंने इस कार्य में व्यक्तिगत रुचि न ली होती तो शायद यह कार्य हो ही नहीं पाता। इसके लिए मैं उनका आभार स्वीकार करता हूँ।

आनन्द
१६५२, सरदारनगर
भावनगर (गुजरात)

—सुदर्शन मजीठिया

क्रम

परिचय

"रिक्शा खाली है, क्या ?"

"कहाँ चलना है ?"

"लॉ कॉलेज।"

"आओ, बैठो।" रिक्शेवाले ने रिक्शे की सीट झाड़ते हुए कहा।

"कितने पैसे लेगा ?"

"तीन आने।"

"बस तो दो आने में जाती है।"

"बाबू, कल को तो बोलोगे कि हवाई जहाज एक आने में जाता है। यह देखने की मुझे कहाँ फुरसत है कि बस दो आने में जाती है या एक आने में। मेरा रेट तीन आने है। बैठना है बैठो, नहीं तो आपकी मर्जी।"

"सालों के सिर आसमान पर चढ़े हैं," बुदबुदाते हुए वह बाबू आगे बढ़ गया। वह रिक्शेवाला पुनः अपनी जगह पर आकर बैठ गया। वह अन्य रिक्शेवाले से कहने लगा—"दो आने भी देने की क्या जरूरत है ? मालिक ने दो टाँगें दी हैं। पैदल चलें तो वे भी खर्च नहीं होंगे।"

"अबे, चुप भी रह। सवारी नहीं मिली तो चिल्लाना शुरू कर दिया।"

मारुति आज वैसे भी काफ़ी थक चुका था। उसे घर लौटना था। सहसा उसे जैसे इस बात का आत्मज्ञान प्राप्त हुआ कि लॉ कॉलेज तो तिलनखेड़ी के ही रास्ते पर है। उसने अपनी टोपी ठीक की और बस के लिए एकत्रित भीड़ में उस 'दो आने वाले बाबू' को खोजने निकला। परन्तु बस तो आ चुकी थी। इस कारण रिक्शे की ओर किसी का ध्यान नहीं था। मारुति खाली रिक्शा लेकर ही घर की ओर मुड़ा। वैसे तो सिनेमा समाप्त होने में अभी आधा घंटा बाकी था, परतु आज मारुति की शक्ति ने जवाब दे दिया था। कमाई भी उसी परिमाण में हुई थी। वह सोचता है कि मालिक

को दो रुपए किराया देने के वाद भी चार रुपयों की वचत है। उसने रिक्शे का हॉर्न वजाते-वजाते चिलाना शुरू किया—"लॉ कॉलेज, दो आना··· लॉ कॉलेज दो आना······।" जव मारुति को कोई सवारी नहीं मिली तो वह गाता हुआ महाराजवाग की ओर मुड़ पड़ा। उसके स्वर को गाना कहने की अपेक्षा आठवें सुर में चिल्लाना कहना ही अधिक सार्थक होगा। वह चिल्लाए जा रहा था—"जाना पड़ा···दिल लगाना पड़ा···हो···ओ··· वावुल के···घर आज जाना पड़ा।"

अलमस्त होकर मारुति वहुत तेज़ रिक्शा भगाए जा रहा था। दिन-भर की दवी हुई मस्ती अव खुलकर निकल रही थी।

२

काफ़ी रात गए, राम्या के वस्ती में लौटने के पहले ही उसकी वाँसुरी के स्वर सुने जा सकते थे। यह उसका प्रायः रोज़ का कार्यक्रम था। वाँसुरी के स्वर सुनकर वस्ती का कोई मनुष्य यह कह सकता था कि "अव रामू लौट रहा है।" रामू की वाँसुरी के स्वर रात्रि की कालिमा और सन्नाटे को चीरकर तिलनखेड़ी के सिर पर छा जाते थे। उसकी वंशी में वह जादू था कि जो किसी भी सुनने वाले के सिर चढ़कर वोलता था। रात्रि के घोर सन्नाटे में जो व्यक्ति तन्द्रिल अवस्था में ही होते या अभी नींद की गोद में जा रहे होते, वे रामू की वंशी के स्वर सुनकर मस्त हो जाते और गद्‌गद हो उठते थे। परन्तु रामू वस्ती के सारे लोगों को दया भाव से देखता। उनके जीवन में रामू को कुछ नवीनता नज़र नहीं आती। रामू देखता कि किस तरह वस्ती वाले ज़िन्दगी की चक्की में पिसते-पिसते एक दिन अपना जीवन समाप्त कर देते हैं।

रामू···! वस्ती वाले उसे आधा पागल समझते थे—समय के अनु-सार जिसमें पागलपन की मात्रा कम-ज्यादा होती रहती थी।

वस्ती में केवल लक्ष्मी पर ही इस वाँसुरी का किसी तरह का भी प्रभाव नहीं पड़ा था। उसे इस वंशी से वेहद नफरत थी। वह जानती थी कि रामू को विगाड़ने में इस वाँसुरी का वहुत वड़ा हाथ है। जव लक्ष्मी रात

की बाँसुरी सुनती तो केवल इतना ही बुदबुदाती, "आ गया, राम्या।" इन स्वरों को रेकर्ड की तरह उसी ध्वनि में नित्यप्रति लक्ष्मी कह उठती। लक्ष्मी के ये स्वर घोर निराशा, पीड़ा और राहत से भरे होते।

रोज की तरह आज भी लक्ष्मी दिन-भर के परिश्रम के पश्चात् समस्त कार्यों से निपटकर रामू की राह देख रही थी। पांडुरंग आज जल्दी ही लौट आया था और नींद में डूबा था। पुरवी भी सो रही थी। माधनि भी रिक्शा लेकर 'रात पाली की ड्यूटी पर गया था। वह राम्या की राह देख रही थी कि कब रामू आए और दिन-भर के कार्यों पर वह फुलस्टॉप लगा सके।

तभी, रात्रि की नीरवता को चीरता हुआ रामू की वंशी का स्वर मुखर हो उठा।

लक्ष्मी ने रस्सी की ढीली चारपाई से उठकर कमर सीधी की और रसोई की ओर बढ़ गई। आटा समाप्त हो चुका था, इस कारण उसने आज केवल कढ़ी-चावल ही बनाए थे। "आई[१]......" रामू ने बाहर से पुकारा। लक्ष्मी ने टीन का दरवाजा खोला। अन्दर घुसते ही रामू ने दरवाजा बन्द कर लिया। रामू अपने बिस्तर की ओर बढ़ने लगा।

"भात खा ले।"

"मुझे भूख नहीं है।"

"क्या खाकर आया है ?"

"दोस्तों के साथ होटल में खाया था।"

"होटल के खाने से क्या पेट भरता है ?"

"जब मुझे नहीं खाना तो नाहक तू जिद क्यों करती है ?"

"एक दिन की बात हो तो चुप रहूँ। रोज का तेरा एक ही जवाब होता है कि भूख नहीं है। तेरी भूख जाती कहाँ है ? इधर-उधर से पेट भर लेता है, कई बार कहा कि घर आकर पूरा भोजन किया कर। मेरी बात तुझे समझ क्यों नहीं आती ? उसे तू मानता क्यों नहीं ?"

"मैं तुमसे जब बार-बार कहा करता हूँ कि मेरे लिए तू अपनी नींद खराब न किया कर, तू सुनती क्यों नहीं ?"

---

१. माँ।

लक्ष्मी ने रामू को एक बार देखा और उसके प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही चली गई। लक्ष्मी ने बर्तनों को उसी प्रकार ढँक दिया और सोने चली गई। रामू ने यह प्रश्न आज पहली बार लक्ष्मी से नहीं पूछा था और न ही लक्ष्मी ने पहली बार रामू से यह प्रश्न किया था। ये प्रश्न दोनों के लिए शाश्वत-से हो गए थे। रामू ने कई बार लक्ष्मी से पूछा था कि वह उसके लिए इतनी रात बीते तक क्यों जागती रहती है? परन्तु लक्ष्मी फिर भी जागती ही रहती थी। रामू के इस प्रश्न को सुनकर लक्ष्मी को ऐसा होता कि मानो रामू उसके किसी चिरपरिचित अधिकार को छीनने का असफल प्रयास कर रहा है। लक्ष्मी जानती थी कि जागना या न जागना उसका अपना अधिकार है—फिर वह क्यों न राम्या के लिए जागे?

उधर रामू जब देखता कि रात्रि का दूसरा पहर बीत जाने पर भी उसके लिए उसकी माँ जाग रही है तो रामू को ऐसा लगता जैसे वह अपराधी है। अपराध का कारण वह है और सजा उसकी माँ भुगतती है। उस अपराध की आत्मग्लानि से जब वह अन्दर-ही-अन्दर चोट खा उठता तो अपनी माँ से यही पूछता कि वह इतनी रात तक उसके लिए क्यों जागती है? सो क्यों नहीं जाती?

परन्तु जब लक्ष्मी रामू से कहती कि "मैं तुझसे कुछ कहती हूँ क्या?" तो रामू अन्दर-ही-अन्दर और भी चोट खा उठता और मन-ही-मन सोचता कि वह दूसरे दिन हर हालत में जल्दी लौटेगा। कल ज़रूर जल्दी वापस आएगा।

परन्तु 'कल' भी क्या कभी आया है?

पाँडुरंग विट्ठलराव पाटील का परिवार चार सदस्यों का ही था। चार सदस्यों का यह आशय नहीं कि पाँडुरंग कोई परिवार-नियोजक था। पाँडुरंग के परिवार का प्राकृतिक रूप से ही नियोजन हो गया था। यदि उनके परिवार के समस्त सदस्य आज जीवित होते तो श्रीयुत पाँडुरंगजी आठ संतानों के धार्मिक पिता होते। आधा दर्जन पुत्र-पुत्रियों की मृत्यु को पाँडुरंग ने देखा था। पाँडुरंग बयालीस या तैंतालीस की अवस्था का एक साँवला-सा मनुष्य था। उसने जिन्दगी में काफी पापड़ बेले थे। होटलों में

नौकरी की थी, कुलीगिरी की थी, चपरासी भी रह चुका था। उन नौक-रियों के बाद चोरी करने और जेब काटने का भी मौसम आया। काम की बात केवल इतनी ही थी कि इस समय वह रिक्शा चलाता था। नागपुर में जल्दी से प्राप्त हो जाने वाला उस समय यही एक सर्वव्यापक धन्धा था जो कि पांडुरंग की हैसियत के लोग सफलतापूर्वक कुछ समय के लिए निबाह सकते थे।

रिक्शा चलाने के साथ-ही-साथ पांडुरंग का 'साइड बिज़नेस' भी चलता था। साइड बिज़नेस से जो कमाई होती उसे वह ईश्वर की स्पेशल मेहर-बानी समझता था। ईश्वर की ऐसी कृपा से पांडुरंग यदा-कदा जब गद्‌गद हो जाता तो एक या दो आने मारुति[1] के मन्दिर में भेंट कर आता। साइड बिज़नेस में अधिकतर जुए या न्यूयार्क रूई पर लगाए गए सट्टे की ही कमाई होती थी। इसके अतिरिक्त ताड़ी पीना और लक्ष्मी को पीटना पांडुरंग के लिए अत्यन्त साधारण-से कार्य थे।

पांडुरंग की पुत्री का नाम पुरनी था। उसकी अवस्था अभी केवल पाँच ही वर्ष की थी। उसमें तथा रामू में काफी वर्षों का अंतर था। 'लंहगा-पोलका' पहने नाक बहाती हुई बस्ती के छोटे व गंदे बालक-बालिकाओं के साथ वह धूल उड़ाती फिरती थी।

लक्ष्मी चार-पाँच घरों में बर्तन माँजने का काम करती थी। उसकी जिंदगी घड़ी के काँटे की तरह धीरे-धीरे नियमित तथा निश्चित रूप से सरकती थी। लक्ष्मी को यह भी नहीं पता होता था कि कब सुबह हुई और कब शाम।

लक्ष्मी की पीठ की कहानी पांडुरंग से प्राप्त डंडों और सोटों की कहानी थी। सब काम निपटाकर वह रात को रामू की बाट जोहती कि कब रामू लौटे और कब उसे भोजन कराके वह छुट्टी पाए।

---

१. हनुमानजी।

३

बस्ती के करीब बीचों-बीच चढ़ाई पर मन्दिर से कुछ दूर हटकर अमरावती रोड की ओर जाने के लिए एक सँकरी-सी पथरीली सड़क निकलती थी। वहीं से एक अन्य सँकरी-पथरीली सड़क फूटकर नीचे की ओर भी जाती थी। इस प्रकार वह स्थल तिरास्ता बन जाता था। नमक, मिर्च, तेल, आटा, दाल तथा नाई की दूकानें यहीं थीं। बस्ती का यही मुख्य व्यापारिक, राजनीतिक और सामाजिक केन्द्र था। तरकारी-भाजी की भी दो-एक दूकानें यहाँ लगती थीं। बस्ती की पार्लियामेंट भरने का भी यही स्थल था। रात के समय किसी दूकान पर गैस जलता, तो किसी पर केवल मोमबत्ती, किसी दूकान पर लालटेन का प्रकाश होता तो कहीं तेल की छोटी-सी ढिबरी ही झूम-झूमकर अन्धकार से टक्कर लेती हुई देखी जा सकती थी। छोटे या बड़े दूकानदार जब ग्राहकों को प्यासी नजरों से देखते थे तब बस्ती के भी जवान या बूढ़े, बेकार या व्यस्त लोग इन्हीं दूकानों के सामने ग्राहकों के बैठने के लिए बने पटियों पर आकर बैठ जाते। रात के दस-ग्यारह बजे यह दैनिक पार्लियामेंट भंग होती। जिस प्रकार सूखे वृक्षों या ठूंठों में एक हरियाली से परिपूर्ण वृक्ष अलग ही दिखाई दे जाता है, उसी प्रकार इन छोटी-मोटी दूकानों में केशव सेठ की दूकान शोभा पाती थी। बस्ती की हर जरूरत को प्राय: उसकी दूकान पूरा किया करती थी। केशव सेठ था तो मारवाड़ी, परन्तु नागपुर में उसकी जिन्दगी के तीस वर्ष गुजर गये थे। इन तीस वर्षों का बड़ा-सा भाग उसने तिलनखेड़ी बस्ती की सेवा में पैसे कमाने में अर्पित कर दिया था। इसी बस्ती में उसकी आँखों पर चश्मा चढ़ा था। पुत्रविहीन केशव की आँखें सुबह से शाम तक तराजू की डंडी पर रहतीं।

केशव मराठी भाषा फर्राटे के साथ बोल लेता था। रामू पर केशव की विशेष कृपा थी। रामू को देखते ही केशव का रेगिस्तान-सा सूखा हृदय हरा हो उठता था।

"आओ, बरखुरदार, कहाँ रहते हो ? कल सुबह से जो गायब हुए तो शक्ल दिखाने तक का नाम नहीं। खैरियत तो है न ?"

"खैरियत है···खैरियत काका···जब तक दुनिया में आप सलामत हैं, इस रामू को भला क्या हो सकता है ?" दूकान के सामने लगे पटिये पर रामू ने उकडूं बैठते हुए कहा।

"आओ, मेरे पास गद्दी पर बैठो।" केशो सेठ की गद्दी थी तो तेल से चिकटी, परन्तु यदि सेठ किसीको अधिक-से-अधिक सम्मान देना चाहता तो उसे अपनी गद्दी पर ही बैठाता था। हर माह की दूसरी या तीसरी तारीख को बल्लू चौधरी के प्रिंस ऑफ वेल्स डी० ए० जी० पी० टी० ऑफिस के बड़े बाबू जब महीने-भर का राशन नकद और कुछ उधार लेने आते तो केशो सेठ उन्हें अपनी गद्दी पर ही बैठाता। इस गद्दी पर बैठने का सम्मान केशो सेठ ने अभी तक बस्ती में बहुत ही थोड़े लोगों को दिया है। बस्ती में इसका महत्त्व भारतरत्न की उपाधि से किसी भी तरह कम नहीं था। रामू का स्थान उस आधी गद्दी पर बैठने वालों में सबसे ऊँचा था। खैर, रामू भी गद्दी पर जा डटा।

"कहाँ थे कल से ?" और उसके बाद ही केशो सेठ ने अन्दर झाँकते हुए सेठानी को पुकारते हुए कहा, "अरी ओ भागवान, रामू के लिए चाय सी बनाकर ला।"

"हाँ तो बरखुरदार, बोलो क्या समस्या थी ?"

"कोई समस्या नहीं थी।"

"फिर इस ओर आए क्यों नहीं ?"

"कल शाम को देर से लौटा था। आज सुबह कुछ पढ़ता रहा, फिर आपकी याद आई तो कदम इस ओर भी बढ़ गये।"

"चलो अच्छा हुआ·· याद तो आई। हाँ तो बेटा, कल तो तुम आधे में से ही उठकर चल दिये थे। मैं कह रहा था कि यह कलयुग है। कल यानी आने वाला 'कल' और कल यानी मशीन भी। इस जमाने में वही अच्छी तरह से जीता है जिसने आने वाले कल – यानी अपने भविष्य के बारे में प्लानिंग कर ली है। या तो अक्लमन्द ही कल की योजना बनाता है या जिसकी जिंदगी मशीन की तरह है आज उसे ही जीने का हक है। हमारे बाप-दादे भी······।"

इतने में ही कोई आठ-दस वर्ष का बालक सौदा लेने आ गया। वह

केवल एक मैली-सी कमीज ही पहने हुए था। वह बालक रामू को ऊपर से नीचे तक आश्चर्य से देख रहा था। उसने आते ही अपनी वाक्-बन्दूक छोड़ी, "एक आने का तेल, दो पैसे का खोपरा, एक पैसे की मिर्ची, दो पैसे की चाय।"

"अबे, अक्ल के दुश्मन, कौन-सी गाड़ी से जा रहा है ? ऐसी कौन-सी जल्दी है ? दूसरे ग्राहक का सौदा तो तौलने दे।"

सेठ की फटकार सुनकर लड़का चुप हो गया। सेठ सौदा तौलता जा रहा था और रामू से बोल रहा था, "हमारे बापदादों ने इस संसार को कर्मभूमि कहा है। लेकिन मशीन कहती है कि अपना कार्य किये जाओ। तो बेटा यह तो मशीन-युग है······।"

"सेठ मिर्ची कम दे रहे हैं······।" लड़का चिल्लाया।

"साले, पैदा होने से पहले ही अक्ल के पुतले बनकर दुनिया में चले आये। दिखता नहीं ज्यादा दे रहा हूँ।"

"मेरी माँ कहती है कि सौदा कम आता है।"

"अपनी माँ से कहना कि सौदा लेने खुद आया करे, साथ ही अपना तराजू-बाट भी ले आया करे।" लड़के से पैसे लेकर सेठ ने संदूकची में डाले और दूसरे ग्राहकों को सामान देने में व्यस्त हो गया।

"आपने कहा न कि यह कल-युग है···एक दूसरे प्रकार का भी तो कल होता है।" रामू ने कहा।

"जानता हूँ, जानता हूँ, बेटा, अच्छी तरह से समझता हूँ तुम क्या कह रहे हो। तुम उसी 'कल' में रहने वाले प्राणी हो, जबकि मैं आने वाले कल में जीता हूँ। हम दोनों में यही अन्तर है। मैं अपना सिर क्यों तोड़ रहा हूँ ? यही तो कहता हूँ कि अपने दृष्टिकोण को बदलकर आने वाले कल में जीना सीखो। तुम्हारी उम्र काफी हो चुकी है, अब तुम्हें कुछ धंधे-पानी का भी खयाल करना चाहिए। तुम फक्कड़ हो बाँसुरी लिये इधर-से-उधर घूमते रहते हो। धन की कीमत जानो। पैसों का ज़माना है। पैसा बुरा नहीं है। पैसों के अभाव में मनुष्य जितने पाप करता है, उतने पैसों के रहने पर नहीं करता। दरिद्रता सबसे बड़ा पाप है। ग़रीबी सब पापों की माँ है। विटामिन 'एम' यानी मनी—यानी धन की क़ीमत समझो नादान।"

अँधेरा घिर रहा था। सेठानी पैट्रोमैक्स जलाकर ले आई थी। उजाला होते ही सेठ ने हाथ जोड़कर आँखें बन्द कीं। श्लोक पढ़ा, जोकि वह रोशनी होने के बाद रोज मन-ही-मन पढ़ता है।

रामू गद्दी पर से उठ खड़ा हुआ और बस्ती से बाहर अनमने भाव से चल पड़ा। प्राकृतिक वातावरण धुँधला-सा और मैला-सा हो रहा था—किसी गरीब के मैले कपड़ों की तरह, और आसमान पर दिखाई देने वाले दो-एक तारे उसी तरह चमक रहे थे जिस तरह गरीब मजदूर की फटी कमीज से उसका पसीना चमकता है।

४

लोगों का कथन है कि कर्नल समर चटर्जी की मूँछों का इतिहास एक प्रकार से उनके जीवन का ही इतिहास है। बात कहाँ तक सच है कहा तो नहीं जा सकता, परन्तु उनकी बड़ी-बड़ी घनी मूँछों को कम-से-कम हर कोई देख सकता है। यदि उनकी पर्सनैलिटी में से उनकी मूँछों को घटा दिया जाए तो केवल उनका छूँछा शरीर ही रह जाएगा। कर्नल चटर्जी अपनी मूँछों के प्रति खास सावधानी बरतते हैं। अपनी मूँछों की सेवा करने के लिए उन्होंने अपने अर्दली को खास हिदायतें दे रखी हैं। उनका अर्दली, अर्दली होने के अतिरिक्त उनका मूँछ-ड्रेसर भी है। मूँछों में कंघी करना, इत्र लगाना, कॉसमैटिक्स लगाना और कभी-कभी शुद्ध घी भी लगाना, इस अर्दली का ही काम है। यह ऐसी ड्यूटी थी कि जिसमें अर्दली आलस या कामचोरी नहीं कर सकता था, क्योंकि मूँछों के ऊपर ही चटर्जी की दो बड़ी-बड़ी आँखें अर्दली के सिर पर दुनाली बंदूक की तरह तनी हुई रहती थीं। बातें करते समय, विचार करते समय, अखबार पढ़ते समय, सिनेमा देखते-देखते या सिर्फ बैठे-बैठे जाने या अनजाने उनका एक हाथ मूँछों पर ही रहता था। इतना ही नहीं बल्कि अपनी पुत्रियों को भी हिदायत देते समय उनका एक हाथ अपनी मूँछों की ही खिदमत करता रहता था। इसमें दो मत नहीं थे कि चटर्जी की मूँछें बेजोड़ थीं। चटर्जी का अनुमान था कि एक-न-एक दिन मूँछों की भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता

होगी और उस प्रतियोगिता में वे भाग लेकर अपनी मातृभूमि का नाम ऊँचा करेंगे, लेकिन चटर्जी का ऊँचा-पूरा भरा हुआ शरीर अब उम्र के कारण ढीला पड़ने लगा था।

सेना से अवकाश प्राप्त करने के बाद धन्तोली में ही उन्होंने अपना बंगला बनवा लिया था। लड़के की उम्मीद में जब एक के बाद एक तीन लड़कियाँ हो गईं तो चटर्जी ने कानों में अंगुलियाँ देकर तौबा कर ली और कहा—"अब मैं ज्यादा रिस्क नहीं ले सकता।" कल को इनकी शादियाँ क्या खाकर करूँगा?" उसके बाद ही उन्होंने ऑपरेशन करवा लिया और सन्तति-चिंता से मुक्ति पाई। बड़ी लड़की रेखा की शादी हो चुकी थी, मँझली लड़की रेणु और तीसरी रजनी थी।

यह परिवार था तो बंगाली, किन्तु बंगाल से उनका नाममात्र का संबंध रह गया था। घर में कभी-कभी केवल मेहमानों के साथ ही बंगला भाषा में बातचीत की जाती थी, अन्यथा घर में हिन्दी या कभी-कभी अंग्रेजी का ही व्यवहार होता। बंगालियों में बहुत ही कम फौज में मिलेंगे, परन्तु चटर्जी तो कर्नल के पद से रिटायर हुए थे। उनमें न तो बंगालियों जैसा शारीरिक दुबलापन था और न ही बंगाली भावुकता।

विकास और सन् '४२

आज वह दिन था जबकि मारुति पूरा 'आदमी' बन चुका था। यह दिन उसकी उमगों का दिन था। एक दिन वह भी था जबकि उसकी अवस्था तेरह या चोदह वर्ष की थी। उस समय वह ठोड़ी या गालों पर हाथ फेर-फेरकर देखता था कि दाढ़ी या मूँछ के बाल आए या नहीं। नहाने के बाद शीशे के टुकड़े में जब वह अपनी दाढ़ी के किसलय जैसे नन्हे-नन्हे बालों को देखता तो उसकी छाती गज-भर की हो जाती। इन नन्हे-नन्हे बालों को रोएँ कहना अधिक उपयुक्त होगा। अपनी दाढ़ी-मूँछ के रोएँ देख उसका यह विश्वास दृढ़ हो जाता कि वह अब शीघ्र ही मर्द बनने वाला है।

मारुति जानता था कि रिक्शा चलाने के लिए मर्द होना आवश्यक है क्योंकि तभी रिक्शा चलाने का लाइसेंस मिलता है। इसलिए वह जल्दी-से-जल्दी मर्द बन जाना चाहता था। वह सड़क पर चलता तो आसपास के लोगों से यह अपेक्षा रखता कि वे उसे पूरा आदमी समझें और उससे उसी स्तर की बातें करें जोकि एक आदमी दूसरे आदमी से करता है। मारुति चाहता कि उससे मिलने वाले लोग इस बात को महसूस करें कि अब उसका लड़कपन चला गया है। मारुति की ऊँचाई बढ़ चुकी थी। साथ ही गले की भी हड्डी निकल आई थी। आवाज भी भारी होती जा रही थी। इन सब लक्षणों के साथ-ही-साथ उसमें यह इच्छा दिन-प्रति-दिन बलवती होती जा रही थी कि अब उसे कोई लड़का या छोकरा न समझे।

इसी कारण उसे अपने हमउम्र दोस्तों से एक प्रकार की नफरत-सी होने लगी थी। हमउम्र दोस्तों का यह सबसे बड़ा कसूर था कि वे मारुति को अपनी उम्र का समझते थे और मारुति से 'छोकरों' के स्टैंडर्ड की ही बातें करते—वही पतंगबाजी, वही गोली की होड़, वही गुल्लीडंडा।

इसके सिवाय इन छोकरों की बातों का कोई विषय ही नहीं होता था। इस कारण सीधी-सी बात थी कि मारुति अपने दोस्तों की गिनती बुजुर्गों में कैसे करे, जबकि स्वयं वह एक बुजुर्ग बनने जा रहा था ? घर से यदि मारुति बाहर निकलता तो सीधा वह बड़ों की मंडली में चला जाता और एक कोने में बैठा ध्यान से उनकी बातें सुनता। बातें सुनने में वह मस्त हो जाता, परन्तु मारुति के दोस्त भी ऐसे माई के लाल होते कि एक-न-एक उधर से आ ही टपकता। मालूम नहीं कि मारुति के दोस्तों ने भी किस शेरनी का दूध पिया होता कि मारुति की खोज-खबर वे किसी-न-किसी तरह लगा ही लेते। उन्हें देखकर मारुति का पारा आसमान पर चढ़ जाता। वह सोचता कि सुस्वादु भोजन में यह बेमौक़े की कंकड़ी कहाँ से आ गिरी ! वे दोस्त भी वहीं डँट जाते और मारुति को वहाँ से साथ लेकर ही टलते। मारुति भी उन्हें गालियों के आशीर्वाद देता हुआ अनमने मन से उनके साथ हो लेता।

बस्ती में जहाँ कहीं भी पाँच या छः रिक्शेवाले जमा होकर अपने काम-धंधे की चर्चा करते, वहाँ मारुति मुग्धभाव से उनकी चर्चा सुनता। उस समय वह अपने-आपको किसी भी वयस्क से कम नहीं समझता। परन्तु जब काफ़ी समय बीत जाता और फिर भी उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता तो वह खीझ उठता। वह सोचता कि ये लोग उसे अपनी बराबरी का क्यों नहीं समझते ? उसे भी विश्वास में लेकर उसके साथ गंभीर चर्चा क्यों नहीं करते ? आखिर अपने-आपको वे समझते क्या हैं ? इन विचारों के आते ही मारुति छलाँग लगाकर वहाँ से भाग जाता।

२

रामू···

पाँडुरंग का पुत्र और मारुति का चचेरा भाई था, किन्तु दोनों भाइयों में ज़मीन-आसमान का अन्तर था — दो वर्गों का अन्तर। रामू का नाम कागज़ों में लिखा जाता रामचंद्र पाँडुरंग पाटील, दुनिया उसे रामू कहती और लक्ष्मी के लिए था वह राम्या। बड़े, फैले और घने बाल, कुरता-

पायजामा तथा चप्पलों में रामू अलग ही पहचाना जा सकता था। वह अपने ही घर के सामने भी खड़ा रहता तो कोई इस बात की शिनाख्त नहीं कर सकता कि वह इसी घर में रहता है। यदि कोई मनुष्य पांडुरंग को मिलने आया होता तो उसका रामू के बारे में पहला इम्प्रेशन यही होता कि यह भी कोई बाहर से मिलने ही आया होगा, लेकिन रामू पोशाक तथा रंग-ढंग से कलाकार लगता था।

पांडुरंग रिक्शा चलाता, लक्ष्मी बर्तन मांजती, परन्तु रामू को यह कुछ भी नहीं करना पड़ता था। रामू अधिकतर मौन रहना ही पसंद करता था। रामू ने अपनी मां का रंग पाया था। नये आदमी से सहसा परिचय पा जाना रामू के लिए ज़रा कठिन-सी बात थी। परन्तु रामू की पहचान इस तरह नहीं की जा सकती थी। वह तो एक सफल बाँसुरी-वादक था। *सारी बस्ती में उसकी बाँसुरी की धूम थी। तिलकखेडी के साधारण-से* गणेशोत्सव से लेकर नागपुर के महाविद्यालयों के स्नेह-सम्मेलन तक उसकी बाँसुरी के बिना अधूरे ही माने जाते थे। अबझिरी तालाब के किनारे न जाने कितनी रातें उसने रियाज करते ही बिता दी थी।

और मारुति······

तगड़ा, ऊँचा, पूरा···गठे शरीर का काला लोहा था। खदान से निकला हुआ ताजा लोहा, जो मिल-मालिकों की बड़ी-बडी मिलों में अभी तपा नहीं था फिर भी फौलाद था। मारुति ने जब से होश सँभाला था अपने-आपको अकेला ही पाया था। उसे केवल इतना ही मालूम था कि वह हिंगनारोड-स्थित जैतारा गाँव का निवासी है। मारुति के माता-पिता पहले ही काल के गाल में समा गये थे, अतएव पांडुरंग ने ही मारुति का पालन-पोषण किया। पांडुरंग ने मारुति को धर्मपेठ के प्राइमरी स्कूल में दाखिल तो करा दिया था परन्तु एक क्लास से पास होकर दूसरी में जाना मारुति के वश की बात नहीं थी।

जब मास्टर क्लास में सवाल हल करवाता तो स्लेट पर मारुति चिड़िया-तोते ही बनाता रहता। मास्टर जब मारुति के करीब आता तभी इस बात का रहस्योद्घाटन होता और मारुति की पिटाई होती। एक दिन मारुति गुरुजी के मुँह पर थूककर क्लास से बाहर भाग गया। मारुति के

पीछे मास्टर ने विद्यार्थी दौड़ाए, परन्तु खुले मैदान में आकर मारुति किसी सिकन्दर या नैपोलियन से कम नहीं था। उसने मुड़कर पत्थरबाज़ी शुरू की। मारुति अकेला ही बीस-पच्चीस लड़कों का सामना कर रहा था। लड़के तो लौट आए परन्तु मारुति का क्रोध मास्टर ने उन लड़कों पर उतारा। उस दिन से मारुतिजी की पढ़ाई बन्द हो गई।

लक्ष्मी भी न तो कोई साक्षर आन्दोलन की नेता ही थी और न ही कोई शिक्षा-तत्त्वज्ञ। वह तो मारुति को केवल इसीलिए स्कूल भेजती थी कि उसका सिर खाने की अपेक्षा वह स्कूल जाकर मास्टर का ही सिर खाए। अन्यथा घर बैठे-बैठे मारुति रोता, शैतानी करता, खुद भी तंग होता तथा साथ ही लक्ष्मी को भी तंग करता।

स्कूल से रिटायर होने के पश्चात् मारुति देवता का सारा समय लट्टू, पतंगबाज़ी और गुल्ली-डंडे के भेंट होने लगा। लक्ष्मी भी चितामुक्त थी। लक्ष्मी की तो यही समस्या थी कि मारुति घर रहकर उसे तंग न करे, बाहर रहकर मारुति को जो करना है सो करे।

संसार के महान् खिलाड़ी, विद्वान् या साधक आदि तो काफ़ी नाम कमाकर अवकाश प्राप्त करते हैं, परन्तु मारुतिजी ने अल्पायु में ही स्कूली जीवन से बिना महानता प्राप्त किये और बिना अधिक समय लगाये, अवकाश प्राप्त कर अपनी अनोखी महानता का परिचय दिया।

हाँ, यदि पाठ्यक्रम में रिक्शे पर कोई पाठ्य-पुस्तक होती तो शायद मारुतिजी उसमें डिस्टिंक्शन प्राप्त करते। दुनिया में यदि किसी वस्तु ने उसे अपनी ओर आकर्षित किया था तो वह था पांडुरंग का रिक्शा। रिक्शे को मारुति समय मिलते ही चारों ओर से ग़ौर से देखता और कभी-कभी सूँघता भी। थक जाता तो सीट पर लेटकर सोचता कि आसमान नीला क्यों है? यदि रिक्शे की सीट पर लेटे-लेटे वह रात्रि के समय आसमान देखता तो तारों को देखकर वह यही विचार करता कि अपने घर का इतना बड़ा विशाल फ़र्श ईश्वर रिपेअर क्यों नहीं करवाता।...जगह-जगह से उस फ़र्श में छेद हो रहे हैं और परमात्मा के घर की रोशनी उन छेदों से दुनियावालों को सितारों के रूप में दिखाई देती है। रिक्शे के पैडलों तक उसके पैर नहीं पहुँचते थे, परन्तु अपनी कल्पना में वह सारे नागपुर का चक्कर भी

लगा लेता। गर्मियों में जब सारा परिवार आँगन में सोता, उस समय यदि घर पर ही पांडुरंग रिक्शा रख लेता तो मारुति रिक्शे की सीट पर ही टेढ़ी-मेढ़ी, उल्टी-सीधी टाँगें किये सो जाता।

सन् बयालिस के अगस्त की एक सुबह ''

नागपुर भला कैसे अछूता रहता ?

सीताबर्डी में वेराइटी स्क्वेअर पर रिजेंट टॉकीज की ओर से भारी जुलूस आ रहा था। नारे लगाये जा रहे थे—

"अंग्रेजों भारत छोड़ो !"

"भारत माता की जय !"

"महात्मा गाधी की जय !"

"चर्चिल मुर्दाबाद !"

कोलाहल बढ़ता जा रहा था। दूर तक सिर-ही-सिर दिखाई पड़ रहे थे। जुलूस रोकने के लिए सामने ही पुलिस थी। परिस्थिति पर काबू पाने के लिए सामने ही सीताबर्डी के किले-महार रेजीमेंट के सिपाही भी सरकार ने बुला लिए थे। सिपाहियों का एक सैक्शन जुलूस की ओर स्टेनगनें ताने घुटनों के बल डटा हुआ था। पुलिस ने आस-पास का सब ट्रैफिक रोक रखा था। दूसरी ओर से, विशेषकर मॉरिस कॉलेज वाली सड़क से, जनता की भीड़ तमाशबीन की तरह उमड़ रही थी।

इसी भीड़ में इतवारी की ओर से आता हुआ पांडुरंग फँस गया। पांडुरंग मारुति को अक्सर साथ ही रखता था, क्योंकि चढ़ाव पर मारुति रिक्शे को धक्का लगा दिया करता था। जब रिक्शा खाली होता तो मारुति को भी सैर करने का मज़ा आता। मारुति खाली रिक्शे में अकेला ही सारी सीट पर टाँगें चौड़ी करके बैठ जाता। जब सवारी मिलती तो पायदान पर बैठकर ही मारुति को काम चलाना पड़ता था। पुलिस के दर्शन होते ही वह रिक्शे से उतरकर उसके पीछे दौड़ना शुरू कर देता।

जुलूस को देखकर पहले तो पांडुरंग घबराया और सोचने लगा कि

वह भला कहाँ फँसा ? परन्तु बाद को अन्य तमाशबीनों की तरह वह भी भीड़ में शामिल हो गया। मारुति तो रिक्शे से उतरकर भीड़ में ही गायब हो गया। पांडुरंग चिंतित तो हुआ परन्तु वह रिक्शा छोड़कर भी नहीं जा सकता था।

मारुति अब तक केवल सुना ही करता था कि भारत गुलाम है, अंग्रेजों ने उसे दबाकर रखा है, आदि-आदि; परन्तु इस सबका वह मतलब नहीं समझता था। तिलनखेड़ी में अभी चार महीने पहले ही एक क्रान्ति-कारी भाषण देने आया था। उसका भाषण काफ़ी प्रभावशाली था, किंतु मारुति के लिए तो वह सब भैंस के आगे बीन के समान ही था। मारुति को जब तक आरंभ से कोई भूमिका बाँधकर सब-कुछ न समझाता तो भला उसकी बुद्धि में यह सब-कुछ कैसे बैठता ? उसे तो अभी तक केवल क्रांति-कारी की दाढ़ी और उसका यह नारा—'अंग्रेजो भारत छोड़ो' ही याद था।

मारुति को यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि एक अंग्रेज़ इतने सिपाहियों को कन्ट्रोल कर रहा था। वह डी० एस० पी० था। उसके मातहत बाकी सब हिन्दुस्तानी ही थे। मारुति खिसकता-खिसकता जुलूस के पास जा पहुँचा। मारुति सोचता है कि जब अंग्रेज़ दुश्मन हैं तो फौज और पुलिस के हिन्दुस्तानी सिपाही उस अंग्रेज का कहना क्यों मान रहे हैं ? उसका बस चलता तो इस अंग्रेज़ की गरदन मरोड़ देता, परन्तु उस अंग्रेज़ से अधिक क्रोध मारुति को पुलिस और फौज के सिपाहियों पर आया।

जुलूस बढ़ता ही जा रहा था। पुलिस ने पहले लाठियों के ज़ोर से जुलूस को पीछे ठेलने का प्रयास किया, परन्तु जुलूस की ओर से पुलिस पर अधिकाधिक दबाव पड़ने लगा। परिस्थिति विकटतर होती जा रही थी।

एक महार फौजी ने दूसरे महार फौजी से कहा, "फायर का हुकम मिलतेच्[1] छोड़ना नहीं। बम्मनों (ब्राह्मणों) को तो चुन-चुनकर मारना। ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा।" फौजी महार था, अछूत था, निम्न जाति

---

१. मिलते ही।

का था। उसके मन में दबे हुए विद्रोह को बाहर निकलने का अवसर प्राप्त हो रहा था। उच्च जातियों के प्रति दबी हुई घृणा उस महार सिपाही के मन से बाहर फूट पड़ना चाहती थी।

मारुति ने देखा कि उसकी आयु का एक लड़का छोटी-सी तिरंगी झंडी लिये हुए लोगों की टाँगों से निकलकर जुलूस के सामने आया और नारा लगाने लगा, 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो।'

डी० एस० पी० की आवाज़ गरज उठी, "स्क्वाड विल फायर···।" सकते की हालत थी।

जुलूस पीछे हटने लगा। जुलूस में पीछे से अचानक रेला आया। परिणामस्वरूप अगली कतार के लोग फौजियों पर जा गिरे।

"फायर ·····" डी० एस० पी० ने चिल्लाकर हुक्म दिया।

धाँय······धाँय······धाँय······! तिड़····· तिड़······तिड़··· ···त ड ड़ ड !!

एक साथ ही राइफल और स्टेनगन से गोलियाँ जुलूस पर बरसीं। पहली गोली उस बालक को लगी और वह खून का फव्वारा छोड़ता हुआ गिर पड़ा।

"स्क्वाड विल फायर द सेकेंड राऊंड···"

"फ़ायर······।"

तिड़···तिड···तिड—तिड ड ड़ ड······ड ड़······।

स्टेनगनें बारूद उगल रही थीं और निहत्थे आन्दोलनकारी गिर रहे थे। मारुति से नहीं देखा गया। उसने एक भारी-सा पत्थर उठाकर डी० एस० पी० की ओर फेंका। डी० एस० पी० को वह पत्थर लगा या नहीं, यह देखने के लिए मारुति वहाँ खड़ा नहीं रहा, परन्तु मारुति ने अपने दिल को इस बात की तसल्ली दे ली थी कि कम-से-कम उसने बदला तो ले लिया।

जुलूस पीछे हटने लगा। फौजियों ने फायर कर अपनी मैगज़ीनें खाली कर दी थीं। मारुति के सामने उस लड़के की तस्वीर घूम गई जो खून उगलता मारा गया था। लोग भाग चुके थे, शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था। सड़क पर लाशें पड़ी थीं। मारुति ने उस शाम भोजन नहीं किया।

चुपचाप ही सो गया।

मारुति सुबह-सुबह अमरावती रोड पर आया तो उसने दो खंभों के सहारे एक भारी-सा बोर्ड लटकता हुआ देखा। उस पर कुछ लिखा था। मारुति के पल्ले कुछ पड़ा तो नहीं फिर भी बोर्ड को इस प्रकार देख रहा था मानो वह बोर्ड संसार का कोई आठवाँ आश्चर्य हो।

करीब से ही एक लड़का गुज़रा। मारुति जानता था कि लड़का हाई स्कूल में पढ़ता है, इसलिए उसे पढ़कर मतलब अवश्य बतला देगा। मारुति ने उससे पूछा, "बोर्ड पर क्या लिखा है ?"

"क्विट इंडिया फार फ्रीडम।"

"मतलब ?"

"आज़ादी के लिए भारत छोड़ दो।"

"अंग्रेज़ी में लिखा है।"

"हाँ।"

"किसने लिखा है ?"

"किसी कांग्रेसी ने लिखा होगा।" कहकर लड़का आगे निकल गया और मारुति बोर्ड के अक्षरों का निरीक्षण करने में पुनः व्यस्त हो गया।

मारुति के मन में एक नई सूझ पैदा हुई। उसने सोचा कि क्यों न इसकी नकल कर लोगों को बाँटी जाए जिससे इसका अधिक-से-अधिक प्रचार हो। यह समझना मारुति का काम नहीं था कि इसका अधिक-से-अधिक प्रचार किस वर्ग में होगा ?

मारुति को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके दोनों हाथ कटे हैं। काश उसे लिखना-पढ़ना आता !

मारुति सोचता-सोचता, सिर नीचा किये हुए बस्ती की ओर बढ़ा। ...सके हाथ आज रिक्शा धकेल सकते थे, बर्तन माँज सकते थे, ईंट-पत्थर ...ने का काम कर सकते थे, परन्तु लिखने का काम वह भला कैसे करे ?

वह सोचने लगा कि···आखिर उसे कौन इस कार्य के लिए सहायता ... सकता है ? उसे प्राइमरी स्कूल के अपने मास्टर का स्मरण हो आया। ... पहले की बात जैसे आज सहसा ताजी हो उठी। मारुति को ऐसा

प्रतीत हुआ मानो स्कूल से लड़के उसे पकड़ने आ रहे हैं, वे मारुति के पीछे दौड़ रहे है। इसी दिवास्वप्न में उसने पीछे मुड़कर भी देख लिया, पर वहाँ कौन हो सकता था? दूर दो-एक बकरियाँ पत्तियाँ अवश्य खा रही थीं। मारुति को आत्मग्लानि-सी हुई। उसने सोचा कि यदि उसने मास्टर के मुँह पर न थूका होता तो कम-से-कम उसकी पढाई तो न बंद होती। फिर मारुति सोचता है कि पढाई बन्द होने का यही तो एकमात्र कारण नहीं था। यह घटना तो एक बहाना मात्र थी। दुनिया-भर की बुराइयां ससार में बाहर तो बाद को आती हैं, पहले तो वे मन से ही शुरू होती हैं। मन ही बेईमान हो तो आदमी की ईमानदारी भला कब टिक सकती है? मारुति का मन ही पढाई में नहीं लगता था।

मारुति को पीटर का खयाल आया जोकि मिशन हाई स्कूल मे पढता था। सध्या को मारुति पीटर के पास गया। वह Quit India for Freedom की कई नकलें छोटी-छोटी पर्चियों पर बनवा लाया। दूसरे दिन मारुति अमरावती रोड पर खड़ा होकर हर किसी आते-जाते सफेदपोश को वह पर्चियाँ बाँटने लगा।

एक दफ्तर जाते हुए बाबू ने वह पर्ची ली और मुस्कराकर आगे बढ गया। उसकी मुस्कराहट मे जो व्यग्य था वह मारुति भला कैसे समझता?

४

, यही युग था—जबकि भारतीय क्रान्तिकारी देश की स्वतन्त्रता के लिए कीट-पतगों की तरह शहीद हो रहे थे और दूसरी ओर अंग्रेज अपने साम्राज्य को बचाने के लिए जी-जान से जापान और जर्मनी के खिलाफ प्रयास कर रहे थे—उधर अंग्रेज और उनकी सेनाएँ अपने प्राण गँवा रही थीं, तब भला तिलनखेडी भला कैसे निर्लिप्त रहती?

"रंगरूट लड़ाई पर जा रहे हैं!·· रंगरूट लड़ाई पर जा रहे हैं!!"

बस्ती की सारी बाल-सेना में यह बात फैल गई। धूल से सने नंगे-धड़ंगे बच्चे एक सुर से चिल्लाते फिर रहे थे, "रगरूट लड़ाई पर जा रहे हैं।"

जेब में पिपरमिंट की गोलियाँ रखे मारुति भी अन्य लड़कों के साथ लड़ाई पर जाते हुए फौजियों को देखने के लिए बढ़ गया। बस्ती से अन्य कितने ही स्त्री-पुरुष युद्ध पर जाते हुए फौजियों को देखने जा रहे थे। कई अपने संबंधियों को केवल दूर से ही देखने के लिए बढ़ रहे थे, क्योंकि सैनिकों से मिलने की किसी को आज्ञा नहीं थी।

तीन बज रहे थे, किन्तु लग रहा था कि सूरज डूबने से पहले तेज़ होकर एक बार पूरी आग बरसा देना चाहता है। मारुति ने दो पैसे के चने-मुरमुरे खरीदे थे, वह उन्हें ही चुनक रहा था और खड़े-खड़े बड़े ध्यान से इस 'तमाशे' को देख रहा था।

फौजी अपनी वर्दियों में मिलिट्री ट्रकों में अपने-अपने किट-बैग्स तथा संदूक रखने में व्यस्त थे। पोलो ग्राऊँड तिलनखेड़ी बस्ती के पास ही अमरावती रोड की दूसरी ओर था। खाकी वर्दी में अनेक सैनिक यंत्रवत् अपने कामों में लगे थे। सारे वातावरण में एक पीलापन और मुर्दनी छाई थी। एक ऐसी बेबसी समग्र वातावरण पर छाई थी जो बरबस फूटकर बाहर आना चाहती थी। उन फौजियों के चेहरे सूख रहे थे, धूप से वे निस्तेज हो रहे थे। ये सिपाही केवल पायोनियर फ़ोर्स के ही थे। इनका काम फ्रंट पर केवल खाइयाँ खोदना, पुल बनाना इत्यादि ही था। रोज़ तो उनकी ट्रेनिंग फावड़े और कुदालों के साथ होती थी, परन्तु आज उन्हें फावड़े-कुदालों से मुक्ति थी। इन फौजियों का ट्रेनिंग सेंटर लॉ कालेज ही था। जब से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ था तब से सरकार बहादुर ने लॉ कॉलेज की इमारत नागपुर यूनिवर्सिटी से इस पवित्र कार्य के लिए ले ली थी। कॉलेज के कम्पाउंड में और भी बारकें बना ली थीं। लॉ कॉलेज नार्मल स्कूल की इमारत में चला गया था। जवान यहाँ से तीन-तीन माह की ट्रेनिंग लेकर लड़ाई पर भेजे जाते थे।

अभी जो बैच प्रयाण की तैयार कर रहा था उसकी ट्रेनिंग पूरी हो गई थी। मारुति बहेड़े के वृक्ष के नीचे खड़ा था।

"सरकार इन फ़ौजियों को शहर से हटा ले तो कितना आराम मिले !" छाया में बैठा हुआ एक आदमी हथेली पर तम्बाकू पीसती हुई औरत से कह रहा था।

"सरकार तो हरामी है, हरामी। उसे तो केवल लड़ाई जीतना
पब्लिक मरे या जिये। शहर में चीजों के भाव बढ़ते जा रहे हैं। महंग
के कारण वैसे ही चीजें खरीदना मुश्किल था। ऊपर से फौजी आ धमके।
'और तो और मूंगफली तक के भाव बढ़ गये। एक आना छटां
कभी सुना था ?"

"इतवार को तो वहाँ जाना भी मुश्किल होता है। जहाँ देखो ये मिलिट्री
वाले ही दिखाई पड़ते हैं।"

"ऐ···पीछे···हटो···रास्ता छोड़ो···मिलिट्री आ रही है।" हवलदार
कर्कश स्वर में छड़ी घुमाते हुए चिल्लाया।

"तो सीधे में क्यों नहीं बोलता ? बोमलने[1] की क्या जरूरत है ?"
एक औरत ने सीधे तनकर उठते हुए कहा। औरत निम्न जाति की थी,
यह काण्टा[2] लगाये खड़ी थी।

हवलदार ने कहा, "क्या बात है ? मार-मारकर हड्डियाँ तोड़ दूंगा।"

"ले···तोड़ भला देखूं कितनी हड्डियाँ तोड़ता है ? तेरी माँ ने भी
देखूं कितना दूध पिलाया है ?" औरत गुस्से से आँखें तरेरती हुई तन-
कर खड़ी थी। लोग उस औरत की जवाँमर्दी पर हैरान थे। हवलदार ने
अपनी फौजी छड़ी उठाई परन्तु मारते-मारते वह रुक गया।

"शर्म तो नहीं आती औरत पर हाथ उठाते। लड़ाई पर तो भागते
रास्ता नहीं मिलेगा। वहाँ चूड़ियाँ पहनकर घूंघट निकाल लेना। अकड़ने
को यही जगह मिली है न ! तुम लोगों में इतनी ताकत होती ना फ़ट पर
हारते क्यों ? जर्मन और जापानी तो पकड़-पकड़कर तुम लोगों का फ़ट
पर भुरता बना रहे हैं। वहाँ के लिए भी अपनी ताकत बाकी रख
नामर्द कहीं के।" औरत हवलदार के काफी करीब आ गई थी। फौजी
की आँख का गुस्सा काफ़ूर हो गया और उसकी आँखों में बदमाशी का
साया छा गया। उसने दाँत पीसते हुए कहा, "मेरी जाँ ये बात है न
इतना खौफनाक क्यों बनती हो ? तेरी ही शक्ल देखकर तो हम लड़ाई
पर जा रहे हैं।···तेरी कसम वक्त नहीं है नहीं तो अपनी नामर्दी का

---

१. चिल्लाने। २. साड़ी पहनने का महाराष्ट्रियन ढंग।

तुझे सबूत देता...।" फौजी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए आगे बढ़ गया। लैफ़्ट—राइट .....लैफ़्ट—राइट...लैफ़्ट—लैफ़्ट—लैफ़्ट......लैफ़्ट—राइट, लैफ़्ट - राइट।

फौज के प्लैटून मार्च कर रहे थे। स्टेशन की ओर पहला प्लैटून बढ़ता, उसके बाद दूसरा ..तीसरा। फ़ौजियों के सीने तने थे। आँखें सामने थीं। सब अनुशासन के भारी शिकंजों से जकड़े हुए थे। मजाल थी कि कोई सिपाही मक्खी-मच्छर उड़ाने के लिए भी आजू-बाजू देख पाता।

अनुशासन ! डिसिप्लीन...! ...मिलिट्री का सुनहरा शब्द ! फ़ौजों की सफलता का एकमात्र मूलमन्त्र—जिसने कि बेटे को माँ से छीन लिया, जिसने पति को उसकी पत्नी तथा पिता को उसके पुत्र से छीनकर एक संज्ञाहीन बर्बरता और मौत का कीड़ा बना दिया। वह फ्रंट पर जिसके प्राण लेने जा रहा है—उन शत्रु के सिपाहियों से उसकी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं है। दो देश आपस में लड़ते हैं, सत्ताधीश आपस में टकराते हैं और एक देश के सामान्य, निरीह और बेबस नागरिक दूसरे देश के नागरिकों के दुश्मन करार दिये जाते हैं। अनुशासन कितनी बड़ी भूल-भुलैया है ! किसी फ़ौजी को इस शब्द का विश्लेषण करने का हक़ नहीं है। घूम-फिरकर सेना में अनुशासन का कोई मतलब नहीं रह जाता, सिवाय इसके कि हर सैनिक अपने अफ़सर की अंध-भक्ति करे। चाहे जैसी बेवकूफी से भरी बातें उसका अफसर कहे तो भी वह एक खुशामदी की तरह यन्त्रवत् उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता चला जाये।...

खटर—खटर......खट् - खट्.. ! खट - खटर......खटरप—खटरप...।

फ़ौजियों के मार्चिंग के स्वर सुनाई पड़ते हैं। मारुति फ़ौजियों के क़दमों को देखता है और देखता ही रह जाता है। काले भारी बूटों से लैस पैर बिजली की तरह एक साथ क़तार-बद्ध उठते हैं और क़तार-बद्ध गिरते हैं। साँप की तरह बल खाती तथा दूर तक जाती कोलतार की निर्मम काली सड़क भी फ़ौजी बूटों के नीचे काँपती-सी नज़र आती थी।

फ़ौजियों के मार्च करते ही लोगों की भीड़ सड़क से एक-एक, दो-दो गज़ पीछे हट गई। अठारह रुपये मासिक तनख्वाह पर अपनी ज़िंदगी को

दुश्मन की सगीनो की नोको पर अर्पित करने के लिए वे बढे जा रहे थे। अंगरेजी सरकार की नजरो मे एक हिन्दुस्तानी सिपाही की जिंदगी की कीमत अट्ठारह रुपये से अधिक नही थी।

"मेरा लडका अट्ठारह वर्ष का ही है। पिछले साल ही उसकी शादी हुई है।" एक औरत अपने बच्चे को दूध पिलाती हुई कह रही थी। एक ओर तो उसका एक बच्चा दूध पीकर जिंदगी पाने के लिए हाथ-पैर मार रहा था तो दूसरी ओर उसका अन्य लड़का जिंदगी पाकर मौत की ओर बढ रहा था।

एक आदमी हत्या करता है तो कानून उसे अपराध कहता है और खूनी को फांसी की सजा दी जाती है, परन्तु युद्ध मे जहाँ लोग इतनी बडी मात्रा मे एक-दूसरे की हत्या करते हैं, एक-दूसरे पर अत्याचार कर रहे हैं, उनके लिए कौन-सा कानून है ? कौन-सा दंड है ? और यदि हो भी तो उसे कौन कार्यान्वित करेगा ?

"लड़ाई पर जाकर ये क्या करते हैं ?" एक लड़का मारुति से पूछता है।

"लड़ाई पर जाकर लड़ाई करते हैं।" मारुति का उत्तर था।

"बाप रे बाप, इतने बडे-बडे लोग भी लड़ते हैं ! इनकी तो दाढ़ी-मूँछ भी है।"

"जर्मन अंग्रेज को हरा रहा है, ये लोग जर्मन से लड़ेंगे।"

"पर ये लडते कैसे होंगे ?"

"दुश्मन को देखते ही गोटा[1] मारते होंगे।"

"अबे गोटा नहीं इतने बडे-बडे बाम फेंकते हैं बाम।" अपने हाथों को फैला-कर बम का कल्पित आकार बताने का प्रयास करते हुए उस बालक ने कहा।

"बहुत मोठे-मोठे[2] बॉम होते होंगे ?"

"तोप से गोला फेंकते हैं !"

"भौत लोग मरते होंगे।"

"गुरुजी कहते थे कि अब अंगरेज हार रहा है। अब [illegible]

---

१. पत्थर। २. बड़े-बड़े।

आने वाले हैं। अपना मुल्क आजाद होगा।"

५

बस्ती में दो-तीन क्रान्तिकारियों की धरपकड़ हुई। सारी मिलनगंजी में सनसनी फैल चुकी थी। बस्ती में इधर-उधर सहज ही में खुफिया पुलिस के चेहरे देखे जा सकते थे। सी० आई० डी० का विश्वास था कि बस्ती में अभी भी दो-एक क्रान्तिकारी छिपे हुए हैं। पुलिस विशिष्ट क्रान्तिकारियों की खोज में तो नहीं थी परन्तु जो भी हाथ आ जाए, इसी इरादे से बस्ती की छान-बीन करती थी।

केशो सेठ की दूकान का महत्त्व बढ़ चुका था। मंहगाई और तंगी के जमाने में भी वह अनाज, कपड़ा आदि ऐसी कितनी दैनिक घरेलू आवश्यकताओं की वस्तुएँ कहीं-न-कहीं से फटकार ही लाता था। उन्हीं वस्तुओं को केशो ब्लैक में बेचता। केशो एक ओर तो ब्लैक में दुगुनी-तिगुनी कमाई करता, ऊपर से ग्राहकों पर एहसान जताता सो अलग। सेठ अपने ग्राहकों से कहता, "आपसे मेरी कौन सी नई जान-पहचान है? इंसान होता काहे के लिए है? आड़े वक्त पर हम एक-दूसरे के काम न आयें तो एक ही बस्ती में रहने का आखिर क्या फ़ायदा? भाई साहब, मेरा काम तो सेवा है, सेवा। मैं कोई कांग्रेसी या पार्टी-वार्टी का लीडर-वीडर तो हूँ नहीं कि जो लेक्चर देकर अपना स्वार्थ पूरा करे। मेरा काम तो आड़े मौके पर व्यावहारिक रूप से काम आना है। भाई साहब, जब भी मौका आये या किसी भी चीज की जरूरत हो तो इस गरीब को कभी मत भूलना।" लैक्चर देता-देता सेठ रुपये लेकर अंटी में बांध लेता। जो भी वस्तु किसी को दे रहा होता उसी वस्तु का नाम लेकर कहता "...तो कहीं मिलता नहीं। मैंने तुम्हारे लिए खास तौर से लेकर रखा था।" सुनने वाले की भी मजबूरी होती। ग्राहक जल्दी-जल्दी अपना सामान उठाता और वहां से खिसक जाता।

केशो, बस्ती में, निजी प्रबन्ध से राशन की एक दूकान खोलने का भरसक प्रयास कर रहा था। उसने सोचा कि लड़ाई का अच्छा मौका है, वारे-न्यारे करने का अवसर भी फिर हाथ नहीं आयेगा। बस्ती वालों ने भी एक

कोग्रॉपरेटिव स्टोर की योजना बनाई। लोगों ने अधिकारियों से काफी लिखा-पढ़ी की परन्तु झडुलाल ने किसी की नहीं चलने दी। झंडुलाल जानता था कि यदि तिलनखेड़ी में ऐसी दूकान खुल गई तो उसकी ग्रामदनी काफी घट जाएगी। झडुलाल ने लाइसेंस प्राप्त कर किसी तरह दूकान खोल दी। तिलनखेड़ी के निवासियों को अनाज लेने धरमपेठ ही जाना पड़ता था।

केशो, झंडुलाल का कोई दूर का छोटा-मोटा सम्बन्धी था। जब झडु-लाल को पता लगा कि केशो राशन की दूकान खोलने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहा है तो झडुलाल ने केशो को सत्यनारायण की कथा के बहाने बुला भेजा।

"ग्राइये···ग्राइये···सेठजी, ग्राजकल तो ग्राप दिखते ही नहीं।"

कथा के बाद अपने कमरे में झंडुलाल ने केशो के लिए गद्दी पर ग्राधी जगह खाली करते हुए कहा।

"दिखने-न-दिखने का सवाल तो बाद में उठेगा क्योंकि खुद ग्रापको इतनी फुरसत ही कहाँ कि ग्राप ग्रपने लोगों को भी देखें···ऐसी भी क्या कमाई? कैसे याद किया गरीब को? बोलिये सरकार का क्या हुक्म है?" केशो ने गद्दी पर बैठते हुए कहा ग्रौर झडुलाल ने पानदान खोला।

"कहा···न···! सोचा कि सत्यनारायण की कथा में ग्राग्रोगे तो कम-से-कम तुम्हारे दर्शन तो हो जाएँगे।" केशो ने ग्रपनी टोपी उतारकर घुटनों पर रखी ग्रौर चाँद पर हाथ फेरने लगा।

"ग्रौर सुनाग्रो, तबियत कैसी है?" झंडुलाल ने पूछा। दोनों सेठ इस प्रकार मिल रहे थे जैसे दो योद्धा युद्ध-क्षेत्र में मिलते हैं। योद्धा तो मैदान में द्वन्द्व के लिए उतरते हैं परन्तु ये दोनों क्षत्रिय नहीं, बनिये थे, इसलिए इनकी लड़ाई का ढंग ही दूसरा था।

"राशन की दूकान खोलने का इरादा है···लाइसेंस के लिए हाथ-पैर मार रहा हूँ।" केशो ने कहा।

"देखो छोटे सेठ, जमाना टेढ़ा है। फायदा समझदारी से चलने में है। व्यापार के लिए ऐसा सुनहरा मौका फिर नहीं मिलेगा। लड़ाई बढ़ रही है, पैसे की कीमत कम हो रही है। ऐसे मौके पर मेल-जोल से काम करना कहीं

अच्छा होगा।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"तुम कण्ट्रोलर के पास चक्कर लगा-लगाकर थक गये होगे, किन्तु वह मेरी मुट्ठी में है।"

"आपकी मुट्ठी में···क्या मतलब ?"

"यह देखो लाइसेंस···। मैं राशन की दूकान खोल रहा हूँ, परन्तु मेरा विचार साथ-ही-साथ तुम्हें अधिक-से-अधिक सहायता देने का है।"

"सेठजी, मदद तो आप बाद में देंगे, पहले यह बताइए कि आपको यह लाइसेंस मिला कैसे ?" केशो के लिए यह वाकई एक महान् आश्चर्य की बात थी। केशो सिर पटककर और नाक रगड़कर थक गया था, परन्तु उसे अभी तक अफ़सरों से कोई उत्तर नहीं मिला था। इधर झंडुलाल ने अपना कार्य करा लिया था और केशो के रास्ते में रोड़े डाल दिये थे। झंडुलाल ने खलनायक की तरह अट्टहास करके कहा, "लाला, तुम सेठ झंडुलाल का परताप नहीं जानते। और यदि जानते हो तो समझते नहीं। इसीलिए कहता हूं कि तुम्हें जो करना है मेरी मदद से करो, या तुम जो भी करने को तैयार हो उसमें मैं तुम्हें मदद दे सकता हूँ। लेकिन एक तुम हो कि नाक पर मक्खी ही नहीं बैठने देते। मानता हूं कि ज़माना चाँदी का है, लेकिन यदि दुनिया चाँदी कमाती है तो तुम सोना कमाओ। तुम व्यापारी हो, व्यापारी, क्या समझे ? नोन-तेल की बिक्री को व्यापार नहीं कहा जाता। ज़िन्दगी में केवल चन्द मौके ही आते हैं, उन मौकों पर पैसा कमा लेने का नाम ही व्यापार है। मौका गया तो सब-कुछ चला गया। पीछे भले सिर-तोड़ मेहनत करो, उससे क्या होता है ? लाला, घी निकलता है टेढ़ी अंगुलि से और इस वक्त झंडुलाल को सभी अँगुलियाँ टेढ़ी हैं। मैं तुम्हारा कोई दुश्मन नहीं हूं।" झंडुलाल ने देखा कि केशो सेठ उसके प्रभाव से रहित नहीं है। केशो विचार में पड़ गया। "बोलो मेरी बात मानते हो ?" झंडु ने पूछा।

"कैसी बात ?"

"बुरा मत मानना, तुम्हारे भले के लिए ही कह रहा हूँ।"

"क्या ?"

"तुम राशन की दूकान खोलने की अर्ज़ी वापस ले लो।"

"तो आपका यह मतलब हुआ कि मैं अपनी दाल-रोटी भी बन्द कर दूँ ?"

"बेशक।"

"तो खाऊँ क्या ?"

"सोना और चांदी।"

"सोना और चांदी ! क्या मतलब ?"

"हाँ लाला, सोना और चांदी खाने का जमाना है। तुम व्यापारी हो, कोई साधारण आदमी तो हो नहीं। राशन की दूकान खोलकर तुम इतना नहीं कमा सकोगे जितना कि उसके बिना कमा लोगे।"

"कैसे ?"

"मेरी मदद से।...तुम अर्जी वापस ले लो। मैं तुम्हारी मदद करूँगा। आटा, दाल, चावल, गेहूँ, कपड़ा जो चाहो सो दूँगा। तुम ब्लैक में बेचना। कंट्रोल रेट पर बेचकर कोई फायदा नहीं। यह जमाना लोगों की भूख पूरी करने का नहीं है। लोगों को खाने को दो ताकि वे जीवित रह सकें, पर इतना दो कि जीवित रहकर भी वे सतत भूखे रहकर जीवन बसर करें—यह मेरी नहीं ब्रिटिश सरकार की नीति है। अंग्रेज सरकार किसी-न-किसी तरह सबको जिंदा रखना चाहती है क्योंकि लोग ही मर गये तो टैक्स कौन देगा ? और टैक्स के बिना सरकार को क्या आमदनी होगी ? लोगों की इस आधी भूख का फायदा उठाओ। लोगों के पास जो है—ब्लैक के रास्ते अपने पास आने दो। लोगों की गरज का फायदा उठाओ। सरकार भी यह कर रही है।"...केशो घुटनों पर टोपी रखे गहरे सोच-विचार में पड़ गया। झंडुलाल ने देखा कि उसका वार खाली नहीं गया है। झंडुलाल ने दूसरा तीर निशाने पर मारा, "तो केशवदास, मेरे गोदाम भर रहे हैं। जितना चाहो माल ले जाओ। नफा आधा-आधा। यही मौका है लक्ष्मी को रिझाने का। लक्ष्मी का वाहन उल्लू होता है। उल्लू वह जो कि केवल रात में ही देख सकता है। चारों ओर अँधेरा फैल रहा है। आँख खोलकर देखो। रोशनी ही रोशनी दिखेगी। उल्लू बनने की जरूरत है। लक्ष्मी छप्पर फाड़कर आयेगी...देखते क्या हो ?"

अब तक केशो सेठ के सामने स्पष्ट हो चुका था कि वह अकेला कुछ

भी नहीं कर सकेगा। केशो की हालत पंचर साइकिल की तरह ही थी। उसने कहा, "मुझे मंजूर है।"

"दे ताली···।" सेठ झंडुलाल ने उछलकर हाथ बढ़ाते हुए कहा। केशो ने धीरे से गंभीर मुद्रा में हाथ बढ़ाया। केशो के हाथ में जैसे ताक़त नहीं थी।

"लाला, क्या मुर्दे की तरह हाथ बढ़ा रहे हो ? आज तुम्हारी फतह हुई है···जाओ और घी के दीये जलाओ।"

केशो मौन था। झंडुलाल ने पुनः कहा, "गवर्नर के फ़ाइनेंशियल एडवाइज़र से मैं मिल चुका हूँ। परसों वह मेरी राशन की दूकान का उद्-घाटन करेगा और जनता को ऐसी दूकानों का फ़ायदा समझाएगा। वार फंड में मैंने पाँच हज़ार रुपये दिये हैं। तुम भी हजार, दो हज़ार दे डालो।"

"वह तो ठीक है, परन्तु माल आपके गोदाम से मेरे घर पहुँचाएगा कौन ?"

"लाला आखिर तुम रहे वही कौड़ी के तीन···यह सब मेरा काम है। जहाँ से हाथी निकल सकता है क्या वहाँ से पूँछ नहीं जा सकती ? तुम जाओ और बेधड़क सो जाओ···ज़िम्मा झंडुलाल का है।"

"मेरी बस्ती खुफिया पुलिस वालों से भरी पड़ी है।"

"फिकर मत करो···मेरा नाम केवल हरी झंडी का काम करेगा। इन सबको मैं खरीद चुका हूँ। पुलिस वालों का बाप भी कुछ नहीं कर सकता। जाओ सतनारायन की कथा कराओ—प्रसाद भिजवाना मत भूलना।"

केशवदास गद्दी से उठा। टोपी सिर पर रखी। धोती पसीने से तर हो रही थी। केशो को लगा कि वह भारी चीज़ प्राप्त करके उठा है, लेकिन अपनी सल्तनत हार गया है। झंडुलाल ने आज अपनी विराटता के दर्शन देकर केशो को उसकी क्षुद्रता का ज्ञान करा दिया था। मन-ही-मन केशो ने झंडु की महानता को स्वीकार कर लिया और सोच लिया कि झंडु का मुक़ाबला करना महज़ मूर्खता है।

६

केशो का व्यापार ब्लैक में चमक उठा। इस राजनीतिक उथल-पुथल के समय केशो भंडुलाल से ही सलाह कर कोई कदम उठाता था। इस व्यापार के कारण भंडु और केशो दोनों एक-दूसरे के काफी करीब आ गये थे। केशो को बस्ती के ज़र्रे-ज़र्रे की खबर रहती थी। अपने काले कारनामों पर पर्दा डालने के लिए केशो ने खुफिया पुलिस से दोस्ती कर रखी थी। पुलिस को भी केशो बस्ती के पूरे समाचार देता रहता था। उससे प्राप्त समाचारों के आधार पर ही पुलिस ने बस्ती से दो-तीन क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार किया। अभी परसों ही सेक्रेटेरियट के कमरे में बम मिला था। पुलिस के हाथ मौके से लग गया अन्यथा एक बवंडर खड़ा हो जाता। पुलिस अभियुक्त की तलाश में थी।

शाम को इस्लामिया हाईस्कूल के मास्टर अहमद ने केशो की दूकान के पटिए पर अड्डा जमाया। उसके हाथ में एक अंग्रेज़ी अखबार था। वैसे तो अखबारों के समाचारों की आलोचना-प्रत्यालोचना सब अपनी-अपनी अक्ल के अनुसार करते थे, परन्तु समाचारों की पूर्ण जानकारी में बस्ती में केवल तीन-चार आदमी ही माहिर समझे जाते थे। न्यूयार्क रुई के भाव जानने के लिए केशो हिन्दी अखबार खरीदता और राजनीतिक समाचारों पर भी सरसरी नज़र फेर लेता।

"कलकत्ते तक तो जापानी आना ही चाहते हैं।" केशो सेठ ने कहा।

"और भी आगे आएँगे।" अहमद मास्टर ने कहा।

"लेकिन सुना है कि जापानी अंग्रेज़ों से भी दुष्ट हैं।"

"दुष्ट हों या महात्मा, आज़ादी तो वही दिलाएँगे। नेताजी आज़ाद हिन्द फौज का सगठन कर रहे हैं। सुना नहीं कि अंग्रेज़ी फौज के हिंदुस्तानी सिपाही बर्मा में आज़ाद हिन्द फौज में भर्ती होते जा रहे हैं। और वही फौज जापानियों की सहायता से भारत पर कब्ज़ा करेगी।"···

'जय बजरंग बली की!' बजरंग पहलवान ने केशो की दूकान के सामने हुंड मारते हुए कहा। बजरंग पहलवान अखाड़े से आ रहा था। केवल एक लाल लंगोट ही पहने था। सामने लंगोट का पल्ला लटक रहा

अखाड़े के लिए सारी बस्ती को चार-चार आना चंदा देना पड़ता था। लोग बेरुखाई से चन्दा देते और पहलवान को बुरा-भला कहते, परन्तु खुलकर कहने की किसी की हिम्मत नहीं होती। 'जबरा मारे और रोने भी न दे' वाली बात थी। चन्दा देने वाले पहलवान के विरुद्ध मत व्यक्त करते समय विशेष रूप से सतर्क रहते। वे जानते थे कि पहलवान या उसके चेलों ने सुन लिया तो लेने के देने पड़ जाएँगे। बजरंग को देखते ही केशो को विशेष रूप से आग लग जाती। लोग जहाँ चार आने देते वहाँ केशो सेठ अखाड़े के लिए आठ आने चन्दा देता था। केशो को जब कभी बाहर जाना होता तो वह सेठानी के भरोसे दूकान छोड़ जाता। सेठानी की 'सुगंध' न जाने बजरंग को कहाँ से आ जाती! इधर सेठानी दूकान पर बैठी नहीं कि उधर पहलवान का जयघोष सुनाई देता—"बजरंगबली की जय!"

परन्तु सेठानी को एतराज नहीं था।

पहलवान की बात सुन सेठ को हँसी आ गई। उसने कहा, "पहलवान, ये राजनीति की बातें हैं, अखाड़े के दाँव-पेंच नहीं। तू नहीं समझेगा। पहलवानों की अक्ल घुटनों में होती है।"

"सेठ, अपनी समझ अपने पास रखो। जिन्दगी में कई जगह सिर्फ ताकत की जरूरत होती है, वहाँ तुम्हारी यह दो कौड़ी की समझ काम नहीं देती—वैसे आजादी आई तो सबसे पहले तेरी दूकान ही लूटूँगा।"

"अंग्रेजों को क्या इतना कमजोर समझ रखा है?"

"देख ले अभी जर्मनी और जापान अंग्रेजों को तो रास्ता दिखा ही रहे हैं। आगे खुदा मालिक है।···क्यों मियाँ अहमद, ठीक बात है न?" अहमद मियाँ पटिये पर बैठे-बैठे अपने दाँत खुरच रहे थे।

"जा-जा पहलवान, अपने रास्ते जा। क्यों व्यर्थ मगजपच्ची करता है? वह देख लंगोट का पल्ला सम्हाल। झटका लगेगा तो लंगोट खुल जाएगा···बाद को बेकार का तमाशा बनेगा सो अलग।"

पहलवान चला गया। बड़े मियाँ ने सोचकर इतमीनान से कहा, "कुछ कहा नहीं जा सकता कि ऊँट किस करवट बैठेगा। अभी तो जापानियों का ही हाथ ऊपर है। बेचारे बंगालियों को तो भूखा ही मार दिया।"

"अब अकाल ही पड़ गया तो कोई क्या करे ?" केशो ने कहा।

'बंगाल में ही यह अकाल पड़ना था और वह भी इसी मौके पर ! यह सब सरकार और मुनाफ़ाखोरों की बदमाशी है। इन इलाकों में बंगालियों का जीवन उनकी नावें ही थीं। सरकार ने लोगों से उनकी नावें छीन लीं, और इस तरह का वातावरण पैदा कर दिया कि बंगाली भूखा न मरता तो आखिर क्या करता ? यह साज़िश है, बदमाशी है।"

"यह तो, कुदरत की मार है। इलाका यदि सरकार ने वीरान किया है तो मकसद यही है कि दुश्मन आसानी से न आ सके।"

"अरे भाई, हमारे लिए कौन दोस्त और कौन दुश्मन ? चाहे अंग्रेज़ हों या जापानी, भारत तो आखिर गुलाम ही रहेगा। अंग्रेज़ों ने अपना फ़ायदा देखा है, जापानी आएँगे अपना फ़ायदा देखेंगे। पर भूख से तड़पते बंगालियों का क्या होगा ? अखबार में तसवीरें आती हैं, देखी नहीं जातीं। अल्लाह यही कहर ढा रहा है।"

बाबू मिश्रीलाल ने अपने तीन साल के बच्चे को गोद में उठाये हुए कहा, 'खैर, इसमें तो शक नहीं कि यह अकाल एक साज़िश है। खुद बंगाल के गवर्नर का इसमें हाथ है। सुनी नहीं अखबार की खबर कि उसने एक करोड़ रुपया खाया है।"

लोगों ने देखा कि एक मोटर रुकी। उस मोटर पर बड़े-बड़े अक्षरों में ARP लिखा था। अचानक मोटर के दरवाज़े खुले और उसमें से दो सिपाही मास्टर अहमद की ओर बढ़े। मास्टर अहमद ने हवा में एक हाई जम्प मारा और अंधेरे में गायब हो गए। पुलिस के सिपाही उनके पीछे भागे।

पुलिस का नाम सुनकर वहाँ अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई। आधे घंटे के पश्चात् पुलिस के सिपाही खाली हाथ लौटे। पूछने पर पता लगा कि अंधेरे में पहाड़ियों पर मास्टर अहमद ऊपर-ही-ऊपर अचाफ़िरी के घास के मैदानों में गायब हो गये हैं। खोज जारी है। सेक्रेटेरियट के बमकेस के सिलसिले में ही यह गिरफ्तारी थी। केशो के पैरों से पसीना छूट गया। उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि सीधा-सादा बाल-बच्चों वाला मास्टर भी कभी ऐसा कदम उठा सकता है।

७

दिवाली पास आती देख, लक्ष्मी ने दो-तीन घरों का अधिक काम ले लिया। पुरनी के लिए गत वर्ष से ही वह कोई नई पोशाक नहीं सिलवा सकी थी। पुरनी ने भी गर्मी, सर्दी और बरसात केवल एक ही लंहगे-पोलके में बिता दी थी। गर्मियों की तो बात ही दूसरी है। गरीबों के बच्चे नंगे घूम-फिरकर भी किसी-न-किसी प्रकार गुजर कर लेते हैं, बरसात में भी किसी छप्पर या छाजन के नीचे सिर छिपाकर काम चल जाता है, परन्तु मुश्किल तो होती है सर्दियों में। पुरनी ने अपनी बगलों में दोनों हाथ डाले, कांपते पैरों तथा किटकिटाते दांतों से पिछली सारी सर्दी काट डाली थी। पुरनी के लंहगे-पोलके में जगह-जगह पैबंद लगे हुए थे। लक्ष्मी अपने लिए भी कम-से-कम दो लुगड़े (महाराष्ट्रियन साड़ी) तथा दो चोलियों का कपड़ा खरीदना चाहती थी। पार्वती अब अपने साथ पुरनी को भी काम पर ले जाया करती थी। पार्वती को पुरनी से काफी सहायता मिल जाती थी।

लक्ष्मी ने करीब पचास रुपये जोड़ लिये थे। लक्ष्मी के लिए इतनी बड़ी रकम एक बहुत बड़ी बात थी। परन्तु दिवाली के एक दिन पहले ही लक्ष्मी के होश जैसे उड़ गये। उसने रुपये जहां रखे थे, वे उस जगह पर नहीं थे। लक्ष्मी ने अपनी खटिया के नीचे जमीन में एक छोटा-सा गड्ढा कर रुपये गाड़ दिये थे। उस जगह को उसने गोबर से लीप-पोत दिया था, परन्तु अब जगह खुदी हुई पड़ी थी।

लक्ष्मी को काटो तो खून नहीं। वह सिर पकड़कर खटिया पर बैठ गई। सिवाय पांडुरंग के यह किसी की करतूत नहीं थी। पांडुरंग कल से घर से नदारद था। लक्ष्मी ने सोच लिया कि पांडुरंग जुआ खेलने ही गया होगा। किस दिवाली को पांडुरंग ने जुआ नहीं खेला, जो वह इस दिवाली को नहीं खेलेगा?

लक्ष्मी ने मारुति को पांडुरंग के लिए भेजा। मारुति तिलनखेड़ी के सब 'अड्डे' देख आया। पांडुरंग उसे कहीं नहीं मिला। एक जगह एक जुआरी ने मारुति से कहा, "अबे तेरा काका अब बड़ा आदमी हो गया है।

अब वह यहाँ क्यों जुआ खेलेगा ? अब वह शनीचरे में मुहम्मद यूनुस के अड्डे पर खेलता है। उसने अब चिलम पीना छोड़ दिया है, अब वह सिगरेट पीता है।" मारुति ने आकर लक्ष्मी को सब-कुछ बताया।

मारुति की स्मृति में शनीचरे अड्डे का एक धुँधला-सा चित्र था। उसी के सहारे वह शनीचरे तक दौड़ता हुआ पहुँचा। रिक्शा पाँडुरंग का भंडा था। रिक्शा बाहर ही खड़ा था।

मारुति अन्दर गया। लोग जुआ खेलने में व्यस्त थे। पाँडुरंग एक कोने में सो रहा था। वह पिछली रात जागा था और सत्तर रुपये साढ़े नौ आने हार चुका था।

मारुति को देखते ही जैसे पाँडुरंग को बिजली का करंट लगा हो। वह बाहर आया और उसने पूछा, "तुझे मेरा पता कैसे लगा ?"

"गोरधन ने बताया।"

इधर लक्ष्मी सोचती है—'कमीना कम-से-कम दस रुपये तो रहने देता। उससे कम-से-कम पुरनी के कपड़े ही आ जाते।' लक्ष्मी को पुरनी की सर्दियों की तस्वीर नज़र आती है जबकि पुरनी कड़बी[1] के डंठल जमा कर उनमें कण्डे डालकर धुएँ में फूँक मारती थी। फूँक मारते-मारते धुएँ से पुरनी की आँखों में पानी आ जाता। लक्ष्मी सोचती है कि पाँडुरग को इतनी भी शर्म नहीं आई कि कम-से-कम वह पुरनी का ही खयाल कर लेता। घर में बाहर से पैसे लाकर देना तो दूर रहा, उल्टे घर से ही चोरी की—उस मर्द को क्या कहा जाए जो अपनी औरत की कमाई पर जुआ खेलता है ?

पाँडुरग के प्रवेश करते ही लक्ष्मी उस पर टूट पड़ी। वह रोती हुई पाँडुरंग को गालियों के सर्टिफिकेट देती जा रही थी।

मारुति उल्टे पैर केशो सेठ की ओर मुड़ा। सेठ पिछले तीन-चार दिनों से पाँडुरग का इंतजार कर रहा था। किंतु पाँडुरग का पता तक नहीं था। केशो को झण्डुलाल से काफी सामान मँगवाना था। दिवाली मौसम था। मारुति ने यह काम करना स्वीकार किया। मारुति को रि

१. ज्वार के सूखे पौधे।

का लाइसेंस नहीं मिला था, परन्तु उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी और वह रिक्शा चला सकता था। आज मारुति की बहुत दिनों की चिर-परिचित साध पूरी हुई थी। मारुति जल्दी-से-जल्दी मर्द बन जाना चाहता था। रात-दिन सामान ढोकर उसने चालीस रुपये कमाये।

लक्ष्मी उदास बैठी थी। पांडुरंग बाहर गया था।

"चल माई, वर्दी कपड़े खरीदने।"

लक्ष्मी के सामने दस-दस के चार नोट पड़े थे। लक्ष्मी गद्गद हो उठी।

८

दोपहर, एक बजे के करीब पायोनियर फ़ोर्स के सैनिक परेड से लौट रहे थे। प्लैटून के बाद प्लैटून अमरावती रोड से मार्च कर रहे थे।

लेफ़्ट—राइट···लेफ़्ट—राइट।

जैसे ही वे तिलनखेड़ी बस्ती के सामने से गुजरने लगे तो उनके पीछे बच्चों की एक अच्छी-खासी भीड़-सी लग गई। उनकी मार्चिंग से धूल उड़ रही थी। बस्ती से कुत्ते बाहर निकल आये थे और उनके साऊँड बॉक्स भी फुल वॉल्यूम पर अपना कार्य कर रहे थे।

बच्चों का शोरगुल और उसमें फ़ौजियों के भारी बूटों के स्वर।

कुत्ते भी पूँछ हिला-हिलाकर भौंकते जाते हैं। इस सब हो-हुल्लड़ में फौजी काले बूट कतारबद्ध उठकर गिर रहे थे।

"ज़िन्दगी में बार-बार सरकार की जय मनाएँगे," गाते हुए फौजी मार्च कर रहे थे।

प्लैटून से बाहर निकले हुए दो हवलदार बच्चों की भीड़ को सड़क के नीचे रोके हुए थे।

दूर पेड़ के नीचे खड़ा हुआ एक लड़का चिल्लाता है—

"लेप-राइट···लेप-राइट
लंगोटी टाइट
टुमारो नाइट
कम टू फाइट"

···हवलदार दूर देखता है। फौजियों ने दूसरा मर्चिंग गीत शुरू किया, "अंगरेज की फ़ौज आई, जरमन घबराया।"

जबकि फ्रंट पर बात ठीक इसके विपरीत थी। सरकार ने पक्की सड़क के आसपास 'डब्ल्यू' खुदवा रखे थे। तिलनखेड़ी में भी तीन-चार स्थानों पर 'डब्ल्यू' खोदे गए थे। ए० आर० पी० की मोटर द्वारा नित्यप्रति जनता को हिदायतें दी जातीं कि यदि बम पड़ने का खतरा हो, या शहर पर दुश्मन के हवाई-जहाज दिखें तो मिल के 'भोंपू' की आवाज़ सुनते ही जो जहाँ कहीं भी हो, अपनी जान बचाने के लिए डब्ल्यू में छिप जाए। मिलों के 'भोंपू' भी दिन या रात को एक विशेष प्रकार से बजाए जाते थे। अपनी ओर से तो जनता को सरकार प्रैक्टिस देती थी कि इस विशिष्ट प्रकार के भोंपू बजने पर जनता सावधान हो जाया करे। रात्रि को ब्लैक आउट की शिक्षा दी जाती थी।

परन्तु तिलनखेड़ी वालों को इस पर सोच-विचार करने की फुरसत नहीं थी। बस्ती वाले सोचते थे कि दुश्मन को तो जब आना होगा तब आयेगा, फिलहाल तो सरकार द्वारा बनाए गए डब्ल्यूनुमा गड्ढों का उपयोग सुन्दरतर रूप में क्यों न किया जावे? जब सुबह वे दिशा-मैदान को निकलते तो उन्हें अधिक दूर जाने की आवश्यकता न होती, बस इन्हीं गड्ढों पर मेहरबानी करते।

इन गड्ढों में वे इस इतमीनान से बैठते कि जैसे दूरदर्शी अंगरेज सरकार बहादुर ने इनके लिए ही इसी उद्देश्य से यह विशिष्ट व्यवस्था की हो। बस्ती वाले अंगरेज सरकार की इस समझदारी के लिए मन-ही-मन प्रशंसा करते थे।

९

रामलाल चौबे, सीताराम पंडित और गणेशी मिसिर पोस्टमैन के प्रयास से बस्ती में एक रामायण-मण्डली बनी हुई थी। बस्ती के कई लोग इस मण्डली के सदस्य थे। हर शनिवार को मण्डली द्वारा रामायण-पाठ होता था। शनिवार की रात रामायण-मण्डली को सुविधाजनक इसलिए

प्रतीत होती थी क्योंकि अगले दिन इतवार को छुट्टी रहा करती थी। यदि रामायण-पाठ करते-करते अधिक रात भी गुज़र जाती तो दूसरे दिन काफी समय तक नींद ली जा सकती थी। मण्डली के सदस्य नौकरी-पेशा लोग ही थे। उनमें चपरासी, पोस्टमैन, पुलिसमैन, रेलवे वर्कर तथा दो-एक बाबू आदि थे। एक सिर्फ सीताराम पंडित ऐसे थे जो निपट मस्त रहते थे। उन्हें किसी नौकरी आदि का चक्कर नहीं था, इसलिए वे रामायण-मण्डली के सभापति थे।

साढ़े सात बज चुके थे और पंढारकर बाबू के घर मण्डली के दो-तीन सदस्य भी आ चुके थे। पेंढारकर ने कहा, "पंडितजी, यू० पी० वालों में रामायण का प्रचार खूब देखा। जब मैं बम्बई में था, तो मैंने देखा कि दूध और पान का सारा व्यापार वहाँ भइयों के ही हाथ में था। वहाँ एक कमरे में दस-बारह भइए रहते देखे जा सकते हैं। इतवार को वे नहा-धोकर सिर पर इतना तेल चुपड़ेंगे कि कानों के पास से तेल बहता दिखाई देगा। शायद नहाने की फुरसत भी उन्हें केवल रविवार को ही मिलती है···और कमरे में दोपहर को चल रहा होगा रामायण-पाठ।"

"हाँ माई, गंगा और यमुना की गोद में ही तो यू०पी० है। वहीं काशी-प्रयाग हैं। भक्तशिरोमणि तुलसीदास का जन्म भी वहीं हुआ था।" पेंढार-कर ने सीताराम पण्डित की बात जैसे सुनी ही न हो, पेंढारकर बाबू ने अपना रेकार्ड जारी रखा -"यदि एक भइया गाँव जा रहा होगा तो स्टेशन पर उसे पहुँचाने के लिए कम-से-कम सौ-डेढ़सौ भइए आएँगे। जब तक गाड़ी नहीं चलेगी उस विशिष्ट डिब्बे के सामने अँधेरा ही छाया रहेगा। सब भइए तेल से चीकट कपड़े पहने हुए होंगे। खासकर अंगोछा तो ऐसा मैला होगा कि जो देखे उसी की तबियत मस्त हो जाये और जो न देखे उसका ध्यान भी उस ओर अंगोछे की दुर्गंध से खिंच जाये। कई तो सालों तक देश नहीं लौटते, फिर भी मित्रों में पुत्रोत्पत्ति की मिठाइयाँ बाँटा करते हैं।"

सीताराम पंडित ने बात का रुख मोड़ना चाहा, "चलता है पेंढारकर बाबू, हर कौम की अपनी-अपनी खासियत होती है और खामियाँ भी!"

इसके बाद दैनिक जीवन पर बातें चल निकलीं। रोज़मर्रा की कठि-नाइयाँ दिन-प्रतिदिन किस प्रकार बढ़ रही हैं, इस पर ही सब अपनी-

अपनी बुद्धि के अनुसार सुनने-सुनाने लगे। पण्डितजी ने सबके मतों का अन्तिम निर्णय देते हुए कहा, "भाई, अत्याचारों की सीमा पार हो रही है। अब तो भगवान् को अवतार लेना ही पड़ेगा। जब-जब अन्याय बढ़े हैं, तो भारत भूमि पर भगवान् ने अवतार लिये हैं। अब तो शीघ्र ही कल्कि अवतार होगा।"

नाथूलाल ने जवाब दिया, "पण्डितजी, आप ही कहते है कि ये सारे अवतार भगवान् ने भारत में ही लिये हैं और ये अवतार भगवान् को पापों के बढ़ने पर ही लेने पड़े हैं। इसका तो यह मतलब हुआ कि भारत मे ही सबसे अधिक अधर्म, पाप और अत्याचार होते रहे हैं।"

"अधर्म से तो कोई भी देश बचा नहीं है।"

"दूसरों का अधार्मिक होना, हमारी धार्मिकता का प्रमाण तो नहीं है। बात वास्तव में यह है कि ईश्वर और धर्म के नाम पर इस देश में काफी भ्रष्टाचार सदियों से फैला है। हम लोगों ने धर्म की आड़ ले-लेकर उनके धर्माचार्यों का ही नाम मटियामेट करने का प्रयास किया है।" नाथूलाल ने कहा।

"खैर आप कुछ भी कहिये, लेकिन आप तथ्यों को बदल तो नहीं सकते। वास्तविकता को आप चाहे जिस नाम से पुकार लीजिये, वह तो वास्तविकता ही रहेगी। हमारी सभ्यता और संस्कृति संसार की प्राचीन-तम व महानतम संस्कृतियों में से है। भारत आज भी संसार को संदेश दे सकता है।"

"मैं मानता हूँ कि तथ्य किसी भी हालत में बदले नहीं जा सकते, परन्तु पहले उनका 'तथ्य' होना भी तो आवश्यक है। भ्रम को ही यदि आप तथ्य कहें तो काम कैसे चलेगा? अपनी संस्कृति व सभ्यता की महानता के बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं है। सभ्यता और संस्कृति का महान् होना एक बात है और रोज़मर्रा के जीवन में उसका उपयोग करना दूसरी बात। ताजमहल प्रसिद्ध ऐतिहासिक कलात्मक कृति है। संगमरमर में एक जीवित स्वप्न है। परन्तु यदि आगरे में मकान नहीं मिलेगा तो क्या आप ताजमहल में जाकर रहेंगे? आप अपनी सभ्यता और संस्कृति का ढोल आज तक पीटते रहे हैं, परन्तु आज का आपका पतनशील, निकृष्ट और अंधविश्वासों

से भरा जीवन उन आदर्शों से मरी हुई खाल की तरह चिपटा बैठा है। शेर की खाल में चीपों-चीपों करने से कब तक काम चलेगा ? युग के अनुरूप आदर्श बदलते हैं, उनकी कसौटी भी बदलती है। और उसमें बुरा भी क्या है ? हमें अपने आदर्शों की कसौटी बदलनी होगी। नये ज़माने को देखने के लिए नई नज़रें पैदा करनी होंगी। धर्म बुरा नहीं है, परन्तु उसका दुरुपयोग अवश्य बुरा है।"

"तुम कहते हो कि हमारा आज पतन हो गया है। यह तो मैं भी मानता हूँ, परन्तु कभी आपने इसका कारण भी सोचा ? इस पतन का सबसे बड़ा कारण धर्म में अविश्वास है। धर्म व अध्यात्म के इस देश में आज अधार्मिकता और नास्तिकता का बोलबाला हो रहा है। हम अपने हाथों से ही अपनी थाली में छेद कर रहे हैं। प्रोग्रेस और कल्चर के नाम पर पढ़े-लिखे लोग पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे हैं। अपने वेद, अपने शास्त्र व पुराणों को हम भूलते जा रहे हैं। हमारी स्थिति तो आज ऐसी है कि न घर के न घाट के।"

नाथूलाल ने जवाब दिया, "खैर, आपने यह माना तो कि हम पतन की ओर जा रहे हैं। जिसे आप धर्म कहते हैं उसे मैं उपासना-पद्धति कहता हूँ। समस्त धर्मों के मूल सिद्धांत तो एक ही हैं। विज्ञान के विकास से धर्मों की उपासना-पद्धतियों का निष्क्रिय पड़ जाना तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। आज के मनुष्य ने हर वस्तु को बौद्धिक कसौटी पर खरा उतारना प्रारम्भ किया है। समस्त धर्मों की उपासना-पद्धतियाँ सड़-गलकर हट जाएँ तो क्या हानि है ? ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, परन्तु ईश्वर को लेकर मनुष्य ने न जाने कितने धर्म खड़े किये और आपस में खून बहाया। यदि कहीं ईश्वर है तो मनुष्य की इन करतूतों पर न जाने वह क्या-क्या सोचता होगा ? रह गया अपना देश, तो आप उसका इतिहास उठाकर देखिये तो वास्तविकता का आपको पता लगेगा। वहाँ आपको मिलेंगी केवल निम्न जातियों पर उच्च जातियों के अत्याचारों की कहानियाँ। यदि धर्म में यह ढकोसला या ढोंग आदि न होते तो गौतम बुद्ध को ही क्यों यह विद्रोह करना पड़ता ? विद्रोह की यह परम्परा बहुत प्राचीन है। इससे न जाने कितने तथ्यों पर एक साथ प्रकाश पड़ता है ? यदि धर्म के ठेकेदार धर्म के प्रति ईमानदार

रहे होते तो क्या ऐसा परिणाम होता ? विदेशियों का अन्धानुकरण उतना ही बुरा है जितना कि आंख बन्दकर सदैव अपने धर्म, सस्कृति व सभ्यता की डौंडी पीटते रहना। भारत मे दोनो वर्गों के लोगों का विशाल वर्ग है। मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं जो वेदों के सूत्रों मे हवाई जहाज बनाने के फार्मूले ढूंढते हैं। उनका कहना है कि पुराने समय के आग्नेयास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र आज के एटम बम तथा हाइड्रोजन बम ही हैं। हर बात मे केवल अपनी महानता की ही बात करना सत्य को पीठ दिखाना है। यह दिमागी दिवालियेपन का सबूत है। यह एक बदमाशी है।"

अब तक रामायण-मण्डली के समस्त सदस्य आ चुके थे। वे दोनो का वाक्‌युद्ध देख रहे थे, परन्तु अधिक प्रतीक्षा करना उनके वश की बात नही थी। इससे पहले कि पण्डित सीताराम नाथूलाल, को उत्तर देने के लिए अपनी चोंच खोलते, स्वरलहरी एक साथ गूंज उठी—

"इहां हरी निशिचर बैदेही, खोजहिं फिरहिं बिप्र हम तेही···
······श्री सीतारामा······!"

भारत आये।

इस सबका तिलनखेड़ी पर क्या प्रभाव पड़ा ?

न सावन हरा, न भादों सूखा। वही आसमान, पृष्ठभूमि में स्थित वे ही पहाड़ियाँ, उन पहाड़ियों पर स्थित वही लक्ष्मीनारायण टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट। वही लोग ··झोंपड़ियों से उठता हुआ वही धुआँ, सब-कुछ वही ···वही···वही !

भले ही तिलनखेड़ी पर कुछ असर न हुआ हो, परन्तु लगता है कि वर्तमान उन्नति का भारी-भरकम रोलर जैसे तिलनखेड़ी के आसपास जोरों से घूम रहा है। उस भारी-भरकम सभ्यता के रोलर की छाया जैसे तिलनखेड़ी के झोंपड़ों पर पड़ती है। उस छाया में तिलनखेड़ी के झोंपड़े भाव डगमगाते नज़र आते हैं।

सेठ झंडूलाल का बंगला, अमरावती रोड पर, तिलनखेड़ी से बाहर सिर उठाये विशाल-से कम्पाउंड में आसमान से बातें कर रहा है। [illegible] की धूमिल छाया में पहाड़ियों की तराई में तथा इस [illegible] सुप्त बंगले की छाया में —निर्जीव, बेसहारा और बेबस तिलनखेड़ी ऐसी लगती है जैसे वह आसपास फैलती हुई [illegible] के चरणों पर [illegible] अस्तित्व की भीख माँग रही हो। तिलनखेड़ी की [illegible] के [illegible] समय केवल झोंपड़ियों से उठता हुआ धुआँ या [illegible] दूर से दिखाई [illegible] वाले टिमटिमाते दीपक ही होते हैं।

सेठ झंडूलाल तिलनखेड़ी से बाहर है।

[illegible] किनारे पर है। परन्तु [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] जैसे तो कितने लोग बस्ती में ही रहते हैं।

चारों ओर फैलती हुई [illegible] की [illegible] को [illegible] तिलनखेड़ी जैसे न जाने कितने [illegible] के [illegible] हैं। [illegible] की संख्या ही अधिक है, और [illegible] पूर्ण। हरियाली आवे भी कहाँ से, जब [illegible] और [illegible] ही नहीं है तो !

धरमसेठ और [illegible] के [illegible] थे, उन्हें इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की [illegible]

को भी इंसान जाने से डरता था, अब वहीं रात-भर रोशनी जलाकर नव-निर्माण कार्य हो रहा था। किसी समय फौजियों के भारी-भरकम बूटों से दबने वाला पोलो ग्राउंड अब मध्यप्रदेश के मुख्य मन्त्री के नाम पर रवि-शंकर नगर बनता जा रहा था। पोलो ग्राउंड को सरकारी क्वार्टर घेरते चले जा रहे थे।

परन्तु मारुति को तो वही सब-कुछ प्राप्त हुआ जो हर इंसान को कुदरत से उम्र के साथ प्राप्त होता है। भारत आज़ाद होता न होता, परन्तु मारुति को तो प्रकृति के नियम के अनुसार जवान होना ही था। रिक्शे का लाइसेंस प्राप्त करने के लिए कम-से-कम एक सौ पन्द्रह पौंड का वज़न अपेक्षित था। इतना वजन मारुति का हो गया था। मारुति के जीवन की एक बहुत बड़ी साध पूरी हुई। मारुति को रिक्शे का लाइसेंस मिल गया। नंगे और धूल से सने लौंडों के साथ किसी समय धूल उड़ाने वाला मारुति अब मर्द बन गया था। अब वह अपने घर के लिए कमाऊ पूत था। बछिया की कीमत घर में उस दिन होती है जब वह गाय बनकर दूध देना शुरू कर देती है। उसी प्रकार जवान बेटे की भी वास्तविक कीमत घर में उसी दिन बढ़ती है, जब वह कमाई शुरू कर देता है। मारुति की कमाई पर लक्ष्मी को नाज़ होना स्वाभाविक था। लक्ष्मी को रामू से अधिक मारुति प्रिय था। मारुति लक्ष्मी को अपना ही पुत्र लगता है। रामू में तो 'बाबूपन' है। लक्ष्मी ने फतवा दे दिया है कि रामू बाबू बनेगा या भूखा मरेगा। गरीबी में रहना रामू के वश की बात नहीं है।

मारुति के काले भारी पैर रिक्शे के पैडलों पर पड़कर रिक्शे को उसी तरह आगे बढ़ाते हैं जिस प्रकार मज़दूरों के फौलादी हाथ कारखानों को चलाकर देश को 'सभ्य' बना रहे हैं। मारुति सोचता है कि आखिर आज़ादी का क्या मतलब ? आज़ादी के कारण उसने अपने चारों ओर जलसे, उत्सव एवं रोशनियां होती देखी हैं, और यह भी देखा कि अंगरेज़ चले गये परन्तु चारों ओर लोगों की एक ही शिकायत है कि "महँगाई बढ़ रही है। लड़ाई के साथ शुरू हुई महँगाई रुकने का नाम नहीं लेती।"

महँगाई का अजगर बढ़ता ही चला जा रहा है।

मारुति को प्राइमरी का मास्टर याद आता है जो बार-बार कहा

करता था, "बेटा पढ़ ले···जिन्दगी में काम आयेगा।" परन्तु मारुति यदि पढ़ जाता तो रिक्शा कौन चलाता ? यह काम भी तो किसी-न-किसी को करना ही है।

मारुति अब 'रिक्शेवाला' है। खुद कमाता है, इसलिए खुद खर्च भी कर सकता है। पहली-पहली कमाई का एक अपना ही मोह होता है, एक अपना ही आकर्षण होता है। पहली बरसात के पानी की तरह उसमें एक सोंधी-सी सुगंध होती है। बाद को तो भले ही लाखों-करोड़ों की ही आमदनी क्यों न हो जाए, परन्तु उसमें पहली-पहली कमाई का मज़ा कहाँ ? दुनिया की कितनी ही बातों में पहली-पहली अवस्था का अपना ही मज़ा होता है।

मारुति की भावनाएँ एक विशिष्ट मोड़ पर थीं। उसकी भावनाएँ बहुत ही चक्करदार घुमाव ले रही थीं। उन भावनाओं की जड़ तो पहले भी थी, परन्तु वृक्ष के फलने-फूलने का मौसम अब आया था।

मौसम की ऐसी ही कुछ पहली-पहली हवा मारुति के जीवन पर भी छा रही थी।

और यह मौसम तो जीवन में केवल आता ही एक बार है।

२

रामू ने ले-देकर दूसरी ट्रायल में मैट्रिक पास कर लिया। मॉरिस कालेज में वह दाखिल हो चुका था। जैसे-जैसे दिन बढ़ते थे, वैसे-वैसे रामू की बाँसुरी-वादन की प्रतिभा में निखार आता जा रहा था। रामू की रहस्यमयी चुप्पी ने उसे अपनी क्लास में कुछ विशिष्ट-सा स्थान दे दिया था। कर्नल चटर्जी रिटायर होकर सपरिवार धन्तोली में ही रहने लगे थे। रामू पिछले वर्ष से उनके यहाँ संगीत की ट्यूशन करने लगा था। इतने ही अर्से में रामू चटर्जी के सारे परिवार में घुल-मिल-सा गया था। चटर्जी ने रामू में एक सौम्य एवं गम्भीर व्यक्तित्व पाया था। ऊपरी छत पर केवल एक कमरा था। वह कमरा रेणु का था। यह संगीत-शिक्षा रेणु के कमरे में ही चलती थी।

रेणु सितार पर जै-जै-वंती की गत बजा रही थी। पास ही रामू धीरे-धीरे तबला बजा रहा था। रेणु की छोटी बहन एक मंत्रमुग्ध दर्शक की भांति वहां मूर्तिवत् बैठी थी। कर्नल चटर्जी ने धीरे से प्रवेश किया और हाथ के इशारे से रामू को बैठे रहने के लिए ही कहा, साथ ही संगीत का क्रम जारी रखने की ओर भी इशारा किया।

पहली धुन समाप्त हुई।

"मि० पाटिल, रेणु को इस तरह एक्सपर्ट बना दो कि जो लड़का इसकी शादी के लिए इसे देखने आये, बस वह सितार सुनकर ही मस्त हो जाए।" कहकर स्वयं ही चटर्जी खिलखिलाकर हँस पड़े। रामू केवल मुस्कराकर ही रह गया—ऐसी मुस्कराहट जोकि उसके हिस्से में जबरदस्ती पड़ी थी। रेणु का मुंह लाल हो गया। उसने झेंपती हुई नजरों से अपने पिता को देखा, फिर रामू को। और उलझ गई वह सितार के तारों में। वह यह बताने का विफल प्रयास करने लगी कि वह बहुत व्यस्त है और उसने जैसे इस ओर देखा तक नहीं।

"और मैं······।" छोटी लड़की रेखा ने चिल्लाकर कहा। वह कॉन्वेंट में छठी कक्षा में पढ़ती थी।

"तू······तेरी शादी तो ऐसे आदमी से करूँगा जो रोज़ सुबह उठते ही तुझे गिनकर आठ डंडे लगाया करेगा।"

"वह आठ लगायेगा तो क्या मैं चुप रहूँगी ? मैं दस लगाऊँगी दस।"

"वह तेरी चोटी उखाड़ लेगा।"

"मैं उसकी मूँछें न उखाड़ लूंगी !"

"आजकल के आदमियों की तो मूँछें होती ही नहीं।"

"तो आपकी इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें कैसे हैं ?"

"इसका जवाब मास्टर से पूछो।"

"मैं ऐसे आदमी से शादी करूँगी जिसकी खूब मूँछें हों, जिन्हें खींचने का मज़ा आएगा।"

रेखा को गुदगुदी करते हुए चटर्जी ने कंधे पर बिठा लिया। उन्होंने कहा, "पढ़ो, पढ़ो भाई, तुम लोग अपना काम करो। हम लोग तो बेकार आदमी हैं। इस शैतान की आंत को भी यहाँ से ले जा रहा हूँ। तुम लोगों

को यह डिस्टर्ब करेगी।"

"आपके आने से पहले तो रेखा बिलकुल शांत बैठी थी।" रामू ने कहा।

"दादा को भी वक्त-बे-वक्त मज़ाक सूझता है।" रेणु ने कहा।

"हर किसी की अपनी-अपनी उम्र होती है। उसी उम्र के अनुसार मनुष्य की भावनाएँ होती हैं। किसी समय वे भी हमारी उम्र के रहे होंगे। उस समय निश्चित ही उनकी भावनाएँ आज से भिन्न रही होंगी। अब उनकी यह उम्र लड़कियों की चिंता करने की है, जो स्वाभाविक भी है।"

"आप तो मुझे मि० चटर्जी का इन्ट्रोडक्शन दे रहे हैं।" सुनकर रामू खिसिया-सा गया। रेणु के सामने ऐसे विरले ही अवसर आते जबकि रामू खुलकर कुछ बोल पाता, परन्तु रेणु जैसे बिल्ली की तरह शिकार को दबोचने बैठी रहती। रामू, रेणु का जवाब पाकर खिसिया-सा जाता। रामू ने कहा, "आपका अधिकार मैं कहाँ छीन रहा हूँ? आपने चटर्जी पर जो रिमार्क दिया, मैं तो उसे समझाने का ही प्रयास कर रहा था।"

"मुझे समझाने का प्रयास कर रहे थे, या अपने को।"

"मतलब?"

रेणु की माँ ने प्रवेश किया। उसने फटे बाँस की-सी आवाज़ में कहना शुरू किया, "मास्टर बाबू, इस लड़की को फालतू बातें मत करने दिया करो। बहोत बोलती है। भेजा चाट जाती है। इसका ध्यान पढ़ाई में लगाओ। नहीं माने तो मुझे आकर बताया करो। इसको बौड़-बौड़ (बड़-बड़) मत करने दिया करो। इसके बाप ने इसे बिगाड़ रखा है।"

रामू ने हँसते हुए कहा, "माँजी, आप घबराइए नहीं, इसकी चिंता मुझे है।"

श्रीमती चटर्जी वहाँ से मुड़कर छत पर चक्कर काटने लगीं। श्रीमती-जी कर्नल से किसी बात में कम नहीं थीं। वही भारी-भरकम शरीर, बंगाली ढंग से साड़ी पहने हुए और पीछे चाबियों का गुच्छा लटका हुआ, माथे पर बड़ी-सी बिन्दी एवं पान से मुँह भरा हुआ। मोटे तौर पर यही उनकी रूपरेखा थी। यदि वे औरतों की फौज में होतीं तो शायद उन्हें भी कर्नल-वर्नल का कोई पद अवश्य सादर प्राप्त होता। मिस्टर चटर्जी जितने हँसोड़

एवं अलमस्त तबियत के थे उतनी ही वे गुस्सैल और तेज़ मिज़ाज की थीं। आजकल श्रीमती चटर्जी को केवल एक ही धुन थी और वह यह कि रेणु को शादी के लिए बिलकुल उपयुक्त बना दिया जाए। वे चाहती थीं कि लड़की कम-से-कम बी० ए० पास कर ले। गृह-कार्यों में दक्षता प्राप्त करने के अतिरिक्त गाना-बजाना भी सीख ले। छत पर चक्कर लगाती हुई वे ज़ीने से नीचे उतर गईं।

"क्या बात है, सबको ही आपकी बड़ी फ़िक्र है?" रामू ने रेणु से पूछा।

"आपने देख तो लिया, फिर पूछने की क्या ज़रूरत है?"

"आपका कहना ठीक है। समझदार को वैसे तो इशारा ही काफ़ी होना चाहिए।"

"परन्तु आपको यह भ्रम कैसे हो गया कि आप समझदार हैं?"

"ख़ैर इस समझदारी का मैं दावा भी नहीं करता। यह समझदारी आप ही के पास रहे और आप ही अपनी समझदारी से कदम उठाएँ तो वह मेरे लिए ठीक होगा।"

"अच्छा मारिये गोली इन बातों को, एक रिक्वेस्ट है, मानेंगे?"

"क्या?"

"कल दोपहर को मुझे यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी से पुस्तकें लेनी हैं। आप वहाँ आ सकते हैं क्या?"

"क्या लाइब्रेरी का ऐसा कोई नियम है कि जब तक दो व्यक्ति एक साथ न हों तब तक उन्हें कोई पुस्तक नहीं मिल सकती?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।" झेंपते हुए रेणु ने कहा।

"इतनी बड़ी लाइब्रेरी में मुझे अकेले डर लगता है। फिर आस-पास अनेक लड़के भी खड़े होते हैं जो ख़ूंखार जानवरों की तरह घूरते रहते हैं।"

"तो कर्नल साहब को ही क्यों नहीं साथ ले जातीं?"

"बार-बार उन्हें साथ ले जाना अच्छा नहीं लगता। दोपहर को तो अक्सर वे सोया ही करते हैं। दो-एक बार की बात हो तो ठीक, यह तो रोज़-रोज़ का काम है।"

"तो यह बात है। इस रोज़-रोज़ के काम के लिए मैं ही तुम्हें एक

बेकार मिला हूँ।"

"तो ट्यूशन के साथ उसका भी महीना बँधवा लीजिये।" रामू कट-कर रह गया। यह वार अचानक हुआ था, और था भी काफी भारी। उसने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।···आप तो कहीं की बात कहीं जाकर लगाती हैं।"

"ऐसा न करूँ तो आपकी चोटी पकड़ में कैसे आए !"

"खैर···आइ ··एम···सारी···न जाने मैं क्या-क्या बक जाती हूँ ! आप मेरे मास्टर हैं। आपकी इज्जत मुझे करनी चाहिये।" रामू हँसकर लौट पड़ा।

रामू ट्यूशन के रूप में चटर्जी के घर से चालीस रुपये महीने पाता था। तिलनखेड़ी से धन्तोली तक आने-जाने में उसे रोज करीब आठ-दस मील का चक्कर पड़ जाता था। अपने घर का दुख रामू चटर्जी के घर जाकर भूल जाता। चटर्जी के घर पहुँचते ही जैसे वह ताजा हो जाता। चटर्जी के घर आकर उसे ऐसा लगता जैसे वह अपने ही परिवार में आ गया है। परन्तु जब कभी भी उसे वास्तविकता का ज्ञान होता तो वह सहसा उदास हो जाता, खो जाता। उसे लगता जैसे किसी ने आसमान से उठाकर जमीन पर पटक दिया हो। रेणु उसके इस परिवर्तित भाव को झट पकड़ लेती, किन्तु कारण नहीं समझ पाती। वह रामू की आँखों में कुछ ढूँढने का प्रयास करती। परन्तु रामू मास्टर था रेणु का। प्रतिष्ठा का व्यवधान दोनों के बीच था। रेणु का कोई भाई नहीं था। अतएव रामू के संपर्क से उसमें कितनी ही प्रकार की मिश्रित भावनाएँ आई थीं। एक बार रेणु अपनी माँ से विद्रोह कर सकती थी, परन्तु मजाल है कि रामू की वह कोई भी बात टाले। रामू भी रेणु की इच्छाओं को देखकर ही कदम उठाता। माँ-बेटी का अक्सर झगड़ा होता ही रहता था। रामू ने रेणु में सौंदर्य के साथ-ही-साथ एक अल्हड़पन भी देखा था। रामू रेणु का 'गुरुजी' तो नहीं था, परन्तु 'मास्टरजी' अवश्य था। निस्संदेह रामू की संगीत-साधना काफी बढ़ी-चढ़ी थी। सादे ढंग से रहकर चालीस रुपयों से वह अपना मासिक खर्च सहज ही निकाल लेता था। बाकी केशो सेठ था ही।

३

मारुति सुबह रिक्शा लेकर निकला तो एक सवारी के रूप में एक पुलिस देवता ने दर्शन दिये।

"ऐ रिक्शा!" आवाज़ सुनकर मारुति रुका।

"रिक्शा खाली है न?" कान्स्टेबल ने पूछा।

"हाँ।" पुलिस वाला छलांग मारकर रिक्शे पर बादशाही अदा से सवार हो गया। उसने अपना बेल्ट उतारा और करीब ही सीट पर रख लिया। "राधेश्याम।" और उसके बाद पुलिस वाले ने एक जोरदार पुकार मारी। मारुति ने शक्ल-सूरत व उच्चारण से पहचान लिया कि पुलिसमैन उत्तर प्रदेश का है। मारुति महाराज बाग तक सीधा ही रिक्शा हाँकता रहा, फिर मारुति को सहसा इस बात का खयाल आया कि पुलिस वाले से यह तो पूछा ही नहीं कि उसे कहाँ जाना है? मारुति ने पूछा, "मुन्शीजी, जाना कहाँ है?"

"घबराता क्यों है?···बताता हूँ···अभी तो तू रिक्शा बढ़ाये जा।"

मारुति चुप हो गया। अभी मारुति को रिक्शा चलाते केवल तीन माह ही हुए थे और उसने अपने अनुभवों से यही जाना था कि पुलिसवालों से अधिक मगज़-पच्ची करना निरर्थक ही होता है। वह जानता था कि रिक्शेवाले का और पुलिस का संबंध साँप और नेवले का संबंध होता है।

सीताबर्डी की कोतवाली आने पर कान्स्टेबल रिक्शे से उतरा और मारुति को कहता गया, "जब तक मैं न आऊँ···रुके रहना।"

मारुति सड़क के एक किनारे रिक्शा कर, उसकी सीट पर टाँगें चौड़ी कर बैठ गया···

लगभग डेढ़ घंटा बीत गया···।

पुलिस कांस्टेबल का पता नहीं। मारुति के धैर्य ने जवाब दे दिया।

मारुति उतरा और सिर पर टोपी पहनकर कोतवाली की ओर गुस्से से देखने लगा। अभी तक उसने कुछ कमाई नहीं की थी। घर से भी खाली जेब ही वह निकला था। जेब में दो-चार आने भी नहीं थे कि वह चाय पी लेता। वह पास के ही नल से पानी पीकर आया।

"ऐसी-की-तैसी···साले की···" कहकर वह रिक्शे को सड़क पर लाया।

"ओ रिक्शा, ठहरना, आ रहा हूँ।" मारुति ने देखा कि वह पुलिस वाला दौड़ता हुआ आ रहा है।

"अब कहाँ भागता है ? तुझे खड़ा रहने को कहा था।"

"दो घंटे से रुका तो था।"

"रुका था तो कौनसा अहसान किया ! चल इतवारी।"

किसी के नाम का वारंट लेकर कांस्टेबल निकला था। उसके साथ एक अन्य आदमी था। उसे भी रिक्शे में बैठा लिया। रास्ते में दो-एक स्थानों पर दोनों ने मुफ्त चाय पी। एक जगह मारुति को भी चाय पिला दी। पुलिस वाले ने कहा, "दूसरी सवारियाँ तो तुझे चाय तक नहीं पूछतीं।"

"क्योंकि वे सवारियाँ पैसे तय करके सवार होती हैं।"

"अबे तो हम क्या मुफ़्त में घूम रहे हैं ?" दोनों सवारियों ने मुँह में पान की गिलोरियाँ ठूँसते हुए कहा।

रास्ते में उस कांस्टेबल ने तीसरे आदमी को पायदान पर बैठा लिया। मारुति ने कहा, "चालान हुआ तो ···?"

"कौन करेगा चालान ?"

"जिसका काम चालान करना है।"

"मैं कौन हूँ···!"

"यह तो आपको खुद मालूम है।"

"साला फालतू बके जा रहा है। जब मैं खुद रिक्शे में बैठा हूँ तो क्यों डरता है ? मैं जो हूँ गोरधन पहाड़ की छाया की तरह···।"

सामने चौरस्ता आया। तीनों प्राणी रिक्शे में मजे से चले जा रहे थे। रिक्शे से हँसकर कांस्टेबल ने चौरस्ते के पुलिस वाले को देखा और चिल्लाकर कहा, "सइयाँ भए कोतवाल तो अब डर काहे का !"

इतवारी से लौटते-लौटते एक बज गया। मारुति को भूख लग रही थी। वह बहुत थक चुका था। बार-बार वह माथे का पसीना पोंछता था। उसने कांस्टेबल से गिड़गिड़ाकर कहा, "कुछ तो पैसे दो। सामने होटल से

खाकर आ जाता हूँ।···भूख से मर रहा हूँ।"

"ठहर··तेरी···" पुलिस कांस्टेबल ने एक भद्दी-सी गाली दी। पास के एक गंदे व छोटे-से होटल से मारुति 'मिसल'[1] खाकर आ गया।

शाम को पुलिस कांस्टेबल मारुति को टाकली लाइन अपने घर तक ले आया।

"पैसे···" मारुति ने पूछा।

"पैसे, पैसे···का नाम क्या लेता है···रुपये मिलेंगे···रुपये···लेकिन अभी नहीं···। बिल बनेगा, सरकारी खज़ाने जायेगा···ठहरना होगा। कुल पन्द्रह रुपये मिलेंगे। आज तूने सरकारी काम किया है।"

"मालिक, मैं दिन-भर का भूखा हूँ।···सुबह पैसे लेकर भी नहीं चला था···।"

"भूखा है तो खाना खा ले···और क्या हो ?"

"मालिक, मैं हाथ जोड़ता हूँ···मेरे पैसे दे दो।"

"कहा न, सरकारी बिल बनेगा। घबराने की क्या बात है ? तूने गीता पढ़ी है या नहीं···? खैर तू तो अँगूठा छाप आदमी होगा! गीता की बातें तू क्या जाने ? कर्म करो, फल भगवान् देगा। तूने अपना काम ईमानदारी से किया है। बिल बनेगा, रुपये मिलेंगे। ठहर भी नहीं सकता क्या ? ऐसी कौनसी गाड़ी छूट रही है ?"

"मालिक, मुझे आज का किराया देना है। सेठ मेरे सिर पर चढ़ बैठेगा।"

"तू मानता है कि नहीं। तुझे एक बार कहा कि जा यहाँ से···जानता नहीं कि यह पुलिस लैन है। अभी एक सीटी मारूँगा तो दस-बारह इकट्ठे हो जाएँगे···नहीं मानेगा तो पीट-पीटकर हड्डियाँ तोड़ दूंगा। और रिक्शा तोड़ फोड़कर नाले में फेंकूँगा सो अलग।"

मारुति का चेहरा रूआँसा हो गया। बात बढ़ती देख दस-पाँच पुलिस वाले जमा हो गये। मारुति मुँह लटकाकर वापस आ गया।

रिक्शा सेठ झंडुलाल का था। मारुति ने अपनी सारी रामकहानी सेठ को बताई। उसने सुनकर कहा, "बेटा, बहानेबाजी नहीं चलेगी।

---

१. सेव, चिवड़ा आदि की मिली-जुली प्लेट।

एक घंटे का वक्त देता हूँ···रुपये कहीं से भी लाओ।"

झड़ुलाल के पाँच सौ रिक्शे चलते थे, और मजाल थी एक भी रिक्शे वाले की कि वह टाइम पर पैसे न दे। झड़ुलाल ने गुंडे पाल रखे थे। मारुति ने लक्ष्मी से दो रुपये लेकर चुकाये।

उस दिन मारुति रो दिया।

४

तिलनखेड़ी बस्ती के पास दो ही तो तालाब थे, अंबाझिरी और तिलनखेड़ी तालाब। दोनों तालाब बस्ती के दोनों छोरों पर थे। शहर से काफी दूर, करीब-करीब शहर से बाहर। रेणु को मालूम था कि रामू इस ओर अक्सर जाया करता है, और उसे यह भी मालूम था कि रामू विशेषकर अंबाझिरी की ही ओर जाता है। इसलिए एकाध शाम रेणु उस ओर ड्राइव करती निकल जाती और यदि रामू रास्ते में मिल जाता तो उसे भी कार में बैठा लेती। अंबाझिरी पर सूर्यास्त देखने के लिए रामू विशेष उत्सुक रहता।

परन्तु आज तो उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि रेणु की मोटर इस ओर निकलेगी। रेणु ड्राइव करती उस ओर निकल ही गई। साथ रामू को बैठाकर अंबाझिरी ले आई। तालाब पर साँझ का सूरज बीमार शक्ल का नजर आ रहा था। उसकी रोशनी की चादर पानी पर फैली थी। पानी उस रोशनी में काँप-सा रहा था।

रामू देखता है कि रेणु के मुख पर जैसे सूरज की रोशनी दुगुनी तेज होकर दमकती है। रामू की नजरें रेणु के मुख पर टिक नहीं पा रही थीं। रामू के चेहरे पर थकावट के भाव थे। परन्तु सरोवर से आती हुई मन्द-मन्द बयार ने उसे प्रफुल्लित कर दिया। रेणु ने हँसकर रामू को देखा और साड़ी का पल्ला सम्हालती हुई तालाब के बाँध के अंतिम छोर तक बढ़ गई।

रामू उसके पीछे हो लिया। रामू की बाँसुरी से धुन निकली—"कान्हा तेरी बाँसुरी···।"

वहीं बैठकर रामू पूरी धुन बजा गया। रेणु उसके पास ही खड़ी थी। हाँ, वह रामू के करीब अवश्य आ गई थी। रेणु की साड़ी का पल्ला रामू के सिर से उड़-उड़कर निकल जाता था। रेणु ने काश्मीर सिल्क की साड़ी पहन रखी थी। वैसे वह रामू की ओर पीठ किये खड़ी थी।

रामू के मन में तरह-तरह के परस्पर विरोधी भाव उठ रहे थे। परन्तु उसके बाद ही जैसे अपने-आपको समझाता हुआ वह सोचता है कि उसे ऐसे विचार मन से निकाल देने चाहिये। कहाँ वह एक रिक्शेवाले का लड़का और कहाँ रेणु ···रामू अपने बारे में सोचता है कि उसकी माँ बर्तन माँज-माँजकर किसी तरह दो जून का खाना मुश्किल से जुटा पाती है। न रेणु उसकी जाति की है···और न ही उसके धर्म की।

रामू विचार करता है—'इतना थोड़ा है कि मैं उसका मास्टर हूँ। एक मास्टर की हैसियत से जो प्रतिष्ठा उसके परिवार से मुझे मिलती है वह क्या मुझे कहीं अन्यत्र मिल सकती है ? माँ के प्यार और केशो सेठ के वात्सल्य की अपनी जगह है। मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिये···'

रामू जब नहीं उठा तो रेणु ही उसके करीब बैठ गई। उस निर्जन प्रान्तर भाग में केवल ये ही दो प्राणी तालाब के बाँध पर बैठे थे।

रेणु ने अपना शरीर पूरी तरह से घुमाकर कहा, "मास्टर···जी···!"

रेणु के इन स्वरों से रामू को अपनी वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हुआ।

"मेरा आप मजाक क्यों करती रहती हैं ?"

"इसलिए कि उसमें मुझे एक खास मज़ा आता है।"

"मैं आपका मज़ाक करूँ तो ?"

"धन्य भाग ! आप जिस दिन उस लैवल पर उतरेंगे तो मिठाई बाँटूँगी। मैं तो रास्ता देख रही हूँ उस दिन का जब आप भी जानदार बनेंगे। आप तो चौबीसों घण्टे अपनी मस्ती में खोए रहते हैं। आपको दुनिया में केवल एक ही चीज प्यारी है और वह है आपकी बाँसुरी। बाकी दुनिया भले ही चूल्हे में जाये। यदि आप मेरा मज़ाक करने लगेंगे तो आपको सीरियस कौन कहेगा ? बुज़ुर्ग और महान् कौन कहेगा ? वह तो मैं ही सिरफिरी हूँ कि आपका मजाक करती हूँ। मुझे अपनी सीमा में

रहना सीखना होगा, वह भी आपसे।"

"दुनिया में ऐसे भी रेडियो होते हैं जिनका कोई [स्विच नहीं दबाना पड़ता। अपने आप बजना शुरू कर देते हैं और फिर बन्द होने का नाम ही नहीं लेते।"

"समझ गई..."

"आप समझदार हैं।"

"बेवकूफ समझदारों को जल्दी पहचानते हैं।"

"आप मुझे गाली क्यों देती हैं ?"

"आइ एम सारी मि० पाटिल ! इसीलिए तो कहती हूँ कि आपसे मजाक करना ही गुनाह है। आप इतने सेंसिटिव हैं कि आपको कुछ भी कहना आग से खेलना है।...मैं तो पगली हूँ...आप उस पर गंभीर होकर क्यों विचार करते हैं ?"

रामू हँस पड़ा...खुलकर।

"आप हँसते क्यों हैं ? आपकी हँसी ही मुझे भ्रम में डाल देती है।"

रामू की डायरी के कुछ पृष्ठ...

"सोचता हूँ महान् बाँसुरी-वादक पन्नालाल घोष को पत्र लिखूँ, परन्तु यह सोचकर चुप रह जाता हूँ कि जवाब भी मिलेगा या नहीं। कागज-कलम को हाथ तो लगाता हूँ, परन्तु हाथ लड़खड़ा जाते हैं। बीथोवन का जीवन-चरित्र पढ़ना चाहता हूँ। भारतीय संगीत के अच्छे-अच्छे जानकार पश्चिमी संगीत का मजाक उड़ाते देखे जाते हैं। वे कहते हैं कि यह क्या हू-हू-हो-हो.. का हल्ला है ? कई पश्चिमी संगीतकार भी भारतीय संगीत के विषय में कुछ ऐसा ही मत व्यक्त करते होंगे, क्योंकि अज्ञानियों की बिरादरी सारे संसार में है। फर्क केवल मात्रा का है, किसी देश में ज्यादा और किसी देश में कम। मुझे पश्चिमी संगीत एवं भारतीय संगीत के मूल में कोई खिन्नता नजर नहीं आती। पश्चिमी संगीत में पुरुषत्व है—भारतीय संगीत में शान्ति है · माधुर्य है...एक विशिष्ट लय है। हर देश की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। अपने देश की ही सांस्कृतिक परम्परा का सब-कुछ समझकर अन्य देशों की निन्दा करना उतना ही शोचनीय है जितना कि संसार के एकाध देश से प्रभावित

होकर अपने देश की निन्दा करना।

···बीथोवन का संगीत सुनकर आत्मविभोर हो उठता हूँ। शरीर के तार झनझना उठते हैं। एकबारगी तो बेहद जोश आ जाता है, किन्तु दूसरे ही क्षण मुझे अपनी सीमाएँ इस बात का साफ़-साफ़ ज्ञान कराती हैं कि इन महानतम संगीतसाधकों के सामने तो मैं केवल एक क्षुद्रतम प्राणी हूँ···एक अदना-सा जीव!

रात को नौ बजे बी० बी० सी० से बीथोवन की सेवंथ सिंफनी आने वाली थी। एक दिन पहले ही मैंने चटर्जी से रेडियो सुनने की इजाजत ले ली थी। चटर्जी के घर में रात को साढ़े आठ बजे पहुँचा। सारा परिवार सरकस देखने गया था। घर की नौकरानी रसोई में व्यस्त थी। मुझे देख उसने ड्राइंगरूम का दरवाजा खोल दिया।

रेडियो पर बी० बी० सी० लगाया।

बीथोवन की मृत्यु हो गई है। किन्तु उसके स्वर अमर हैं। उसका अमर संगीत बज रहा है। बड़े-से ड्राइंगरूम के कौच में धँसकर सिंफनी सुनता हूँ। सिंफनी के स्वर मेरे रोम-रोम में समाते चले जा रहे हैं। मुझे रोमांच हो आया।

१६वीं सदी के यूरोपवासी कितने भाग्यशाली रहे होंगे जिन्होंने इस संगीतकार को प्रत्यक्ष रूप से सुना होगा। आनेवाला युग चाहे कितनी ही प्रगति क्यों न कर ले, किन्तु पिछले युग भी अपनी महानता को बीथोवन जैसी विभूतियाँ पाकर अक्षुण्ण रखेंगे। बीथोवन तो अपने-आपमें वही था जो मैं हूँ, परन्तु उसका संगीत ही उसका व्यक्तित्व था।

संसार का महान् संगीतकार स्वयं बहरा था। एकाकी···निर्धन··· मैं भी तो निर्धन हूँ।

बीथोवन बहरा और निर्धन था, इसका यह आशय नहीं कि संसार का हर बहरा और निर्धन बीथोवन है।

सिंफनी समाप्त हो चुकी थी। मैं लौट पड़ा। एक बीथोवन की वृद्धावस्था का बस्ट देखा था। उसकी आँखों की करुणा मेरे समक्ष घूम गई। चेहरे पर अनेक झुर्रियाँ···लगता था जैसे बस्ट अभी बोला···अभी बोला।

इन विचारों से घिरा मैं सड़क पर एक रिक्शे से टकराते-टकराते बचा।

सम्हलकर चलने लगा।···विवेक ने चेतावनी दी—'सम्हलकर चल, यदि किसी तांगे या रिक्शे के नीचे आ गया तो बीथोवन तुझे नहीं बचाएगा।'

सत्तावन वर्ष में बीथोवन की अवस्था कैसी रही होगी? निपट-निर्धन, एकाकी और बहरा। रोग उसके अंग-अंग में बस चुका था। चेहरे पर झुर्रियों ने मकड़ी के जाले की तरह जाल बुन लिया था। ऊपर का मोटा ओंठ निचले ओंठ को ढँके रहता था।···उसके भद्दे एवं बदसूरत चेहरे की आँखों में अद्भुत चमक थी। आजन्म अविवाहित···संगीत के अमर प्रवाह का बोझ उसीने उठाया था।"

रामू ने जहाँ-जहाँ सोच-विचारकर कलम चलाई थी वहाँ तो उसके अक्षर सुघड़ और छोटे थे। जहाँ वह भावना के प्रभाव में बह गया था, वहाँ उसकी कलम में तेजी आ गई थी। अक्षर भी दूर-दूर एवं बड़े-बड़े हो गये थे।

५

आनेवाले जमाने को पहचानने की भगवान् ने सेठ झडुलाल को एक विशेष प्रकार की बुद्धि दी थी। एक वर्ष पहले ही सेठजी को आत्मज्ञान प्राप्त हो गया था कि आजादी आने वाली है। बस फिर क्या था, एक रात में कायापलट हो गई। सारी पोशाकें खद्दर की हो गईं। कांग्रेस समितियों को डटकर चंदे दिये गये। लड़ाई सेठ के घर लक्ष्मी छप्पर फाड़कर लाई थी।

झडुलाल के मार्ग-दर्शन में केशो ने भी हाथ रंगे। केशो एक प्रकार से झंडुलाल के मैनेजर ही हो गये। झडुलाल के घर वाले व नौकर-चाकर केशो को भैयाजी की संज्ञा से संबोधित करते।

आजादी के मिलते ही चुनावों का जोर हुआ। कांग्रेस की प्रतिष्ठा का क्लाइमेक्स था। वह समय ऐसा था कि यदि किसी भी ठूंठ को कांग्रेस के नाम पर मत दे दिया जाता तो वह धारा सभा या विधान सभा के लिए निर्वाचित हो जाता।

केशो सेठ को बजरंग पहलवान ने जोश दिलाया। बजरंग पहलवान ने सेठ से कहा, "केशो सेठ, खड़े हो जाओ। सारी बस्ती के वोट मिलेंगे।" बस्ती के टिकट मिलें या न मिलें, परन्तु केशो कांग्रेस के टिकट पर खड़ा होना चाहता था। इसलिए वह झंडूलाल से सलाह लेने गया। झंडूलाल ने कहा, "लाला ख़याल बुरा नहीं है,परन्तु देखना होगा कि दुनियादारी की कसौटी पर यह रुपये में से कितने आने खरा उतरता है।"

"आपको मेरी कामयाबी में क्या शक है?"

"कामयाबी हासिल हो भी जाये तो सारी समस्याएँ तो हल नहीं हो जातीं।"

"ऐसी कौनसी समस्याएँ हैं?"

"धर्मपेठ से मैं खड़ा हो सकता हूँ और जीत भी सकता हूँ।"

"फिर देर किस बात की है?"

केशो सेठ एकटक सामने दीवार को देखता है। दीवार पर बड़े-बड़े उपदेश नीली स्याही से लिखे हैं: "असत्य वचन महापाप है," "सत्य ही ईश्वर है," "किसीका दिल मत दुखाओ" आदि-आदि। झंडूलाल ने कहा, "मान लो तुम चुनकर भी आ गये तो उस चुनाव से क्या फ़ायदा होगा? फायदा तभी है जब तुम्हें चुनाव में आनेवाली मेजारिटी पार्टी की टिकट मिले। बहुमत इस समय कांग्रेस का ही होगा।"

"यही तो मेरा भी इरादा था।"

"परन्तु मेरा ख़याल है कि अभी यह टिकट लेना ठीक नहीं। पहले तमाशा देखो। एक चुनाव हो जाने दो। तब तक कांग्रेस की सेवा कर उसमें अपनी जगह बनाओ। हम और तुम जेल तो गये नहीं हैं। कल को सत्ता प्राप्त कर यदि कोई कांग्रेसी कुकर्म करेगा तो उसके अनेक भाई-बंद उसे बचा लेंगे, क्योंकि उनके पास जेल जाने का सर्टिफ़िकेट होगा। इसलिए हमारी इज्जत तो हमारी अपनी ताकत से बढ़ेगी। हमारी ताकत है हमारा पैसा। उस पैसे से इन वोटरों को खरीदो। हमारा वज़न भारी होगा तो कांग्रेसी खुद-ब-खुद हमारी ओर हाथ बढ़ायेंगे।···इस पहले चुनाव में उनकी मदद कर अपनी जगह बना लो।"

"सेठजी, आपकी बातें अपनी ही होती हैं। दुनिया की हर बात न तो

व्यापार है और न ही तेजी-मंदी का धन्धा। सीधी-सी अक्ल की बात है कि गंगा बह रही है, उसमें हाथ धो लो। कांग्रेस का टिकट मिल जाता है तो उस पर खड़े होने से क्या नुकसान है? यदि टिकट न मिले तो आपका रास्ता तो है ही। कांग्रेस की टिकट प्राप्त करने के लिए देखते नहीं कैसी मारा-मारी हो रही है? जो चीज आपको मिली ही नहीं है, उसे आप कैसे इन्कार कर सकते हैं? आपको किसने कांग्रेस की टिकट दी है जिसके लेने या न लेने का विचार अभी से आपके मन में आ रहा है। यही अवसर है। चुने गये तो चुने गये, नहीं तो मालूम नहीं कि कल को क्या हो? कांग्रेस की इज्जत रहे. न रहे। मेरे पास तो पूरे वोट हैं। कांग्रेसी टिकट मिले या न मिले मैं तो चुनाव जीत सकता हूं। मैं कारपोरेशन के लिए खड़ा होता हूँ, आप एम० एल० ए० बनिए। बनिये का काम ही बनते रहना है, बस अब आप साधारण बनिए से महान् बनिए। अंग्रेज कौन थे?······बनिये! ···जरा ध्यान देने की बात है।" केशो सेठ को ऐसा लगा कि जैसे उसने आज मण्डुलाल को चित कर दिया है। उसने जैसे सवा लाख रुपये की बात कह डाली है। मण्डुलाल भी एम०एल० ए० का नाम सुनकर चौंके···एम० एल० ए०···मेम्बर ऑफ लेजिस्लेटिव असैंबली। मण्डुलाल की आँखें जैसे चौंधियाने लगी। उन आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक आ गई। उन्होंने केशो की जांघ पर हाथ मारते हुए कहा, "बात तो वाकई ग़ौर करने की है। कभी-कभी तो तुम भी सवा लाख रुपये की बात कर जाते हो।"

मण्डुलाल ने केशो की तारीफ की। यह केशो के लिए कोई साधारण बात नहीं थी। मण्डुलाल विचारमग्न हो उठे, फिर उन्होंने हुक्म देते हुए जैसे कहा, "केशो, तुम कारपोरेशन के लिए और मैं असैम्बली के लिए, रही बात। अब कांग्रेस के अधिक-से-अधिक चवन्नी-छाप मेम्बर बनवा दो। कोई मेम्बर बने या न बने उसका नाम लिखकर कांग्रेस कमेटी के पास पहुँचा दो। उसका चन्दा अपनी जेब से दे देना। एक रुपये के चार मेम्बर बुरे नहीं हैं। गेहूँ भी रुपये के दो सेर हैं। तुम तो एक बार जीत सकते हो, लेकिन मुझे तो पहचान बढ़ानी पड़ेगी।"

६

रात को लोगों ने रेडियो पर समाचार सुना :

"प्रार्थना सभा में महात्मा गांधी को गोली मार दी गई।" पहले तो सुनने वालों को विश्वास ही नहीं हुआ। सारी बस्ती में सनसनी फैल गई।

"किसने मारा ?"

"गोड़से बम्मन ने।"

एक साथ कई आवाज़ें गूँज उठीं—"साले, बम्मनों के घर जला डालो।" बजरंग पहलवान ने अराजकतावादियों का नेतृत्व किया। अपने पीछे दस-बीस आवारा लोगों की भीड़ लिये वह 'महात्मा गांधी की जय', 'भारत माता की जय' चिल्लाता हुआ घूम रहा था। बजरंग पहलवान के चेहरे पर न तो महात्मा गांधी की मृत्यु का दुख था, न ही अन्य किसी प्रकार का ही शोक-चिह्न।

जीवन में ऐसे विरले अवसर होते थे कि जब बजरंग को सार्वजनिक एवं सामाजिक रूप से अपनी 'प्रतिमा' के विकास के लिए उचित अवसर प्राप्त होते, अन्यथा उसे चोरी-छिपे ही अपनी ध्वंसात्मक शक्ति का उपयोग करना पड़ता था। हर मनुष्य प्रायः अपनी योग्यतानुसार उचित अवसरों की ताक में रहता है। बजरंग को आज ऐसा ही एक अवसर हाथ लगा था। महात्मा गांधी की मृत्यु तो निमित्त मात्र थी। बजरंग ने गर्जना की—"बस्ती में साला···कौन···कौन बम्मन है ?" बम्मन से उसका आशय केवल महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों से ही था।

"पेंढारकर।" एक साथ कई लोग चिल्ला उठे। बजरंग पहलवान अपनी खुदाई फ़ौज के साथ पेंढारकर के घर के सामने डट गया। पेंढारकर दौड़ता हुआ बाहर आया। वह अभी भोजन करने ही बैठा था। पेंढारकर का दाहिना हाथ दाल-भात से सना था। उसने आश्चर्य से पूछा, "क्या बात है पहलवान ?"

"हम तुमको पीटने आये हैं।"

"क्यों ?"

"महात्मा गांधी को एक बम्मन ने मारा है।···उसका बदला लेना

है। जब तक बम्मनों को ठिकाने नहीं लगाया जायेगा, तब तक काम नहीं चलेगा।"

पेंढारकर के होश गायब हो गये। जिस पहलवान को वह पिछले बीस वर्षों से एक पड़ोसी की हैसियत से जानता था, जिसके साथ मिलकर उसने बस्ती के कितने मृतकों को कंधा दिया था, आज वही पहलवान उसके दरवाज़े पर उसे पीटने खड़ा था। पेंढारकर भय से चिल्लाता हुआ अंदर भागा—"अग···ओ···आपल्या ला मारायला आले।" (अरी···ओ, अपने को मारने आये हैं।) पेंढारकर के घर रोना-चिल्लाना मच गया।

एक तो वह सिरफिरा हिन्दुस्तान का हिमायती था, जिसने गांधी का खून किया, और उसकी बिरादरी में इधर बजरंग पहलवान जैसे अक्लमंद थे जो रहा-सहा बदला लेने का प्रयास कर रहे थे। हल्ला मचता देख वहाँ लोग एकत्रित होने लगे। बात बढ़ती देख बजरंग ने अपना मुँह फेर लिया। "धन्तोली चलो, वहाँ बहुत बम्मन रहते हैं।"

कमांडर-इन-चीफ़ बजरंग पहलवान सफलतापूर्वक अँधेरे में मंगी मुहल्ले से शोर मचाते हुए अपनी मंजिल पर अग्रसर हो रहे थे। लगता था कि जैसे कोई नादिरशाह की छोटी-सी टुकड़ी अपने मुख्य भाग से बीसवीं सदी में रास्ता भूलकर इस ओर आ निकली हो।

सुना गया कि उस रोज़ काफ़ी रात गये बजरंग की सेना लूट-मारकर लौटी। उन्होंने पिटाई की, लूट-मार की, एक जगह आग लगाने का असफल प्रयास भी किया। आर्थिक तौर पर भी उस दिन बजरंग को कोई घाटा नहीं रहा। ऊपर से बजरंग का तुर्रा यह था—"महात्मा गांधी सरीखे नेता की मौत क्या ऐसे ही हो जाएगी? उसका बदला तो लिया ही जाएगा।"

नाथूराम गोड्से पर जो मुकदमा चला उसमें यह साबित तो हो गया कि इस हत्या में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई हाथ नहीं था, परन्तु संघ की प्रतिष्ठा को इससे काफ़ी धक्का लगा। महात्मा गांधी की मृत्यु के दूसरे दिन से ही संघवालों की धर-पकड़ शुरू हुई। कितने ही लोग केवल इसी लिए जेल में ठूँस दिये गये कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य थे।

पुलिस की लारी गिरफ्तारी के लिए आती और संघ के सदस्यों को पकड़कर ले जाती।

तिलनखेड़ी में भी संघ की एक शाखा चलती थी, पहलवान ने उस शाखा को बन्द करवा दिया। संघचालक को मार भगाया और भगवा झंडा उखाड़ फेंका सो अलग।

काफ़ी अर्से के बाद बजरंग को पता चला कि इस हत्या में संघ का कोई हाथ नहीं था। परन्तु उससे क्या ? जो होना था वह तो हो ही चुका था।

संघ ने बड़ी कठिनाई से तिलनखेड़ी में एक शाखा चलाई थी। गरीबों की बस्ती में प्रायः सारे लोग तो मजदूरी करके दिन डूबने पर लौटते। उनकी बला से देश में कांग्रेस का राज था या सोशलिस्टों का, उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं थी कि देश में समाजवाद है या साम्यवाद या पूँजीवाद, देश में हिन्दुओं का राज है या मुसलमानों का। रोजी-रोटी की चिन्ता ने उन्हें यह सब सोचने के लिए न तो टाइम ही दिया था और न ही इस लायक बनाया था। उनकी तो पहली व अन्तिम समस्या रोटी थी—जो रोटी की तरह ही गोल थी और रोटी की तरह ठीक-ठीक गोल भी नहीं थी। बस्ती में लोग तो थे परन्तु सवाल था कि फुर्सत किसे है ? दिन-भर के थके-हारे शाम को संघ में जाकर लाठी चलाने की ताकत कहाँ से लाते ! ताकत कहीं उधार भी नहीं मिलती थी। दूसरी ओर चलता था बजरंग का अखाड़ा जो बस्ती के निठल्ले व आवारा लोगों का अड्डा था। बजरंग स्वयं नहीं चाहता था कि लोग उसके अखाड़े के अतिरिक्त अन्य कहीं जायें।

बजरंग ने एक ओर तो महात्मा गांधी की मृत्यु का बदला लिया, दूसरी ओर अपने अखाड़े को मजबूत बनाया।

७

लक्ष्मी ने मारुति के लिए लड़की देखी और वह लड़की लक्ष्मी के मन में बस गई। लक्ष्मी जब अपने मायके गोरे गांव गई तो सच ही यह पुण्य भी करती आई। लड़की वालों से उसने पूरी बात तो नहीं की परन्तु उसने

एक प्रकार से सब-कुछ निश्चित ही कर लिया।

लक्ष्मी ने आकर मारुति से चर्चा की। सुनकर मारुति इधर-उधर मुंह छिपाता रहा।

"ले इतने बड़े को भी शर्म आ रही है।" लक्ष्मी कहती।

"आई, तू मुझे चिढ़ा मत 'तुझे जो करना है सो कर दे।"

बात पक्की करने के लिए घर के सारे सदस्य जमा हुए। कमरे में तेल की एक डिबरी जल रही थी। एक फटे टाट पर पांडुरंग उकडूँ बैठा था, दूसरी ओर मारुति एक कोने में पालथी मारे बैठा था। लक्ष्मी बैठी थी। पुरनी लक्ष्मी की गोद में पड़ी हुई थी। लक्ष्मी ने कहा, "लड़की अपनी जात की है और देखने में अच्छी है।"

"हाँ, तुझे काम-काज में भी मदद हो जाया करेगी।" पांडुरंग ने सलाह दी।

"मैं उसे बर्तन नहीं मांजने दूँगा।" मारुति कहने को तो कह गया, किन्तु साथ ही वह बुरी तरह से शर्मा भी गया।

"हाँ···· हाँ ·····तू क्यों भला उसे बर्तन मांजने देगा? उसे तो रानी बनाकर सिंहासन पर बैठाना। बर्तन मांजने के लिए तो सिर्फ मैं ही पैदा हुई हूँ। शादी तो अभी हुई भी नहीं कि अभी से उसकी फिकर। शादी के बाद तो न मालूम तू क्या करेगा?"

"आई, तू भी बात को कहाँ से कहाँ ले जाती है ।···मैं तो कह रहा था कि वह नई-नई होगी···कुछ दिन तो···।"

"हाँ···हाँ···जानती हूँ। खैर, घबरा मत, दो-चार साल तक उसे कहीं भी काम पर नहीं ले जाऊँगी।"

"तब तक तो तू ही काम छोड़ देगी।"

"क्यों?"

"अब और तू कितने दिन काम करेगी? तेरी अवस्था ही क्या है? दिन-प्रति-दिन तो तू कमजोर होती जा रही है।"

"उससे क्या होता है? यदि केवल तेरे काका की कमाई पर ही यह घर चलता होता तो सबको बराबर रोटी भी न मिलती।"

सुनकर पांडुरंग क्रोधित हो उठा। वह तनकर खड़ा हो गया। उसने

कहा —"बहुत दिनों से मैंने तुझे पीटना छोड़ दिया है, इसीलिए सामने मुँह चलाती है।" कहकर पांडुरंग बाहर चला गया। अपने बाजुओं को पहलवान की तरह फैलाते हुए मारुति ने कहा, "आई, काका की कमाई का मुँह अब क्यों देखती हो ? मैं बड़ा तो हो गया हूँ।"

सुनकर लक्ष्मी ने एक ठंडी साँस ली और मारुति को सशंक नेत्रों से देखा। उसने कहा, "यह सब तो भविष्य ही बता सकेगा। तेरी कमाई का उसी दिन तक भरोसा है जब तक तू चिलम नहीं पीता, सिनेमा, ताड़ी और जुए से दूर रहता है।···तेरा काका तो हाथ से निकल गया है।"

रामू आया परन्तु उसने इन सबको उपेक्षित नजरों से देखा। लक्ष्मी बोल उठी, "अरे राम्या, कहाँ-कहाँ चक्कर लगाता रहता है ?तुझसे सलाह लेनी थी।"

"कैसी सलाह ?"

"मारुति की शादी करनी है।"

"तो कर दो।"

"तू तो ऐसे बोल रहा है जैसे कि तुझे इस बात से कोई मतलब ही नहीं।"

"मैं कर ही क्या सकता हूँ ?"

रामू को देखते ही पांडुरंग फुर्ती से अन्दर आया, "अबे रामू के बच्चे, दिन-भर गायब रहता है। अब तो तू बाबू बन गया है। अपने-आप-को समझता क्या है ? छोकरियों के माफिक बाल बनाकर घूमता है। कैंची लेकर सब जुल्फें काट दूँगा। तू मैट्रिक हो गया है, अब नौकरी क्यों नहीं करता ? दिन-भर बाँसुरी लिये जनखों की तरह घूमता रहता है।"

रामू कैंची ले आया, उसने कहा, "लो बाल भी काट दो. और बाँसुरी भी तोड़ दो······हविस पूरी कर लो।" लेकिन लक्ष्मी बीच में आ चुकी थी।

उलझन

"इस वर्ष फ़ीस माफ नही होगी क्योंकि फेल हो गया हूँ। ''यह तो भला है कि फर्स्ट ईयर मे परीक्षा नही होती अन्यथा वहाँ भी फेल ही हो जाता।"

इसके पश्चात् डायरी मे सारा पृष्ठ रिक्त पडा था। आगे भी कुछ पृष्ठ उसने खाली छोड दिये थे। वह शायद कुछ लिखना चाहता था। वह आगे लिखता है—

"मुझे अपने पिता से कोई शिकायत नही है, केवल इसलिए कि वह मेरा पिता है,। परन्तु उसके सस्कार एव विचार उसे कभी यह समझने का प्रयास नही करने देंगे कि मैं कौन हूँ ? यदि उसने मुझे समझने का प्रयास किया होता तो यह बखेडा कभी न खडा होता। लगता है जैसे बचपन से ही मुझसे दुश्मनी है। बचपन में वह जी भरकर मुझे पीटता रहा, मैंने इतनी पिटाई खाई है कि मैं ढीठ हो गया। मेरे आँसू सूख गये। जब मेरी पिटाई होती तो मैं सिर नीचा किये मौन रूप से सहा करता था।

"····लडका आलसी है। साले, काम क्यों नहीं करता ?···कुछ कमाता नही ? आदि, आदि उसके रटे-रटाए वाक्य थे जिन्हें रोज बिना उनके परिणाम को समझे, तोते की तरह रटना उसका कार्य था। मेरे लिए ये वाक्य अपना मतलब खो चुके थे। मेरे मैट्रिक पास होते ही वह मेरे सिर पर चढ बैठा कि मैं कहीं ऑफ़िस मे बाबू बन जाऊँ। खैर दफ्तर मे काम न करने का मुझे कोई दुख नही था। यदि मैं कमाकर उसके हाथ पर कुछ रखता भी तो उसे कहाँ शांति मिलने वाली थी ? मेरी माँ कमाकर लाती है, फिर भी उसकी पिटाई होती है। माँ की गाढी कमाई के पैसे जुए मे जाते हैं। मेरी आमदनी मे भी वह जुआ ही खेल आता।

"यदि उसने मुझे समझा होता, मेरी भावनाओं का आदर किया होता,

मेरे अरमानों को पूरा किया होता तो मैं आज एक दूसरा ही मनुष्य होता, मेरा इतिहास ही दूसरा होता। यह घर मुझे काटने नहीं दौड़ता। मैं कोई चोर-उचक्का तो हूँ नहीं, जुआ-शराब आदि से कोसों दूर।

"अपनी बाँसुरी बजाता हूँ तो किसी का खेत तो नहीं चरता। पढ़ाई कर रहा हूँ तो केवल इसीलिए न कि अपनी वर्तमान जिंदगी से ऊपर उठ जाऊँ, अपनी गरीबी दूर कर सकूँ, चार पैसे कमाकर सफेद कपड़े पहन सकूँ। फ़ीस माफ है। चालीस रुपये ट्यूशन से कमा लेता हूँ। मेरा उस पर किसी प्रकार का भार नहीं है। यह वह कभी नहीं समझता। सन्तानोत्पत्ति कोई बिज़नेस तो नहीं है, कि जितने पुत्र हों उस परिमाण में उनसे उतनी ही कमाई होनी चाहिए।

"खैर, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं। आखिर वह मेरा पिता है, पालनहार है। वह कोई मनोवैज्ञानिक तो नहीं है कि आधुनिक तरीकों से अपनी सन्तान का पालन करे। वह तो अपने संस्कारों का परिणाम मात्र है।

"कलमी आम श्रेष्ठ होता है, परन्तु उसकी कलम साधारण आम पर ही लगती है। बाद को वह साधारण आम का पौधा तो काट डाला जाता है, और कलमी आम पनपता है। परन्तु एक विशाल आम के वृक्ष में केवल एक शाखा मात्र ही कलमी आम की हो तो ?

"उस शाखा की दशा मुझ जैसी होगी। पांडुरंग के वंश-वृक्ष से मेरी शाखा अलग निकल रही है। मुझमें व पांडुरंग में दो वर्गों का अन्तर है, यह अन्तर केवल पिता-पुत्र का नहीं है। अजीब उलझन है।"

२

लक्ष्मी ने अपना सारा घर गोबर और चिकनी मिट्टी से लीपा। घर के सामने बन्दनवार लगे। आम की पत्तियों के तोरण मण्डप में तथा दरवाज़ों पर सजे। रंग-बिरंगे कागज़ काटकर स्वयं अपने हाथों पांडुरंग ने झंडियाँ बनाईं। दरवाज़े पर ढोलक एवं शहनाई के स्वर गूंज उठे। घर के सामने

दस फुट लम्बा-चौड़ा एक छोटा-सा मण्डप बना, क्योंकि मारुति का विवाह था।

गृह-प्रवेश से पहले वर-वधू बाहर खड़े थे। जिन बैलगाड़ियों में बारात लौटी थी, वे सामने ही मैदान में ठहरा दी गई थीं। बैलों को खोलकर चारा-पानी दे दिया गया था। चारा खाते हुए बैलों की घंटियों के स्वर पांडुरंग के घर तक सुनाई पड़ते थे। बैलों के सींग रंगे गये थे, मस्तक सजाए गये थे। बैलों की पीठ पर कढ़ी हुई चादरें पड़ी थीं। *'टुनन···न···न··· टिन ··टिनन ··न · टिनन···।'* घण्टियों के स्वर मोहक लग रहे थे। परन्तु उन बैलों को न तो घंटियों के स्वरों से ही मतलब था और न ही मारुति की शादी से। बैल या तो चारा खा रहे थे या उनींदी आँखों से जुगाली करने में व्यस्त थे।

मारुति की पत्नी उसकी बाईं ओर खड़ी थी। पार्वती गहरे मूंगिया रंग की ज़रीदार काटे की साड़ी के साथ उसी रंग की ज़रीदार चोली पहने हुए थी। माथे पर भारी-सी लाल बिन्दी थी एवं नाक में बड़ी-सी नथ। वह हाथ व पैरों की अंगुलियों में चाँदी के छल्ले पहने हुए थी। हाथों में वह चूड़ियाँ व चाँदी के कड़े पहने थी। उसके पांवों में महावर लगाया गया था। मारुति की पत्नी का कद ठीक-ठीक ही था। उसका शरीर भरा हुआ था। ज्वार के भुट्टे-सा उसका रंग था और वैसी ही वह भरी-पूरी लग रही थी। नाक-नक्शा भी ठीक था। वह मुँह उघाड़े खड़ी थी। उसकी आँखों में नई जगह के प्रति कोई कौतूहल नहीं था। प्रतीत होता था कि जैसे उसने परिस्थितियों में नयापन नहीं पाया है। यह जैसे उसका अपना ही घर है। उसका रंग साफ था, लिखा ॥ कि सूखे ज्वार की तरह। गहरे रंग के कपड़ों में पार्वती की चोली के नीचे कमर का खुला हुआ भाग जलते हुए बल्ब की तरह दमक रहा था।

पांडुरंग ने लक्ष्मी के इस चुनाव को सराहा। पांडुरंग ने मन-ही-मन कहा, "इस बेवकूफ ने अपनी ज़िंदगी में केवल एक ही अक्लमन्दी का काम किया है और वह है मारुति का ब्याह।" पांडुरंग की जाति में पार्वती जैसी लड़कियाँ मिलती नहीं थीं। पांडुरंग पूर्ण रूप से प्रसन्न एवं संतुष्ट था। यदि रामू का ब्याह होता तो पांडुरंग अवश्य दो-चार मीन-मेख निकालता,

किन्तु यह तो मारुति का ब्याह था। पुत्र के लिए वात्सल्य की जो भावना पाँडुरंग के हृदय में थी, वह मारुति के लिए बरस पड़ी। मारुति उसे अपना ही पुत्र लग रहा था। इसी समय इस सब हो-हल्ले में पांडुरंग को अपना अतीत याद हो आया, निराशा की कालिमा से उसका मन भर उठा। उसे स्मरण हो आया कि पार्वती की तरह लक्ष्मी का भी एक समय था। वह भी एक समय चाँदनी की तरह दमकती थी, परन्तु बेवफा निकली···।

इस कारण जब मारुति की पत्नी का बाहर काम पर जाने का सवाल उठा तो पाँडुरंग ने दृढ़ निश्चय के साथ अपना निर्णय सुनाया, "मारुति की बायको[1] काम पर नहीं जाएगी।" वह लक्ष्मी की कहानी मारुति के जीवन में दोहराना नहीं चाहता था। मारुति पाँडुरंग का निर्णय सुनकर गद्गद हो गया था।

लक्ष्मी सब समझ गई थी, इसलिए वह चुप थी।

बस्ती की छोटे-मोटे लड़के-लड़कियाँ नोरा-बायको[2] को देखने एकत्रित हो रहे थे। शहनाई और ढोलकी के स्वर तेज़ होते जा रहे थे। लक्ष्मी की आँखों में आँसू आ गए। उसकी वर्षों की साध आज पूरी हुई थी।

मारुति को रामू का कमरा दे दिया गया। रामू को अल्टीमेटम देते हुए पाँडुरंग ने कहा, "ए बाबू, बस्ती में अब कोई कमरा देख। अपना सामान अब उठा यहाँ से। यदि कल यहाँ कोई भी तेरी किताब मुझे दिखी, तो उसे जला दूँगा।"

रामू ने दूसरे ही दिन बस्ती की नुक्कड़ पर, मकान की ऊपरी मंज़िल पर, एक कमरा ले लिया। कमरे की दीवारों पर पलस्तर नहीं था। कोरी ईंटों के अतिरिक्त कमरे का फर्श पक्का था। पाँच रुपये मासिक किराये में कमरा बुरा नहीं था। लक्ष्मीनारायण इंस्टीट्यूट की ओर से आने वाली सनसनाती हवा रामू को बहुत ही प्रिय लगती। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि यहाँ पर पूर्ण रूप से शांति और एकांत था। रामू को पहली बार पाँडुरंग की छाया से दूर रहने का अवसर प्राप्त हुआ।

१. पत्नी। २. पति-पत्नी।

रामू के कमरे को लक्ष्मी ने झाड़-पोंछकर साफ किया। उसमे नई लालटेन लाकर रख दी। कमरे में लक्ष्मी ने कई अगरबत्तियाँ जला दी। मारुति ने इसी कमरे मे अपनी सुहाग-रात मनाई थी।

लक्ष्मी रात-भर खटिया की चूँ-चूँ···चरं-मरं··· सुनती रही। एक वह भी दिन था जबकि पाँच वर्ष का अनाथ मारुति इस घर मे आया था, और आज यह भी एक दिन है, जबकि तारे जैसी चमकती लक्ष्मी,की पुत्र-वधू इस घर मे आई है।

मारुति पाँडुरंग और लक्ष्मी का पुत्र नहीं था, परन्तु उसमे वे सब गुण थे जो लक्ष्मी और पाँडुरंग एक पुत्र मे चाहते थे। रामू से उन्हें पूर्ण सतोष नही था। रामू का अस्तित्व उनके लिए एक उलझन जैसा था। लक्ष्मी लालटेन बुझाकर सो गई। वह स्वप्न देखती है कि वह बिलकुल वृद्ध हो चुकी है। उसके आसपास उसके पौत्र-पौत्रियाँ खेल रहे हैं, वे लड़ते-झगड़ते और रोते हैं। उसकी बहू उसकी श्वेत केशराशि पर तेल चुपड़कर बालों को सवार रही है। लक्ष्मी ने काम करना बन्द कर दिया है। मारुति ने इतना कमा लिया है कि उसने एक पक्का मकान बना लिया है। मारुति के कई रिक्शे चल रहे हैं। वह अब रिक्शावाला नही बल्कि रिक्शा-मालिक है।

३

दशहरे की शाम को बजरंग पहलवान ने अपने अखाड़े का जुलूस निकाला। एक ठेले पर अखाड़े के समस्त हथियार सजाये गये। ढाल, तलवार, भाले, बर्छियाँ, पेश-कब्ज आदि-आदि को चमकाकर ठेले पर रखा गया। हथियारो की पूजा की गई थी, इसलिए जगह-जगह हथियारों पर सिंदूर के निशान थे। अखाड़े के शागिर्द बजरंग के नेतृत्व मे आगे बढ रहे थे। बजरंग पहलवान का सिर घुटा हुआ था। उसने एक ढीला-सा लम्बा कुर्ता पहन रखा था। कुर्ता मलमल का था। कुर्ते के नीचे बनियान नही थी। नीचे लुंगी और तुर्रेदार जूती पहने वह झुंड के आगे-आगे देखा जा सकता था। पहलवान ने फूलो की एक लम्बी-सी माला पहन रखी थी।

वह माला काफी लम्बी थी और ज़मीन से कुछ ही ऊपर उठी, पहलवान के गले में झूल रही थी।

ठेले के आगे-आगे दो शागिद तलवारबाज़ी करते हुए चल रहे थे। दोनों इस तरह पैंतरे बदल-बदलकर एक-दूसरे पर वार कर रहे थे जैसे परस्पर बदला लेने के लिए बुरी तरह तैयार हों। दोनों योद्धाओं ने केवल लाल लंगोट पहन रखे थे। परन्तु ले-देकर उनकी तलवारबाज़ी उसी तरह की थी जैसे मद्रास में बने हिन्दी फिल्मों के नायक एवं खलनायक ढीले-ढीले कपड़े पहने तलवारबाज़ी करते हैं कि जिसमें मक्खी को भी चोट न आये। बजरंग की पौबारह थी। उसकी पाँचों अँगुलियाँ घी में थीं, क्योंकि उसने केशो की ओर से झंडुलाल को चुनाव में सहायता दी थी। झंडुलाल तो एम० एल० ए० बन गया था, परन्तु केशो अपने एक विरोधी से पैसे लेकर बैठ गया था। केशो जानता था कि नेतागिरी के दल-दल में उसे कुछ लाभ नहीं होगा, इसलिए रुपयों की चमक में उसने बैठ जाना ही लाभप्रद समझा। इस प्रकार केशो ने बजरंग की सहायता से कार्पोरेशन के लिए खड़े हुए कांग्रेसी उम्मीदवार की काफ़ी सहायता की। बजरंग पहलवान ने खूब पार्टियाँ उड़ाईं। अण्डे और दूध उड़ाकर उस उम्मीदवार की भावी सहायता के लिए अपना स्वास्थ्य बनाया सो अलग।

केशो ने देखा कि परिस्थितियों से लाभ उठाकर बजरंग उस पर छाता चला जा रहा है।

बस्ती से बाहर आकर मैदान में झुंड रुका। बजरंग ने अपनी अक्ल की हैसियत से लेक्चर देना शुरू किया :

"भाइयो, इस दशहरे के साथ, हमारे अखाड़े का तेरहवाँ साल पूरा होता है। पिछले सात साल से उस्ताद बल्लू के बाद मैं ही इस अखाड़े को सम्हाले रहा हूँ, पर इस अखाड़े को सम्हालने और चलाने का वास्तविक श्रेय हमारे शागिर्दों को है।

"आजकल का जमाना बाबुओं का है। नई रोशनी के लोग कमज़ोर और नामर्द होते हैं। आजकल के कॉलेज के लड़के देखो, सालों की कमर का पता ही नहीं लगता। लोग कुर्सियों पर बैठकर काम करते हैं। न कसरत, न खुराक, चश्मा चढ़ा···जल्दी से बुड्ढे हुए और मर गये। आज-

काफ़ी समय मिल जाता है। वातावरण बहुत अच्छा है···

"परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते हैं वैसे-वैसे जीवन में एक खोखलापन और उदासी बढ़ती जाती है। दिन में जितनी बार प्रफुल्लित नहीं होता उतना तो उदास हो जाता हूँ। इतने बड़े संसार में अपने-आपको एकदम निपट अकेला पाता हूँ। मेरी माँ जीवित है···बाप भी हैं परन्तु महसूस करता हूँ जैसे मैं अनाथ हूँ। काश, कि मेरे सिर पर बाप के प्यार का साया होता! अनुकूल वातावरण होता तो माँ-बाप की इतनी सेवा करता कि कम-से-कम अपना जी भर लेता।

"मेरे इतने दोस्त हैं, वैसे अकेला नहीं हूँ। परन्तु इन सबके बीच खड़ा-खड़ा काँप उठता हूँ। रेणु के घर जाता हूँ तो पाता हूँ एक उन्मुक्त वातावरण लगता है जैसे उनके घर स्वर्ग उतर आया है। हँसी-खुशी से पूर्ण वातावरण, किसी बात का बंधन भी नहीं। एक बार मैं अपने-आपमें संकुचित-सा रहता हूँ, परन्तु वे लोग तो खुलकर हर विषय पर बात करते हैं।

"कभी-कभी तो उन लोगों की सज्जनता के भार से दब जाता हूँ। मुझ जैसे गरीब व सामान्य हैसियत के आदमी को भी वे इतना सम्मान देते हैं। आज तक उन्होंने यह नहीं पूछा कि मैं कहाँ रहता हूँ? मेरे माता-पिता क्या करते हैं? कभी-कभी तो चाहता हूँ कि उनके ही परिवार का एक सदस्य बनकर रहूं। कम-से-कम अपने-आपमें पाई जाने वाली इस घुटन को तो दूर कर सकूँगा।

"दुनिया के लोग मुझे अपने योग्य नज़र नहीं आते, या मैं ही उनके योग्य नहीं बन पाता। रो पड़ता हूँ···गालों पर आँसू ढुलक पड़ते हैं, खुद ही पोंछ डालता हूँ। बाँसुरी की एक तान छेड़ लेता हूँ। दिल को बहला लेता हूं। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ इतने बड़े विशाल संसार में! मनुष्य भौतिक प्रगति कर रहा है। विज्ञान का विकास हो रहा है। देश स्वतन्त्र हो रहे हैं। मनुष्य एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं, फिर भी इंसान, इंसान से फटता चला जा रहा है। उसमें अकेलापन बढ़ रहा है। संघर्ष और द्वन्द्व उसकी भावनाओं को दबोचे जा रहे हैं। हर तरफ संघर्ष, हर तरफ द्वन्द्व, हर तरफ स्पर्धा। व्यक्ति का विकास हो रहा है। समाज, राष्ट्र या समूह से

वह अपना अलग अस्तित्व बना रहा है, किन्तु इस अलगाव में आखिर उसने क्या पाया ?

"…जिनका जीवन एक सरल रेखा जैसा है, उन्होंने संसार में कुछ नहीं देखा। वे लोग भूले हैं। रेणु जब बढ़-चढ़कर बातें करती है तो डर जाता हूँ · विशेषकर उसकी माँ से काफी डर लगता है।

"रोम्याँ रोलाँ की कृति 'बीथोवन दि क्रिएटर' उठाकर पढ़ता हूँ। तो न जाने क्यों आँसू उमड़ आते है। मन न जाने आखिर चाहता क्या है ? लगता है बैठकर खूब रोऊँ। महसूस करता हूँ कि मेरे आसपास जैसे उलझनों का ताना-बाना बुना जा रहा है।"

कालेज के वार्षिक स्नेह सम्मेलन के अवसर पर विविध मनोरंजन में रामू के बाँसुरी-वादन के भी तीन-चार प्रोग्राम थे। फेल हो जाने के कारण वह इस समय कालेज का विद्यार्थी तो नहीं था, किन्तु भूतपूर्व विद्यार्थी होने के नाते वह इस मनोरंजन कार्यक्रम में भाग ले रहा था। कार्यक्रम से पहले रेणु ने कहा—

"विश यू गुड लक…।"

"अरे, काहे का गुड लक ?" रेणु को इस बात का गर्व था कि आज उसके मास्टर का प्रोग्राम है। अपने मित्रों से वह रामू की तारीफ बढ़-चढ़कर किये जा रही थी। रामू के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। जहाँ कहीं भी उसे प्रोग्राम देना होता तो उसका मुँह उतर जाता। पैर काँपते नज़र आते। "लोग क्या कहेंगे ?" अपने-आपमें उसका चिरपरिचित पुराना सवाल होता। उसमें हीन भावना-ग्रन्थि जोर पकड़ती जाती। वह देखता कि सामने कितने ही प्रतिष्ठित लोग बैठे हैं।…बाहर कितनी ही मोटरें खड़ी हैं। 'क्यों ?'

'मेरा प्रोग्राम देखने के लिए।'

वंदेमातरम के पश्चात् ही रामू की बाँसुरी का सोलो प्रोग्राम था।

पर्दा उठा। रामू के मस्तक पर पसीने की बूँदें थीं। स्टेज पर हल्की-सी रोशनी कर दी गई थी। उसने राग यमन उठाया। राग धीरे-धीरे उठा…।

उसका जादू लोगों पर छाने लगा। उसकी शास्त्रीयता में रूखापन नहीं था। धुन की समाप्ति के साथ-ही-साथ मडप-भवन तालियों की गड़गड़ाहट से भर गया। "वन्स मोर···वन्स मोर···" ध्वनियाँ गूँज उठीं।

उसके बाद हिन्दी नाटक शुरू हुआ। मस्तक पोंछते हुए रामू स्टेज से बाहर आ गया। रेणु समझ ही गई थी कि रामू अवश्य बाहर आया होगा। वह बाहर आई, उसने देखा कि बल्ब के नीचे रामू खड़ा है।

"मि० पाटिल······!"

"कौन ?" रामू ने अँधेरे में आँखों पर जोर देते हुए कहा। रामू उजाले में था, इसलिए उसे अँधेरे की ओर देखने में कठिनाई हो रही थी। अँधेरे में रहकर उजाले की ओर सरलता से देखा जा सकता है। रेणु को देखकर रामू प्रसन्न हुआ। रामू ने पूछा, "क्यों, कार्यक्रम नहीं देखना है ?"

"मैं तो सिर्फ आपकी बाँसुरी सुनने आई थी···बहुत अच्छी रही···।" रेणु बच्चों सी मचलती हुई, बातें कर रही थी। सहसा वह गंभीर हो उठी। उसने कहा, "आपने यह क्या हालत बना रखी है ?'

"कैसी हालत ?"

"इतनी ठंड पड़ रही है और आप केवल एक कुर्ते-पायजामे में ही खड़े हैं। पायजामा भी मैला हो रहा है। नीचे से फट रहा है सो अलग। आप यदि कमीज-पैंट नहीं पहनते या कोट नहीं पहनना चाहते तो गरम शेरवानी क्यों नहीं सिलवा लेते ?" सुनकर रामू को लगा कि इसका उत्तर देने की अपेक्षा यदि वह रो दे तो कहीं अच्छा हो। कम-से-कम उसके मन का गुबार तो निकल जाएगा। रामू ने गहरी साँस लेकर बाँसुरी पर अँगुलियाँ चलाते हुए नीची गरदन किये हुए कहा, "रेणु···तुम्हारी सहानुभूति के लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। परन्तु संसार में सब एकसे भाग्यशाली नहीं होते।"

"मतलब ?"

रामू के आँसू आखिर निकल ही आये। उसने रूमाल से उन्हें पोंछा और बिना एक मिनट वहाँ रुके स्टेज की ओर बढ़ गया। रेणु समझी कि उससे कोई भारी गलती हो गई है। वह घबरा गई। रामू का पुनः प्रोग्राम था।

रामू ने समाज प्रारम किया। अबकी बार उसने स्वस्थ होकर बजाया था, क्योंकि पहले प्रोग्राम की सफलता से उसमें अपने-आपमें विश्वास आ गया था। इस धुन से उसने साबित कर दिया कि कम-से-कम विविध मनोरंजन में उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है। इण्टरवल हुआ···। रामू के नाम की पुनः पुकार मची।

तीसरे प्रोग्राम में रामू ने राग बागेश्वरी बजाया। कार्यक्रम वैसे रामू के प्रोग्राम के साथ ही समाप्त होने वाला था। बारह के गजर सुनाई दिये।

आधी रात हो रही थी। अब रामू का ही मौका था। मालकोश उसका अपना राग था। कितनी ही बार रामू ने आधी-आधी रात को उठकर मालकोश बाँसुरी पर बजाया था। तिलनखेड़ी के झोपड़े जब अर्ध रात्रि में गहरी नींद में सोये हुए जान पड़ते, उस समय रामू की वंशी के स्वर उन्हें जगाने का प्रयास करते। अब की रामू ने तबले वाले को भी साथ ले लिया। पहले उसने अलाप लिया···।

रामू ने बाँसुरी पर मालकोश उठाया। अपनी चिर-परिचित धुन को उसने श्रोताओं पर फेंकना शुरू किया।

मालकोश की धुन की समाप्ति के साथ रामू ने सारे वातावरण पर कब्जा कर लिया।

लोगों की फर्माइश पर उसे यह राग दुबारा बजाना पड़ा।

५

जब से मारुति ने रिक्शा चलाना शुरू किया था तब से आज तक उसे कोई मनपसन्द मालिक नहीं मिला था। संयोगवश जहाँ वह पिछले साल से रिक्शा चला रहा था, वहाँ का मालिक बहुत भला था। उसका नाम माधवन् था। वह ऑफिस में कोई सीनियर क्लर्क था। बीस साल की नौकरी हो चुकी थी। इस परिवार की जो जमापूँजी थी, उसमें से उन्होंने यह रिक्शा खरीदा। माधवन् ने सोचा कि दो रुपये रोज की आमदनी बुरी नहीं है। माधवन् को रिक्शे का क-ख-ग भी नहीं पता था। उसने यह

रिक्शा मारुति के मार्गदर्शन में ही खरीदा था। मारुति एवं माधवन् दोनों ही भले थे, इस कारण संबंध ठीक बने रहे। मारुति रिक्शे को इस तरह चलाता, जैसे वह उसका ही रिक्शा हो।

पुलिस को मुफ़्त घुमाने की घटना के पश्चात् मारुति ने झंडुलाल का काम छोड़ दिया था। ऐसा कर मारुति ने झंडुलाल से वैर ही मोल लिया था, परन्तु मारुति ने इसकी क़तई चिन्ता नहीं की। झंडुलाल के गुण्डे मारुति को बुलाने आये थे, किन्तु मारुति ने उन्हें भद्दी गालियाँ देकर भगा दिया। मारुति जानता था कि झंडुलाल के आदमी उससे बदला लेने की ताक में हैं।

नागपुर के रिक्शे वालों ने जब किराये कम करने के लिए हड़ताल की तो मारुति को समझ नहीं पड़ा कि वह आखिर क्या करे ? चिटणीस पार्क में रिक्शे वालों की आम सभा होने वाली थी। उसके बाद जुलूस निकलने वाला था। मारुति ने सोचा यदि झंडुलाल के रिक्शेवाले हड़ताल करें तो उन्हें तो फायदा ही है। उनका मालिक क्रूर और कपटी है। रिक्शेवाले उसका एक भी पैसा नहीं मार सकते। मेरा मालिक माधवन् तो देवता है। कुछ जानता नहीं। जितना दे देता हूँ ले लेता है। कभी कमाई नहीं हुई तो पैसे भी नहीं माँगता।

यह सोचकर मारुति हड़ताल में शामिल नहीं हुआ, परन्तु रिक्शा चलाने भी नहीं गया। जुलूस निकला, मारपीट हुई। मौसमी व स्थानीय लीडरों ने भाषण दिए। मारुति घर पर ही बैठा रहा क्योंकि वह जानता था कि जुलूस में भाग लेने का मतलब है आठ या दस मील का पैदल चक्कर।

६

कालेज के वार्षिकोत्सव के पश्चात् तीन-चार दिन तक रामू चटर्जी के घर नहीं जा सका। रेणु कुछ समझ न सकी। रामू के आँसू देखकर वह घबरा गई थी। उसे समझ नहीं आया कि उससे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया या उसने ऐसी कौनसी बात कह दी कि जिससे रामू को इतना

कष्ट हुआ। उसने रामू की काफी राह देखी। इसी बात को लेकर वह काफी ऊहापोह में रही। रामू एक दिन नहीं आया, दूसरे दिन नहीं आया, परन्तु जब तीसरे दिन भी नहीं आया तो स्वयं चटर्जी ने पूछा, "मास्टर बाबू आये नहीं ?"

सुनकर रेणु पहले तो चुप रही, किन्तु बाद को रो पड़ी। उसके मन में जो चोर छिपा था वह आँसुओं के माध्यम से बाहर निकल आया। रेणु को ऐसा लगा कि जैसे उससे कोई भारी अपराध हो गया है। उसने अपने पिता से सब-कुछ विस्तार से बताया। सुनकर चटर्जी ने कहा, "अच्छा, तो यह बात है।···तो इसमें नाराज होने की क्या बात है ?"

खैर रामू महाराज की सवारी पधारी। पहले उसकी रेणु की माँ से भेंट हुई, "आओ, आओ, मास्टर बाबू···कहाँ थे मास्टर बाबू इतने रोज ?" उसने भोंडे स्वर में कहा। घर में जैसे हल्ला मच गया— "मास्टर बाबू आ गये···मास्टर बाबू आ गये।"

ताली बजा-बजाकर शोरगुल करने वाली तो रेणु की बहन ही थी। रेणु भी आई किन्तु उसकी मुखमुद्रा गंभीर थी। चटर्जी अखबार पढ़ते-पढ़ते बाहर आये। रेखा चिल्लाकर कह रही थी—"अम्माँ, इनको जाने न देना।"

"मि० पाटिल इधर आइये,···मेरे पीछे।" चटर्जी की गंभीर आवाज सुनकर रामू सशंक हुआ। वह डर-सा गया। अक्सर उसने चटर्जी का मुस्कराता हुआ चेहरा ही देखा था। इस कारण उनका गंभीर स्वर सुन थोड़ा वह सशंक हुआ। चटर्जी के संकेत करने पर रामू कोच पर सम्हल-कर बैठ गया। चटर्जी हँस पड़े। उन्होंने कहा, "आराम से बैठिये, शरमाने की जरूरत नहीं है।"

रेणु और उसकी माँ भी कमरे में थी। चटर्जी ने कहना शुरू किया— "मि० पाटिल, मुझे सारी बात का पता लगा है। मैं आपसे, रेणु की ओर से माफी मागता हूँ। आप शायद जानते नहीं कि वह अभी भी बच्ची ही है। इसे यह नहीं मालूम कि किससे, किस समय, कैसे पेश आना चाहिये। आपको जो शिकायत हो, मुझसे कहिये। इस प्रकार चुपचाप घर बैठने से कोई फ़ायदा नहीं।" रामू को माजरा अब समझ आया। उसे समझते देर नहीं

लगी कि बात का बतंगड़ बन गया है। उसने खिसियाते हुए कहा, "परन्तु मुझे तो यही नहीं मालूम कि आपको यह सब गलतफहमी हुई कैसे ? आपको यह कैसे भ्रम हुआ कि रेणु ने मेरा अपमान किया ? बात तो वास्तव में इसके ठीक विपरीत है। आप लोगों का मुझे इतना स्नेह मिलता है कि मुझे स्वयं नहीं समझ पड़ता कि मैं उससे कैसे उऋण होऊँगा ? आप लोग मुझ जैसे साधारण आदमी को इतना आदर देते हैं, क्या यह थोड़ा है ? मैं इन तीन-चार दिनों में अपने ही काम के कारण नहीं आ सका। उसका आप लोगों ने कुछ और ही मतलब लगा लिया। यह भी आप लोगों का बड़प्पन ही है।"

"कल रेणु रोती रही। बार-बार पूछने पर उसने मुश्किल से मुझे सब-कुछ बताया।"

"खैर बताया न, कि हर आने वाले दिन में मैं आप लोगों की सज्जनता के भार से अधिकाधिक दबता जाता हूँ।"

"फिर उस दिन आपको कौनसी तकलीफ हुई थी ?" रेणु ने पूछा।

"देखिये आज मैं नया कुरता-पायजामा पहन आया हूँ। भविष्य में आपको शिकायत करने का अवसर नहीं प्राप्त होगा।"

"मेरी वह कोई शिकायत नहीं थी। मैंने केवल इतना ही पूछा था कि रात के दस बजे भी इतनी ठंड में केवल कुरते-पायजामे में आप कैसे खड़े हैं, बिना किसी गरम कपड़े के ? मुझे तो शाल ओढ़कर भी ठंड लग रही थी। वैसे भी साल-भर से मैं आपको केवल इन्हीं कपड़ों में देख रही हूँ।"

रामू एक प्रकार से निरुत्तर हो गया। चटर्जी का इशारा पाकर रेणु को उसकी माँ कमरे से अपने साथ बाहर ले गई। चटर्जी ने कहा, "मि० पाटिल, तुम्हारी आदतों से व तुम्हारे पहनावे से तुमको मैं किसी हद तक समझ सका हूँ। मेरा यदि अनुमान गलत नहीं है तो मैं स्पष्ट कह सकता हूँ कि तुम्हारे पास एक भी गरम कपड़ा नहीं है।" रामू सुनकर जड़वत् हो गया। आखिर बात सामने आ ही गई। उसने सकुचाते हुए कहा, "नहीं ···नहीं···ऐसी कोई बात नहीं है।"

"मैं देखता हूँ कि तुम सहमे-सहमे-से, डरे-डरे-से रहते हो। तुममें इन्फ़ीरियॉरिटी कॉम्पलैक्स बहुत है। तुम सेंसिटिव भी हो।"

रामू जानता था, उसकी सज्जनता केवल इस सहमे रहने या भय का ही परिणाम है। वह जानता था कि चटर्जी परिवार द्वारा उस पर किये गये उपकारों का बदला यदि वह नहीं चुका सकता तो कम-से-कम इतना तो कर ही सकता है कि परिवार की इच्छा के विरुद्ध वह कोई कार्य न करे। रामू को लगता कि जैसे उसके अन्दर दिन-प्रति-दिन एक नई गाँठ बनती जाती है। उन गाँठों को वह जितना खोलने का प्रयास करता है, उतनी वे उलझती जाती हैं। हकीकत आखिर जाहिर हो ही गई। रामू नये कपड़ों के अभाव में ही पिछले तीन-चार दिनों से रेणु के घर नहीं आया था। रामू के पास केवल तीन जोड़ी पोशाकें ही थीं जिनमें से दो जोड़ी तो धोबी के पास ही थीं। न ही अक्लमन्द धोबी रामू की पोशाकें समय पर धोए, और न ही रामू चटर्जी के घर जा सके। मैले कपड़े पहनकर वह रेणु के घर नहीं जाना चाहता था।

"चलो मेरे साथ दर्जी के पास, अपनी गरम बंडी या अचकन का नाप दे दो, जो भी सिलाना हो।" चटर्जी ने कहा।

"और यदि न चलूँ तो?"

"देखता हूँ कैसे नहीं चलते?"

"मैं नहीं चलूँगा। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि यह कृपा आप मुझ पर न कीजिए।"

"आखिर क्यों?"

"मैं इसे भीख समझता हूँ। मुझ जैसे आदमी को मुफ्त में इस प्रकार चीज़ें प्राप्त करना शोभा नहीं देता।"

"भीख!" तड़पकर चटर्जी कुरसी से उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, "तुम इसे भीख समझते हो, तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम भीख का मतलब नहीं समझते। भीख वह होती है जो माँगने से मिले। तुमने मुझसे क्या माँगा है? यह तो हमारी ही ज्यादती है कि हम तुम्हारे सिर पर चढ़े जा रहे हैं। आज यदि तुम्हारे बाप ने तुमसे यह अनुरोध किया होता तो क्या तुम उसे टालते? क्या यदि आज मेरा कोई बेटा होता तो क्या मैं उसके कपड़े सिलवाकर नहीं देता?" चटर्जी का स्वर काँप गया। आँखें लाल-सी हो उठीं। पाटिल ने आज देखा कि इस बूढ़े आदमी के दिल के

एक कोने में यह बात कैसी टीस बनकर बैठी है कि उसका कोई पुत्र नहीं है। रामू ने सोचा—मैं इस आदमी को सदा हँसता-खेलता देखता था, मुझे क्या मालूम कि पुत्र के अभाव का दुख इतना घना भी हो सकता है। मनुष्य सदैव उसीके लिए पीड़ित होता है जिसका उसके पास अभाव होता है।

चटर्जी के साथ अपनी पोशाकों का माप देने रामू उठ खड़ा हुआ।

७

मारुति जब दोपहर को घर पर भोजन करने आया तो घर में सन्नाटा-सा छा रहा था। लक्ष्मी काम पर गई थी। पाँडुरंग तो बहुधा दोपहर को आता ही नहीं था। मारुति को देखते ही पार्वती मुस्करा दी। विवाह का प्रथम वर्ष जो था!

पार्वती एवं मारुति ने जैसे भोजन समाप्त किया तो पुरनी ने अपना सिर दिखाया। मारुति ने पूछा "कहाँ थी···?"

"बाहर खेल रही थी।"

"रोटी खा ले।" पार्वती ने पुरनी को भोजन परोसा। पार्वती जल्दी से सारा काम निपटाकर मारुति के पास जाना चाहती थी। मारुति आराम कर रहा था। पुरनी को उसने खाना परोस दिया और पूछ लिया कि और भी कुछ चाहिये क्या? पुरनी के 'न' करने पर पार्वती किवाड़ बन्दकर मारुति के पास आ गई।

पुरनी ने भोजन समाप्त किया और अपने-आपको अकेला पाया। वह जब बाहर आई तो एक क्षण तो सोचती रही कि आखिर मारुति और पार्वती कहाँ गये? मारुति के कमरे का दरवाजा बन्द देख वह समझ गई कि दोनों अंदर हैं। उसने दबे पाँव दरवाजे के पास जाकर अन्दर झाँका। दरवाज़ा पुराने टीन का था। दो-एक स्थानों पर उसमें छिद्र भी हो रहे थे। पुरनी ने ऐसे ही एक छिद्र से देखा। उसका शरीर सिहर-सा उठा। एक कँपकँपी उसके शरीर में दौड़ गई। पुरनी ने आसपास देख लिया कि कोई उसे कहीं देख तो नहीं रहा है। पुरनी घर के बाहर तक आई। जब उसने देखा

कि बाहर कोई नहीं है तो वह बेखटके जाकर उस छिद्र पर डट गई।

पुरनी का दिल धुक-धुक कर रहा था। पता नहीं वह ठीक-ठीक समझी या नहीं कि अन्दर क्या हो रहा है · परन्तु उसे ऐसा अवश्य लगा कि वह ऐसा कोई अप्रत्याशित कार्य कर रही है जो कि उसे नहीं करना चाहिए। वह बार-बार बाहर आ, झाँककर वापस दबे पाँव चली जाती।

पुरनी दरवाजे से सिर टिकाये देखने में व्यस्त थी।

सहसा पाँडुरंग ने प्रवेश किया। उसे समझते देर नहीं लगी कि पुरनी क्या देख रही है। पुरनी हड़बड़ाकर पीछे हटी, परन्तु पाँडुरंग का पारा सीधा ऊपर चढ़ गया था। पाँडुरंग ने आव देखा न ताव, पुरनी को बुरी तरह से पीटना प्रारंभ कर दिया। पुरनी की नाक से खून बह निकला।

पाँडुरंग एक पागल की तरह पुरनी को पीटे जा रहा था।

पाँडुरंग बार-बार उससे यही पूछ रहा था, "बोल हरामजादी, अंदर क्या देख रही थी···?"

और 'हरामजादी' अपना पूरा जोर लगाकर रोए जा रही थी।

पुरनी का बैंड बजता देख मारुति खटिया से उचककर इस तरह खड़ा हुआ कि जैसे पलंग पर उसे कोई जलता कोयला छू गया हो। पार्वती ने शीघ्रता से अपने कपड़े ठीक किए।

"क्या बात है ?" मारुति ने दरवाजा खोलते ही पूछा।

"कुछ नहीं···तू अपना काम किये जा।" पाँडुरंग ने उसे डाँटते हुए कहा। मारुति मुँह लटकाकर एक ओर निकल गया।

आगे-पीछे पाँडुरंग दोपहर को घर नहीं आया करता था, परन्तु आज तिलनखेड़ी की सवारी मिल जाने के कारण वह इस ओर आ निकला था।

शाम को रामू आया। उसे घटना का पता चला। उसने डायरी में नोट किया :

"पुरनी को इतना मारा गया कि उसकी नाक से खून निकल आया। पुरनी का आखिर क्या कसूर था ?

वह जो कुछ भी देख रही थी—यदि उस देखने को पाप कहा जाये तो

जिसे देख रही थी, उसे क्या कहा जाएगा? और उस 'पाप' को करने वाले किस 'पुण्य' के भागी कहलाएँगे?"

बचपन की घटना याद आती है। उस समय मुझे तो छिद्र से झाँकना भी नहीं पड़ता था, क्योंकि सब-कुछ साफ-साफ देखा था। अपनी निजी डायरी है इसलिए लिखने का साहस भी किसी तरह कर रहा हूँ। कहीं और लिखूं तो उस पर नग्नता एवं अश्लीलता का आरोपण किया जाएगा। उस घटना को लेकर यदि आज कहानी लिखने का प्रयास भी करूँ तो साहित्य के नीतिवादी विज्ञ आलोचक यह कहेंगे कि यह तो हमारे जातीय संस्कारों के खिलाफ है। मैं कहता हूँ कि चाहे वह हमारे जातीय संस्कारों के ही खिलाफ हो या उनके व्यक्त करने पर किसी प्रकार की आपत्ति ही क्यों न उठाई जाए, परन्तु सवाल है कि क्या वह वास्तविकता का अंग नहीं है? वह वास्तविकता का एक अंग है और रहेगा। सत्य तो विशाल है। वास्तविकता तो उसका केवल एक पक्ष मात्र है।

"मैं उस सयम कोई छः वर्ष का था। स्कूल जाना अभी शुरू ही किया था। दोपहर को मैंने अपनी माँ को एक अन्य आदमी के साथ देखा। उन्होंने चादर ओढ़ रखी थी।

"शायद वे लोग समझते थे कि मैं छः साल का लौंडा भला क्या समझूँगा? भगवान् की दया से यह लौंडा अक्ल का पुतला तो नहीं था, परन्तु उस दृश्य को मैं आज तक नहीं भूल सका हूँ, हाँ उसे समझने की ताकत आज आई है। उस समय में मैं कुछ समझ तो नहीं सका था। उस आदमी का मैं ठीक नाक-नक्शा तो नहीं बता सकता, लेकिन यदि उसे कहीं देख पाऊँ तो अवश्य पहचान सकता हूँ। वह दृश्य आज तक मेरी आँखों में सजीव है।

"शाम को मेरी माँ कभी-कभी मेरे सामने चॉकलेट, बिस्कुट और गुब्बारों का ढेर लगा देती और कहती, 'अपने भाऊ से मत बताना।' मैं यह समझ तो नहीं सकता था कि ये सब गुब्बारे, बिस्कुट आदि कहाँ से मेरी माँ के पास आते हैं, परन्तु उनसे मुझे घृणा थी। मैं जाकर उन्हें नाली में फेंक देता था। गुब्बारे फाड़ डालता। माँ यदि क्रोधित होती तो उसे मैं घूरकर देखता। अपनी माँ के प्रति दिन-प्रति-दिन मेरा अविश्वास बढ़ता गया।

"उसके बाद उस आदमी को मैंने कभी नहीं देखा। मैं इतना कभी-कभी अवश्य देखता कि मेरा बाप मेरी माँ को बुरी तरह से पीटता और वह कई दिनों तक लगातार रोती। माँ के रुदन को उस समय मैं कौतूहल-मिश्रित भावों से देखा करता। कभी-कभी तो उसके सुर में सुर मिलाकर मैं भी रोने बैठ जाता। परन्तु जाने क्यों माँ के लिए मुझे कभी कुछ दुख नहीं हुआ।

"आज तक, अपनी माँ में तथा अपने में, मैंने एक दूरी का एहसास किया है। न जाने क्यों अपनी माँ से मैं कभी खुलकर नहीं मिल सका। सदैव मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता रहा है जैसे मुझसे वह कुछ छिपाने का प्रयास करती रही है। मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं देना चाहती। जब मैं उसे पूछता कि ये गुब्बारे, चॉकलेट, बिस्कुट आदि कहाँ से आते हैं तो वह गोल-मोल उत्तर देकर टाल जाती। आज तक यह बात मेरे मन में जमी हुई है।

"दूसरी बात, जिसने एक माँ और उसके बेटे में व्यवधान उपस्थित किया है, वह है मेरी बाँसुरी। मेरी बाँसुरी सुनते ही उसे दौरा-सा पड़ता। यदि वह कोई काम कर रही होती तो सहसा वह सारा काम रोक-कर मेरे पास आती और मेरे मुँह से बाँसुरी खींच लेती। खैर, घर पर बाँसुरी बजाने की मेरी आदत तो नहीं है, परन्तु जब भी दो-चार बार बजाई तो देखा कि माँ पर उसकी एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।।

"माँ कहती है, 'बाँसुरी मत बजाया कर···फेफड़े कमजोर हो जायेंगे। ···जहाँ बाँसुरी बजती है···वह जगह वीरान हो जाती है···।' आदि-आदि।

"आज पुरनी ने जो कुछ भी देखा, उसे ग्यारह साल की लड़की ने भला क्या समझा होगा? उस दृश्य को शायद भूल भी जाती परन्तु अब नहीं भूलेगी। उसे यह पिटाई याद रहेगी। और इस पिटाई के साथ यह दृश्य।

"पुरनी जब घटनाओं को पूरी तरह समझेगी तो बुरा नहीं मानेगी, किसी से घृणा नहीं करेगी। उस पर हँस अवश्य लेगी।

"क्योंकि उसने भला क्या अस्वाभाविक देखा?

"आज मुझे सामान्य रूप से ही चॉकलेट एवं बिस्कुटों से घृणा है। मैं सोचा करता हूँ कि लोग इन पर क्यों पैसे बर्बाद करते हैं ? क्या ये भी कोई खाने की वस्तुएँ हैं ? रेणु जब मुझे चॉकलेट देती है, तो मैं उन्हें अस्वीकार कर देता हूँ।

"गुब्बारों से समझौता कर लिया है, शायद इसलिए कि मैंने सदैव गरीब बालकों को ही गुब्बारे बेचते देखा है और चॉकलेट खाते केवल अमीरों या धनवानों को।'

८

एक ही महीने में, रिक्शेवालों की यह दूसरी हड़ताल थी। पहली हड़ताल तो रिक्शेवालों ने अपने मालिकों से अपने दैनिक किराये कम कराने के लिए की थी, परन्तु अबकी बार हड़ताल कार्पोरेशन के इस प्रस्ताव के खिलाफ की थी कि 'शहर में रिक्शे बिलकुल बन्द कर दिये जायें।' प्रस्ताव अभी पास नहीं हुआ था परन्तु प्रस्ताव को चूँकि बहुमतीय पार्टी ने उठाया था, इसलिए उम्मीद थी कि प्रस्ताव पास हो जाएगा। शहर के साढ़े चार हज़ार रिक्शेवालों की रोटी का सवाल था।

पहली हड़ताल में तो केवल रिक्शावालों का ही सहयोग था परन्तु अबकी बार तो रिक्शा-मालिकों ने भी सहयोग देकर हड़ताल को सफल बनाने का प्रयास किया। यदि रिक्शे कार्पोरेशन ने बन्द कर दिये तो ?

सवाल था कि साढ़े चार हज़ार बेकार हुए रिक्शेवालों को कौन रोटी देगा ? और साथ ही उन साढ़े-चार हज़ार बेकार पड़े रिक्शों का क्या होगा ?

और रिक्शा-मालिकों को जो आय का नुकसान होगा उसे वे अन्यत्र कहाँ से पूरा करेंगे ?

सबसे बड़ा सवाल था कि इन रिक्शों के अभाव में पैदा हुई नागरिकों की आवागमन की कठिनाई की समस्या को कार्पोरेशन किस प्रकार हल करेगी ?

शहर-भर में पोस्टर लगाये गये। महीने की पन्द्रह तारीख को, एक

बजे दोपहर को, मजदूर नेताओं ने शहर-भर के रिक्शेवालों को, कार्पोरेशन की इमारत के सामने एकत्रित होने के लिए आदेश दिये। पन्द्रह तारीख को प्रस्ताव की बहस का अन्तिम दिन था। उसी दिन वोटिंग भी होने वाली थी।

एक बजे कार्पोरेशन के सदस्यों की बैठक प्रारम्भ हुई। इस प्रस्ताव को पेश करनेवाली बहुमत पार्टी के सदस्य ने उठकर कहा, "मैं अपने प्रस्ताव पर पुनः जोर देते हुए कहूँगा कि आदमी आदमी को खींचे यह निरी पशुता है। हमारा देश अब आजाद है, इसलिए हमें अब ऐसे नियम बनाने चाहिये जो मनुष्यता को शोभा दें। हर मनुष्य बराबर है। कोई मनुष्य किसी अन्य मनुष्य से नीचा नहीं है। फिर यह भेदभाव क्यों ? रिक्शे में एक आदमी आराम से बैठे और दूसरा उसे खींचता हुआ मरा जाये। एक ही रिक्शे के दो पहलुओं में आप स्वर्ग और नरक के दृश्य देख सकते हैं। जब तक ये रिक्शे बन्द नहीं होंगे तब तक मनुष्यता पर यह एक दाग रहेगा। आजाद भारत में इन बातों का रहना कहाँ तक शोभनीय है, आप ही सब विचारकर देख लीजिये।"

विरोधी पार्टियों में से एक पार्टी के सदस्य ने जवाब दिया, "यह और भी अच्छा हो कि आप अपनी दया इन्सान से उठाकर पशुओं तक ले जायें। मैं तो कहता हूँ कि तांगों में घोड़ों को भी नहीं जोता जाना चाहिये। शहर के धोबियों पर, गधों के इस्तेमाल पर, रुकावट लगा देनी चाहिए। ऐसा कानून बना दिया जाना चाहिये कि गाड़ीवान गाड़ियों में बैल भी न जोतें। इन पशुओं ने भला क्या अपराध किया है ? मैं तो जब बैल, गधे या घोड़ों को इन्सान की सेवा करते देखता हूँ तो मेरा कोमल हृदय रो देता है। माननीय सभापति से मेरा यह अनुरोध है कि इस कानून में ऐसी व्यवस्था की जाए ताकि इन जानवरों को भी उचित कन्सेशन मिले और मनुष्यों के अत्याचारों से ये निर्दोष, निरपराध पशु बच सकें। इस कानून के पास होने से हम मनुष्यत्व की श्रेणी से उठकर देवत्व की श्रेणी में पहुँच जाएँगे। कम-से-कम गधे और घोड़े भी यह महसूस करें कि भारत आजाद हो गया है और अहिंसा की छत्र-छाया में वे लोग भी आ गये हैं।" सुनकर लोग बुरी तरह से हँस पड़े। सभा भवन तालियों की गड़गड़ाहट से पूर्ण

हो गया ।

सदस्यों के वाद-विवाद के बीच-बीच में बाहर रिक्शेवालों का बढ़ता हुआ कोलाहल व पुलिस वालों की गालियाँ भी सुनाई दे जाती थीं ।

बहुमतीय पार्टी के सदस्य तो चुपचाप, इतमीनान से बैठे थे । उन्हें इस बात का निश्चय ही था कि जब वोटिंग होगी तो आखिर उनकी विजय होगी, इसलिए बेकार अपने साउंड बॉक्स को तंग करने से क्या लाभ ? विरोधी पार्टी के सदस्य एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे थे । वे रिक्शे-वालों का पक्ष ले रहे थे । बहुमतीय पार्टी के कई सदस्य सो भी रहे थे । जब कभी विरोधी पार्टी का कोई सदस्य जोर से गरजकर अपने विचार व्यक्त करता तो सोने वाले महानुभाव डिस्टर्ब होते, दो-चार गालियाँ देते और पुनः अपनी नींद में मस्त हो जाते । सभा में कई ऐसे भी गुरु थे जो आँखें खुली रखकर सोने की कला में निपुण थे । यह सिद्धि उन्होंने काफी तपस्या के पश्चात् प्राप्त की थी ।

विरोधी पार्टियों में से एक पार्टी के सदस्य ने उठकर कहा, "जिस माननीय सदस्य ने इस प्रस्ताव को उठाया है, वे अपने विषय से हटकर काफी इधर-उधर चले गये । मैं स्वीकार करता हूँ कि भारत आजाद है, परन्तु हमारे सामने भारत नहीं, नागपुर की समस्या है । बहुमतीय पार्टी में किसी भी विचारहीन या ध्वंसात्मक प्रस्ताव को पास करने की क्षमता आ गई है । किसी भी प्रस्ताव का पास होना उस प्रस्ताव के अच्छे या बुरे परिणामों पर आधारित नहीं बल्कि बहुमतीय पार्टी की वोटों की संख्या पर आधारित है । उनके पास वोटों की ताकत है इसलिए किसी भी सार-हीन प्रस्ताव को वे आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्रदान कर सकते हैं ।"

बहुमत पार्टी के मंत्री ने जवाब दिया, "इसमें ईर्ष्या करने की कौन-सी बात है ? हमें जनता ने अपना विश्वास दिया है । आप लोगों का हाथ किसने पकड़ा था ? क्यों वोट नहीं ले लिये ? ईर्ष्या करना तो औरतों का प्रमुख दुर्गुण है···फिर आप लोग तो मर्द हैं ।"

"निस्संदेह ईर्ष्या औरतों का गुण है । किन्तु बहुमतीय पार्टी के हर सदस्य का जन्म आखिर एक औरत से ही हुआ है ।···जिन्हें वे अपनी माँ की संज्ञा देते हैं ।···उसे आदर देते हैं ।"

एकदम बात काटकर बहुमत पार्टी के एक सदस्य ने चिल्लाकर कहा, "यह माँ की गाली है ··हम बर्दाश्त नही करेंगे···श्री···को अपनी बात वापस लेनी होगी।"

सभापति ने शान्ति स्थापित की। स्वतन्त्र सदस्य नाथूलाल ने अत्यन्त शान्त एवं गम्भीर रूप से कहना शुरू किया, "मैं अपनी बात को बार-बार दुहरा चुका हूँ। जिन सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है उनके विचार नैतिक व आदर्शवादी दृष्टिकोण से बहुत सुन्दर हैं। मानवता के दृष्टिकोण से उसमें कोई भी दो मत नही हो सकते। किन्तु सवाल व्यावहारिकता का है, कि इस प्रस्ताव द्वारा उठाये गए विचार कहाँ तक कामयाब हो सकते है और कहाँ तक फायदेमन्द हैं? किसी समस्या का जुबानी हल प्रस्तुत करना बहुत सरल है। और आप सत्ता के जोश मे यह भी कह सकते हैं, परन्तु इन समस्याओं का क्या होगा जो बाद को खड़ी होंगी। यह कहना सरल है कि "यह मत करो···या फलां-फलां काम मत करो।" यही बताना कठिन है कि फिर क्या करो। समस्या का समाधान तभी होता है जब इस समस्या पर समस्त दृष्टिकोणों से विचार किया जाए। आप मानवता के नाम पर रिक्शे बंद करा देंगे तो क्या आपकी मानवता उन साढे चार हज़ार लोगों को रोटी देगी? क्या कार्पोरेशन ने इसके बारे में कभी विचार किया है? इस बेकारी के जमाने में इन साढे चार हज़ार लोगों की रोटी छीनकर आपको क्या लाभ होगा? रिक्शा चलाने वाले गरीब एवं अपढ आदमी हैं। इन्सान का इन्सान को खींचना बेशक बुरी चीज़ है। परन्तु वह क्या करे? मजबूरी है। बड़े-बड़े सेठ, साहूकार, अमीर या धनवान इन साढ़े चार हज़ार लोगों को क्या काम देना चाहेंगे? उसके बाद शहर में यातायात की समस्या खड़ी होगी। कार्पोरेशन को अधिक बसें चलानी होंगी। रिक्शों के रहते हुए भी वैसे ही बसें कम पड़ती हैं। रिक्शों के अभाव में भला क्या स्थिति होगी? इसके पश्चात् उन मालिकों का क्या होगा जिनके पास ये बेकार रिक्शे पड़े होंगे? उन रिक्शों को कहीं बेचा भी नहीं जा सकेगा। आज देश को जब नई-नई वस्तुओं की आवश्यकता है तो इन बनी-बनाई वस्तुओं को तोड़ना भला कहाँ की अक्लमंदी होगी? यदि कार्पोरेशन को रिक्शे बन्द ही करने हैं तो वह

धीरे-धीरे कदम उठाये। बेहतर यह होगा कि न तो नये लाइसेंस ही दिये जायें और न ही नये रिक्शे पास किये जाएँ। बसों की संख्या बढ़ाई जाए ··मतलब कि, ऐसे उपाय किये जायें कि रिक्शेवाले अपने-आप इस धन्धे को छोड़ते चले जायें। जब शहर में केवल सौ-पचास रिक्शे रह जाएँ तो उन्हें अन्तिम रूप से बन्द कर दिया जाए।"

बहुमत पार्टी के एक सदस्य ने कहा, "रिक्शेवाले कोई-न-कोई काम ढूँढ लेंगे। बसें चलाने के लिए प्राइवेट कम्पनियों को लाइसेंस दिये जा सकते हैं। रिक्शों को तोड़कर साइकिलें बनाई जा सकती हैं। रह गये मालिक तो उनकी चिंता हमें नहीं करनी चाहिए। हमें पूँजीवाद नहीं, समाजवाद की स्थापना करनी है।"

"जब तक कार्पोरेशन साढ़े चार हज़ार रिक्शेवालों की नौकरी का प्रबन्ध नहीं करती तब तक इस प्रस्ताव पर वोट लेना अन्याय है। माननीय सदस्य को शायद यह नहीं मालूम कि दो हजार से भी अधिक रिक्शों के मालिक औसत दर्जे के मध्यम वर्ग के ही लोग हैं। इन लोगों की पूँजी उनका रिक्शा ही है। रह गई समाजवाद की बात, तो मैं माननीय सदस्य से अनुरोध करूँगा कि कृपया डिक्शनरी में समाजवाद का मतलब समझ लें। बिना समाजवाद का मतलब समझे आजकल समाजवाद की चर्चा करना एक आम फ़ैशन बन गया है। यह न समाजवाद है, न साम्यवाद, यह है कोरी बकवाद। बहुमतीय पार्टी के अधिकतर सदस्य तो सोए हैं। जो जाग रहे हैं उनकी भी हालत सोये हुए लोगों से कम नहीं है। वे बात ही सत्ता के नशे में करते हैं। आम जनता की समस्याओं को वे कमरे में बैठे-बैठे सुलझाना चाहते हैं। मज़ा तो तब है कि वे प्रत्यक्ष रूप से जाकर रिक्शे-वालों का सामना करें।"

उस दिन वोट नहीं लिये गये। सुना गया कि यह पहला मौका था जबकि बहुमतीय पार्टी में ही परस्पर मत-विरोध हो गया था। वोट बँट गये। अगली मीटिंग में बहुमतीय पार्टी के दो-तिहाई मेम्बर ग़ैरहाजिर थे। परिणामस्वरूप प्रस्ताव पास न हो सका।

कार्पोरेशन की इमारत के सामने कम्पाउंड के बाहर शहर-भर के

रिक्शों की फौज उमड़ आई थी। लगता था कि जैसे रिक्शों का ही मेला लगा हो। रिक्शेवालों की रोटी-पानी का सवाल था, इसलिए वे काफी सख्या में आये थे।

अन्दर कार्पोरेशन के सदस्य रिक्शेवालों के भाग्य का निबटारा करने के लिए गरमागरम बहस कर रहे थे। मारुति एक घने वृक्ष की छाया में अपना रिक्शा एक ओर किए हुए बैठा था। उसकी बुद्धि यह समझने में असमर्थ थी कि रिक्शेवालों की किस्मत का निबटारा वे लोग क्यों कर रहे हैं जो स्वयं रिक्शा नही चलाते ? सीधी-सी बात है, इस प्रश्न का उत्तर स्वयं रिक्शेवालों से ही ले लिया जाये।

पान, बीड़ी और सिगरेट वालों की बन आई थी। वही वृक्ष की छाया में चाय की दूकान थी, जिसकी आज पौबारह थी। दूकानदार सोच रहा था, 'यदि रोज-रोज यहाँ तक जुलूस या विरोध-प्रदर्शन हुआ करे तो कितना अच्छा हो ?'

दूकानदार के खयाल उस डॉक्टर के खयालों की तरह थे, जो यह सोचता है कि लोग सदैव बीमार रहें परन्तु मरे कोई नही।

नई पौध

पहला चुनाव आया और उसमें रामलाल हरगोविन्ददास सिंघानिया उर्फ भंडुलालजी पराजित हुए। यह उनकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी एवं पहली पराजय थी। हराया भी किसने ? नाथूलाल ने, जिसे सेठ ने 'सड़क छाप' आदमी की संज्ञा से विभूषित किया था।

भंडुलाल के लिए यह पराजय केवल एक घटना मात्र नहीं थी, उससे कितने ही तथ्यों पर एक साथ प्रकाश पड़ता था। उस समय जबकि कांग्रेस की प्रतिष्ठा अपने चरम विकास पर थी, कांग्रेस की टिकट पर हार जाना अपवादस्वरूप प्रमुख घटना थी। उस समय विरला ही कोई ऐसा था जो कांग्रेस की टिकट प्राप्त कर चुनाव में हारा हो। सेठ भंडुलाल ने इसे अपना ही नहीं बल्कि कांग्रेस का भी भारी अपमान समझा था।

यह बात दूसरी थी कि अपनी पराजय के पश्चात् उन्होंने बाई-इलेक्शन लड़ा और वे एम० पी० बन गये। खास भंडुलाल के लिए एक निर्वाचित सदस्य ने इस्तीफा दिया और उसकी जगह पर भंडुलाल पुनः दूसरे क्षेत्र से खड़े होकर निर्वाचित हो गये।

फिर भी अपनी पराजय उन्हें सीए डाल रही थी। उनका हृदय रह-रहकर छलनी हुआ जाता था। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो किसी साधारण-से समझे जाने वाले अनजान वैरी ने उन्हें उनके ही घेरे में बुरी तरह से पछाड़ दिया हो। लेकिन बदला लेने का उन्हें कोई तरीका नज़र नहीं आ रहा था।

ड्राइंगरूम में दीवान पर बैठे हुए सेठ भंडुलाल सामने दीवार पर लगी हुई पंडित नेहरू की बड़ी-सी तस्वीर को लगातार देखे जा रहे थे। उनका मस्तिष्क विचारों से इतना भरा हुआ था कि वह चित्र भी उनके सामने

धुंधला-सा पड चुका था। वे दीवार को लगातार घूरे जा रहे थे।

सेठजी ने अपने काले और सफेद उल्टे खिचडी बालों पर हाथ फेरा, फिर चश्मा उतारा। धोती के पल्ले से आँखें पोंछी और चश्मा साफ किया। चश्मा साफ कर उसे उन्होने आँखों पर फिर फिट कर लिया। सेठजी को लगा जैसे दृश्य ही बदल गया हो। उन्हें ऐसी-ऐसी वस्तुएँ दिखाई देने लगी जिन्हें देखने की उनकी आँखे अभ्यस्त नही थी। हर बार उनके चश्मे का नम्बर बदलता है। उस पर नया काँच चढ़ता है। चश्मे का काँच धीरे-धीरे मोटा हो रहा है या दुनिया ही बदल रही है ?

डॉक्टर सेठजी को तसल्ली देते हुए कहता है कि बढती हुई अवस्था के कारण चश्मे का नम्बर बदलना तो स्वाभाविक है। बढती हुई अवस्था के साथ आँखें तो कमजोर होंगी ही। परन्तु सेठजी का कथन है कि मेरे चारों ओर दुनिया इतनी तेजी से बदल रही है कि मेरी आँखें उसके साथ-साथ कदम नहीं मिला पाती, इसलिए नई दुनिया को देखने के लिए नये नम्बर और उसके साथ-ही-साथ नये काँच की जरूरत पडती है, फिर भी चश्मे का फ्रेम पुराना ही है। युग बदलता है, पिछले युग पर नये युग की परत चढ जाती है। सेठजी दीवार पर दृष्टि गडाए लगातार देखते ही जा रहे हैं।

सेठजी ने दो-दो लड़ाइयों का जमाना देखा था। लोगो को कहते सुना गया है कि सेठजी केवल एक लोटा-डोरी लेकर नागपुर आये थे। उनका लोटा तो आज तक गिरवी रखा हुआ है। जिसने लोटा गिरवी रखा है वह लोटे को छोड़ता नही है। सेठजी इस लोटे के लिए हजार रुपया तक देने को तैयार हैं। परन्तु उस मनुष्य ने तो यह लोटा सेठजी की उन दिनो की यादगार-स्वरूप रखा है जबकि सेठजी को यदि जहर भी खाना पडता तो वे उधार लेकर ही खाते।

अंग्रेजो के जमाने मे सेठजी ने पूरे अंग्रेजी ठाट-बाट देखे थे। सेठ शब्द भंडुलालजी की अमीरी का परम्परावादी विशेषण था। सेठजी ने पैसा कमाने के लिए 'सब-कुछ' किया। सब-कुछ मे चोरबाजारी, छल-कपट, झूठ-सच, उल्टा-सीधा, कालाबाजारी, छल-फरेब आदि से शत-प्रतिशत सहायता ली। आप यह मत पूछिए कि उन्होंने क्या किया, बल्कि यह पूछिए कि धन सग्रह के लिए उन्होंने क्या नही किया।

सुना है कि जब लक्ष्मी आती है तो छप्पर फाड़कर आती है। सेठजी के लिए तो यह बात शत-प्रतिशत लागू होती थी, परन्तु तिलनगोड़ी के कई मटीले घरों पर यह बात साबित नहीं होती थी। तिलनगोड़ी बस्ती के कच्चे मकानों के कई कमरे लोगों ने बिना छत के बनवाए थे, शायद यह सोचकर कि यदि लक्ष्मी आए भी तो उसे छप्पर फाड़ने की आवश्यकता ही न पड़े। परन्तु उन छत-विहीन कमरों या झोंपड़ों में लक्ष्मी का आगमन तो दूर रहा, बरसात का पानी अवश्य उन घरों में निवास करने वाले प्राणियों पर पड़ा करता था। जो लोग इस प्रकार के कमरों में जानवर बांधते थे वहां लक्ष्मी का न आना तो किसी हद तक समझा जा सकता है, क्योंकि लक्ष्मी आखिर आदमियों के पास ही आती है न कि जानवरों के पास, भले ही वे आदमी जानवरों से भी गये-बीते क्यों न हों।

दूसरी लड़ाई में खूब कमाकर सेठजी कांग्रेसी हो गये। उनका विचार था कि इस इलेक्शन में एम० एल० ए०, तो अगले इलेक्शन में कम-से-कम उपमन्त्री बनने का तो अवसर अवश्य प्राप्त होगा।

परन्तु मिला क्या ? पराजय ! वह भी एक मामूली-से समझे जाने वाले अदना-से आदमी से।

सेठजी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक साधारण-सा,जंगली-सा दिखने वाला मनुष्य भी इतना ताकतवर हो सकता है। सेठजी ने मन-ही-मन कहा – बलिहारी है ऐसे प्रजातन्त्र की जो आदमी भी नहीं पहचानता।

यदि किसी को ऊपरी मंजिल पर पहुँचाकर वहां से अचानक नीचे फेंक दिया जाए तो उसकी क्या हालत होगी ? ऊपर चढ़ने की जितनी खुशी नहीं होगी उतना तो गिरने का दुख ही होगा, हड्डी-पसली चूर होगी सो अलग। ऐसी ही कुछ-कुछ हालत सेठजी की भी हो रही थी।

इस पराजय के पश्चात् इतनी गनीमत थी कि सेठजी ने अपना खद्दर का चोला उतार नहीं फेंका अन्यथा अपनी पराजय के बाद उन्होंने कांग्रेस को इतनी गालियां दी थीं कि गालियों का उनका अपना निजी शब्द-कोश ही समाप्त हो गया था। गालियां देकर उनकी भी तबियत मस्त हो गई थी। उन्होंने मन-ही-मन कहा था—'यदि कांग्रेस के दोनों बैल मेरे सामने आ जाएं तो उन्हें इतना मारूं कि देखकर कांग्रेसियों की तबियत पस्त हो

जायें।' जैसे कि सेठजी की पराजय के लिए स्वयं कांग्रेस ही जिम्मेवार थी। भगवान् की दया से न तो वे बैल ही सेठजी के सम्मुख आये और न ही सेठजी को उन्हें पीटना पड़ा।

सेठजी ने कई प्रकार के पापड़ बेले थे, इसलिए उनकी व्यावहारिक बुद्धि इतनी जल्दी तो अपनी पराजय स्वीकार करने वाली नहीं थी। उन्होंने अपने-आपको समझाया—'बेटा, ऐसे काम नहीं चलेगा। कम-से-कम कांग्रेसी चोला रहने दो। जमाना कांग्रेस का है। उसकी पूजा करो। उदय होते सूर्य को नमस्कार करना चाहिये, डूबते को नहीं।···और तेरा तो धन्धा ही नमस्कार करना है। पहले अंग्रेजों का सूरज ऊपर था, अब कांग्रेस का सूरज ऊपर है।' सेठजी अपने खयालों में अपने-आपके बाप भी बन बैठे।

सेठजी की आँखें घड़ी पर गईं। घड़ी के कांटे बेरहमी से सरकते जा रहे थे। घड़ी का तो वैसे अपना कार्य होता है, उसमें तो केवल चौबीस घंटों को ही बताने की शक्ति है। वह तो एक हजार चार सौ चालीस मिनट या छयासी हजार चार सौ सैकंड ही बता सकती है। बदलते हुए समय को घड़ी ठीक-ठीक नहीं बता सकती।

इलेक्शन के बाद ही सेठजी ने अमरावती में कपड़े की एक मिल भी खोल दी थी। नई-नई इमारतें भी बनवाईं ······एक-से-एक शानदार··· परन्तु अपना पुराना निवास नहीं छोड़ा। उनका विश्वास था कि पुराने घर में बरकत है। उसे छोड़ने से हानि होगी। सेठजी सादा जीवन पसन्द करते थे।

इलेक्शन की पराजय से उनका माथा ठनका। सेठजी को कहते सुना गया था—"क्या चोर-उचक्कों का जमाना आ गया है। जिनको कल तक कोई पूछता नहीं था, आज वे ही राज कर रहे हैं। बंगलों में रहते हैं··· मोटरों में घूमते हैं। आज के तोपचन्द कल के रसोइए, पढ़ाने वाले मास्टर या गांधी-नेहरू के नाम पर सड़कों पर पिटाई खाने वाले लोग ही तो हैं। खानदानी लोगों को कोई पूछता नहीं, राजे-महाराजों का समय चला गया, जमींदार खत्म हो गये, और ये साले, जो मुँह की मक्खियाँ नहीं उड़ा सकते, आज राजगद्दियाँ सम्हाले बैठे हैं।"

ज्योतिषी ने भी सेठजी को बताया था कि उनकी साढ़े साती १९४९

में ही समाप्त हो गई है। बस, आगे तो चाँदी-ही-चाँदी है। सेठजी ने सोचा, 'ज्योतिषी भी मेरा गुरु निकला। मैंने ज़माने-भर को मूँड़ने की कोशिश की। उसने मुझे ही मूँड़ा।' सेठजी ने अब पुनः नया काँच बदला है। एक नम्बर और बढ़ चुका है। सोचते हैं आखिर ये कैसा ज़माना आया है ?

सेठजी स्पष्ट देख रहे हैं कि एक प्रकार का ऐसा युग आता चला जा रहा है, जो उनके नियन्त्रण से बाहर है। नई पौध का यह नया खून है, नई रोशनी है। नई पौध को सेठजी आँखें फाड़े देखते हैं। ऐसी नई पौध कि जो उनके शिकजों से बाहर है। एक नये तरह का भारत नींद तोड़-कर जाग रहा है। भले ही विकास के सृजनात्मक चिह्न सेठजी को न दिखें, परन्तु उनका यह तो कहना है कि अन्दर-ही-अन्दर एक जबरदस्त परिवर्तन आ रहा है। जिन पुराने पौधों में सदियों से अंकुर फूटे नहीं थे, उनमें भी नये अंकुर फूट रहे हैं। और उन्हीं पौधों के पत्ते सड़-गलकर गिर रहे हैं। सेठ-जी को प्रतीत होता है कि वे स्वयं ही एक ऐसे पत्ते के समान हैं जो कि हवा के झोंके के साथ गिरने की राह देख रहा है। उस जीर्ण पत्र का स्थान नवीन पत्र ले रहा है। सेठजी चाहते हैं कि न तो पुराना पत्ता ही झरे और न ही उसकी जगह नया उगे। परन्तु क्या करें ? मजबूर हैं। कुदरत का ऊँट न जाने किस करवट बैठने जा रहा है ?

सेठजी का बस चलता तो इंग्लैंड जाकर अंग्रेज़ों से हाथ जोड़, नत-मस्तक हो, प्रार्थना करते—"माई-बाप, आप हिन्दुस्तान छोड़कर क्यों चले आये ? वापस चलिए और लौटकर भारत के राज्य की पुनः बागडोर सम्हालिए। चारों ओर अनाचार फैल रहा है। आकर सत्ता सम्भालिए और दो-चार और विश्व-युद्ध हो जाने दीजिए ताकि यह नाचीज़ थोड़ा-बहुत और हाथ गरम कर सके।"

किसी समय तो सेठजी अंग्रेजों को भगवान् का ग्यारहवाँ अवतार मानते थे। सबको वे कहते-फिरते थे कि "जब भारत में अनाचार बढ़ा तो अंग्रेज़ों के रूप में भगवान् ने अवतार लेकर गँवार हिन्दुस्तानियों का मार्ग-दर्शन किया।" वे शुद्ध मन से पूजा किया करते। साल में कितने ही कथा-कीर्तन करवाते। कितनी ही गोशालाओं एवं धर्मशालाओं को चन्दे

देकर आपने हिन्दू संस्कृति की सुरक्षा की थी।

सेठजी देखते हैं कि आज का गरीब अमीर तो नहीं हुआ किन्तु उसमें घूँसे की ताकत अवश्य आ गई है। वे सोचते हैं कि कल के गरीब व मजदूर, जिनके मुँह में जबान तक नहीं थी, वे आज किस प्रकार 'जबान चलाना' सीख गये हैं। सीधे मुँह बात करना शायद वे भूल ही गये हैं। वे कहते हैं--"पुराना जमाना होता तो मार-मारकर इनकी पीठ छिलवा देता।" वे सोचते-सोचते काफ़ी गम्भीर हो उठते हैं और चिन्ता प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस भारत का अन्त आखिर कहाँ होगा? कभी-कभी तो सेठजी भारत के भविष्य को लेकर काफ़ी चिंतित हो जाते हैं।

२

गोधूलि बेला थी। शाम के इस सूरज से तो पूर्णिमा का चाँद ही तेज लगता था, क्योंकि यह ठंडे दिनों का सूरज जो था। इसी कारण भिंडे के तालाब में तथा 'नवाब के नाले' में यह हिम्मत थी कि वे अपने-आपमें पानी को जगह दिए हुए थे। गरमी का सूरज तो इनके शरीर से पानी की पोशाक पूरी तरह से उतार देता है और इन्हें बिलकुल नंगा कर देता है। भिंडे के तालाब को या 'नवाब के नाले' को अपने नंगेपन की उस समय बिलकुल भी शर्म न होती, क्योंकि नंगापन अपने-आपमें तो बुरा नहीं होता है और मजबूरी में तो अश्लील भी नहीं कहा जायेगा।

नग्नता में पवित्रता होती है इसलिए शायद कई धार्मिक स्थलों पर नग्न-मूर्तियाँ ही होती हैं।

पार्वती ने आज ही अपना द्वार 'माला मिट्टी' से लीपा था। वह जगह धुली हुई चादर की तरह सफ़ेद थी। पाँडुरंग वहाँ आकर उकड़ूँ बैठकर चिलम पीने लगा। पाँडुरंग की पीठ बाहर की ओर थी। पाँडुरंग की दृष्टि अपने कच्चे मकान के बीच वाले कमरे को पार कर रोटी पकाती हुई लक्ष्मी पर पड़ रही थी। रसोई में बिलकुल अँधेरा हो रहा था। सारी रसोई धुएँ से भरी थी। उस कालिमा को चीरकर सहसा चूल्हे में आग भड़की। अग्नि का प्रकाश लक्ष्मी के चेहरे पर नाच रहा था, या यों भी कहा जा

सकता है कि चूल्हे में जलती हुई आग का प्रकाश लक्ष्मी के चेहरे पर मचल रहा था। उसी प्रकार जैसे इस चेहरे को देखकर कभी पाँडुरंग का दिल मचला करता था। लक्ष्मी बिना इन सब बातों की चिन्ता किये अपने काम में व्यस्त थी। लक्ष्मी रोटी बेल रही थी। बीच-बीच में पार्वती की छायाकृति सहसा दृष्टिगत होकर ओझल हो जाती थी। पार्वती को दिन थे, इसीलिए लक्ष्मी ने उसे हल्के-फुल्के काम ही दे रखे थे। चिलम पीते-पीते पाँडुरंग पर हल्का-सा नशा छा रहा था। पाँडुरंग सामने इस दृश्य को अधखुली आँखों से देख रहा था। पाँडुरंग की मुद्रा से ऐसा लगता था कि मानो वह कोई प्रभावशाली चित्र देखने में व्यस्त हो। पाँडुरंग के चारों ओर चिलम का धुआँ फैल रहा था और साथ ही उसकी बदबू भी। पाँडुरंग ने चिलम को ज़मीन पर रखा, साथ ही मैले-से गीले कपड़े के टुकड़े को चिलम से हटाया।

मारुति पाँडुरंग के पास ही आकर बैठ गया। अब तक रात पड़ चुकी थी। पार्वती ढिबरी बाहर रख गई थी। मारुति घुटनों पर हाथ रखे बैठा था। पाँडुरंग काफी दिनों से मारुति को 'आवश्यक बातें' बताने की ताक में था। उसने कहा, "बेटा मारुति, मैंने तो अपनी ज़िन्दगी में सिर्फ घास ही खोदी। परन्तु तुमसे कहता हूँ कि तुम एक भले आदमी बनकर रहना। उसी में फ़ायदा है।"

"आप स्वयं ही तो देखते हो कि मैं किस प्रकार रहता हूँ।"

"अभी तक तो तुम्हारी रफ्तार ठीक है। मैं भविष्य की बात करता हूँ। कुछेक गलतियाँ जो मैंने अपनी ज़िन्दगी में की हैं, मैं नहीं चाहता कि तुम उन्हें दोहराओ। मेरे लिए तो तुम रामू से ज्यादा हो। भगवान् ने तुम्हें ठीक जगह ही भेजा है।"

"आपकी मेहरबानी है।"

"खैर, मेरी क्या मेहरबानी होगी? यह सब करने-धरने वाला तो ईश्वर ही है। किन्तु इतनी ज़िन्दगी बीत जाने पर मैंने काफ़ी-कुछ सीखा है। दुर्भाग्यवश मैं तो अब उनका फ़ायदा नहीं उठा सकता। कम-से-कम तुम्हें रास्ता बता सकता हूँ। जिस समय मैंने गलतियाँ की थीं उस समय मुझे रास्ता बताने वाला कोई नहीं था। खैर, यदि उस समय मुझे कोई रास्ता

बतलाता भी तो खास फ़ायदा नहीं होता, क्योंकि मेरे आसपास की मौजूदा परिस्थितियाँ मेरे मन लायक नहीं थीं······पर तुम्हारी बात दूसरी है।"

"क्यों ?"

"यह मैं क्या जानूँ ? परन्तु तुम्हें देखकर मुझे खुशी होती है। देखो, शादीशुदा आदमी के लिए सुखमय जीवन बिताने हेतु उसकी ज़िन्दगी में औरत की बहुत कीमत होती है। इसके लिए पहला सवाल यह है कि औरत कैसी हो ? कोई भी औरत अपने-आपमें पूर्ण नहीं है, बस वही औरत अच्छी है जो तुम्हें पूरी तरह पसन्द आ जाये।"

"हूँ···।"

"मैं देख रहा हूँ कि पार्वती तुम्हें पसन्द है। औरत को भी चाहिये कि अपने पति की सेवा करे, उसका कहना माने, यानी औरत अपने पति की मर्ज़ी के खिलाफ कोई काम न करे।

"इस बात में तो पार्वती कुशल है।

"इसके बाद औरत के प्रति मर्द की भी कुछ ड्यूटी है। यदि आदमी चाहता है कि उसकी औरत खरा सोना रहे तो उस आदमी को भी किसी ग़ैर औरत पर खराब दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। आदमी को टाइम पर घर आ जाना चाहिए। उसे अपने दिल की हर बात औरत को बता देनी चाहिये। हम लोग तो गरीब आदमी हैं जिनकी औरतों को पेट के लिए घर-घर घूमना पड़ता है, इसलिए उनके खराब हो जाने का ज्यादा डर है। तुम्हारी काकी जब बर्तन माँजने के लिए पार्वती की बात करती थी तो मैंने इसीलिए ही उसे रोका था। ज़माना खराब है। ताकतवर, अमीर या गुण्डों के हम हाथ तो नहीं पकड़ सकते। हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी हमारी गरीबी है। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुमको तो सोना मिला है। इसकी कदर करना। उससे कोई बात छिपाना मत, टाइम पर घर आना। चार पैसे के लालच में आकर कभी जुआ, शराब आदि के चक्कर में न फँसना। यह रिक्शे का धन्धा बहुत बुरा है। लोग रिक्शेवालों को बदमाश समझते हैं, रिक्शेवाले खुद भी कहते हैं कि नौकरी न मिले तो मज़दूरी करने से रिक्शा चलाना बेहतर है।"

पांडुरंग को नहीं मालूम था कि मारुति के गृहस्थ जीवन की सफलता

का अपना रहस्य था। मारुति के लिए पांडुरंग के उपदेशों में कुछ नयापन नहीं था, परन्तु पांडुरंग का मुँह रखने के लिए वह उन्हें एकाग्रचित्त सुनता था। पांडुरंग मारुति एवं पार्वती से आदर पाकर संतुष्ट हो जाता, उसके अहं को इसमें तुष्टि मिलती। पार्वती के सामने वैसे भी पांडुरंग एक बुजुर्ग की हैसियत से व्यवहार करता।

३

इलेक्शन की पराजय का मानसिक क्लेश सेठ झंडुलाल के लिए अवस्था के साथ-साथ और भी उग्र रूप धारण करता चला जा रहा था। अभी तक सेठजी का दृढ़ विश्वास था कि दुनिया के हर मर्ज़ का इलाज पैसा ही है। उन्होंने यह भी देखा कि उन्हें हर आने वाले दिन में अधिकाधिक आय होती जा रही है, परन्तु लगता है कि जिस मात्रा में पैसों की गिनती बढ़ रही है, उसी मात्रा में पैसों की क़ीमत भी घट रही है। आमदनी चौगुनी हो चुकी है, फिर भी यह क्यों ? काश कि यह बात कोई सेठजी को समझा पाता !

इस सब उथल-पुथल का यदि कोई ज़िम्मेदार है तो वह है जनरल नाथूलाल !

जनरल नाथूलाल !

जिसे सेठजी ने 'सड़क छाप आदमी' की संज्ञा दी थी और हँसकर टाल दिया था। सेठजी को क्या पता था कि जिस पर केवल वे कुछ क्षण ही हँसे थे, उसके लिए उन्हें भविष्य में कितना रोना पड़ेगा। नागपुर के राजनीतिक क्षेत्र पर जनरल नाथूलाल अचानक एक धूमकेतु की तरह आया। नाथूलाल का वैसे न तो कोई घर है न घाट। जहाँ बैठ गये वहीं उनका घर बन गया। उनका परिवार और घर उनके सुनहरे व्यक्तित्व के साथ ही घूमता-फिरता था।

दाढ़ी और जटा बढ़ाए, धोती, कुर्ते और चप्पल में वह तिलनखेड़ी, इतवारी या कोष्टीपुरे की किसी भी गली में देखा जा सकता था। उसका कार्य-क्षेत्र वैसे तो इतवारी और कोष्टीपुरा था, परन्तु अपने निवास के लिए उसने तिलनखेड़ी बस्ती को चुना था। शहर के चिटपोशी लोग उसे

आधा पागल तक समझते, क्योंकि वह जरूरत से ज्यादा अपने ध्वनियंत्र का उपयोग करता था। लैक्चर देना तो उसके लिए एक मर्ज था। लैक्चर देने की भी उसकी अपनी अदा और तर्ज होती थी। जनता उसके भाषणों में, या भाषणों से कभी बोर नहीं होती। वह एल-एल० बी० तो नहीं था किन्तु उसने जेल के दिनों में अच्छा-खासा राजनीतिक साहित्य पढ़ डाला था। जेल में ही उसने अंग्रेजी सीखी थी।

स्वतन्त्रता से पहले वह एक नामी क्रांतिकारी रह चुका था। कई प्रमुख क्रांतिकारियों से मिलने का उसे मौका भी मिला था। सारा नागपुर नाथूलाल को जानता था। आज़ादी की लड़ाई के लिए उसने खुदाई फौजदारों की एक फौज बनाई थी और स्वयं ही उनका जनरल बन बैठा था। बस यही था उसकी जनरलशिप का इतिहास। समाज के उपेक्षित, निकृष्ट, गरीब या महत्त्वहीन लोग ही उसकी फौज के सैनिक या पदाधिकारी थे। १९४७ के पश्चात् सारी फौज के सिपाही अनिवार्य रूप से रिटायर कर दिये गये। रिटायर करने का श्रेय अंग्रेज सरकार बहादुर को था। इस कारण जनरल नाथूलाल की फौज के कितने ही पदाधिकारी अब रिटायर होकर या तो पान के ठेले चला रहे थे या ऐसा ही कोई छोटा-मोटा कार्य कर रहे थे। फौज तो उजड़ गई पर जनरलशिप से नाथूलाल अपना पीछा न छुड़ा सका।

स्वतन्त्रता के पश्चात् किसी भी राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की इच्छा से या अन्य प्रलोभन से नाथूलाल ने चुनाव नहीं लड़ा था। जब उसने देखा कि कांग्रेस में ऐसे कितने ही लोग महत्त्वपूर्ण स्थानों पर केवल अपने पैसों के बल पर ही प्रवेश पा गये थे तो वह विचलित हुआ था। जिन लोगों को आज़ादी से पहले कांग्रेस से कोई ताल्लुक नहीं था, आज़ादी के बाद वे ही कांग्रेस के कर्णधार बन रहे थे। दूसरे प्रकार के वे औसत दर्जे के लोग थे जो अपनी जेल-यात्रा या गांधी-नेहरू संसर्ग का अधिक-से-अधिक विज्ञापन कर तत्कालीन परिस्थितियों से 'भौतिक लाभ' उठाना चाहते थे। कल के योगी आज के भोगी थे। कांग्रेस का यह 'क्रांतिकारी परिवर्तन' नाथूलाल की समझ में नहीं आया। इस सबका मुकाबला उसने राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भाग लेकर किया। उसने समझ लिया कि पलायन से काम

नहीं चलेगा। उसने भी पहले चुनाव में कांग्रेस की टिकट के लिए आवेदन पत्र भरा, परन्तु जब उसे टिकट नहीं मिला और झंडुलाल को मिल गया तो वह धरमपेठ में ही ताल ठोककर गरजा था—"सेठ झंडुलाल, नाथूलाल के हाथों का पानी अभी उतरा नहीं है, और न ही उसने चूड़ियाँ पहनी हैं। यदि तुझे कांग्रेस का सहारा है तो मुझे भी धूल और सड़क पर पलने वाले इन लाखों लोगों का सहारा है।"

बस एक वह दिन था और एक दिन आज का है जबकि नागपुर के राजनीतिक आकाश के दो बड़े नक्षत्र आज तक आपस में कभी मिल नहीं सके। उनके वैमनस्य की दीवार दिन-प्रति-दिन चौड़ी और मज़बूत होती गई, क्योंकि इस दीवार को बनाने का श्रेय दोनों बहादुरों को था। नाथूलाल ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया, परन्तु अन्य पार्टी का भी वह सदस्य नहीं बना। अपने 'अकेले दम' पर वह आज तक लड़ता चला आ रहा है। नाथूलाल का प्रश्न था कि जिस जनता ने आज़ादी के दिनों में कांग्रेस का साथ कंधे से कन्धा मिड़ाकर दिया वही कांग्रेस आज जनता से अलग क्यों है ?

उसके बाद से नाथूलाल ने अपने हल्के में झंडुलाल के नाम को खूब रोशन किया, इस कारण उस समय जबकि कांग्रेसी टिकट प्राप्त कर एक सड़ा-सा बाँस भी इलेक्शन जीत सकता था तो अपनी पराजय सेठ झंडुलाल को एक करारी चपत के समान लगी थी।

चुनाव से पहले कर्नल जनरल का एक विशाल-सा जुलूस निकला जिसमें शहर के रिक्शेवाले, धोबी, चमार या निम्न वर्ग के लोग ही थे। जुलूस में 'उधारी का' या 'पकड़ा हुआ' कोई नहीं था। जुलूस के नारे थे—"हर मज़दूर को दो सौ रुपये मासिक तनख्वाह कौन देगा ?"

"नाथूलाल।"

"रुपये का दस पायली[1] अनाज कौन करेगा ?"

"नाथूलाल।"

"नाथूलाल को वोट दो, नाथूलाल ज़िन्दाबाद !"

---

१. सवासेर का एक नाम।

सेठजी इस जुलूस को देखकर बुरी तरह हँसे थे। हँसते-हँसते उनके पेट में बल पड़ गये थे।

नाथूलाल की विजय के पश्चात् दो दिन तक तो वे इस पर विश्वास ही न कर सके कि उनकी पराजय भी हो सकती है। सेठजी कहते फिरते थे —"जिस देश के ऐसे लोग प्रतिनिधि होंगे, उस देश के भविष्य का मालिक परमात्मा ही है।" फिर अपने-आपको वे तसल्ली देते हुए कहते—"खैर कोई बात नहीं, नाथूलाल एम० एल० ए० ने सेठ झंडुलाल की मूंछ का बाल खींचा है · अंग्रेजी की कहावत है, 'हर कुत्ते का भी अपना एक दिन आता है।' नाथूलाल तो फिर आदमी है।"

परन्तु ऐसे भाव सेठजी के मानसिक घाव पर केवल थोड़ी देर ही मरहम का कार्य करते। बाद को तो यह मरहम साफ हो जाता और घाव पुनः ताज़ा हो जाता।

सेठ केशोदास ने कारपोरेशन का चुनाव दो बार जीतने का प्रयास किया, परन्तु दोनों ही बार कांग्रेसी उम्मीदवारों से अपने हाथ गरम कर शांत हो गए। तीसरी बार भी उन्हें अपनी सफलता की उम्मीद थी, परन्तु केशो की यह खुशी आधी हो जाती है। वह बार-बार सिर पकड़कर सोचता है कि क्या किया जाये? केशो काफी पशोपेश में पड़ा रहा, किन्तु कोई हल नहीं निकला।···क्योंकि बजरंग पहलवान उसे चारों ओर से घेरता जा रहा था। चुनावों में जो उसे 'खुदाई इनकम' हुई यह बजरंग के कारण ही थी। बजरंग से अब पीछा छुड़ाना आसान नहीं था। सेठ केशो उसकी छाया से भी दूर रहना चाहता था। संसार में ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती हैं जिनकी स्थिति में ही हम नफरत करते हैं किन्तु वे बातें हमें चिढ़ाने के लिए हमारे सामने आती ही हैं। केशो जितना बजरंग से घृणा करता था, उतना ही बजरंग उसके निकट आ रहा था।

केशो की पहली पत्नी का देहांत हो चुका था। यह सेठ की द्वितीय पत्नी थी। केशो एवं उसकी पत्नी में बीस वर्ष का अन्तर था। वह सन्तान-हीन था। न जाने कितने ही साधु-सन्तों का सत्कार केशो ने किया। कितनों से ही अपना भविष्य पूछा। परन्तु अधिकतर ज्योतिषी केशो को उसके सुखमय भविष्य की कल्पना का का स्वाद चखा, अपनी मुट्ठी गरम कर

चलते बनते थे।

दो-एक बार सेठ अपनी दूकान के लिए इतवारी सामान खरीदने गया तो दूकान का कारबार अपनी पत्नी को दे गया। आने पर देखा कि दूकान पर बजरंग पहलवान डटे हैं। केशो को बहुत ही खीझ हुई। ऐसे मौके पर बजरंग तो हँसी-मज़ाक में व्यस्त रहता, परन्तु केशो खुदा से खैर मनाता कि कब यहाँ से बला टले और उसका पीछा छूटे। केशो बजरंग को खुले शब्दों में कुछ कह तो नहीं सकता, किन्तु संकेतों से उसे गाली दे अपने को संतुष्ट अवश्य कर लेता। केशो अपनी पत्नी को हर तरह से खुश करने का प्रयास करता था। अपनी कमी को केशो सेठ अच्छी तरह जानता था। अपनी कमी को केशो अन्य साधनों से पूरा करना चाहता था। केशो की द्विधा यह थी कि वह न तो अपनी पत्नी को ही डाँट सकता था और न ही बजरंग को इस विषय में साफ-साफ़ कुछ कह सकता था। पत्नी की हर माँग को केशो पूरा करता था। पत्नी के सामने केशो, बजरंग की बुराई ही करता रहता था। वह यह साबित करना चाहता था कि बजरंग एक परले सिरे का गुण्डा और बदमाश है। इस तरह बजरंग की लगातार बुराई करने का यह भी आशय होता कि उसकी पत्नी बजरंग से नफरत करने लगे।

केशो सोचता कि यदि केवल बातों-ही-बातों में बात बन जाये तो कितनी अच्छी हो। शायद उसकी पत्नी केशो के दुर्गुणों से अनभिज्ञ है। केशो की पत्नी भोजन पकाती जाती और केशो द्वारा बजरंग का बखान सुनती जाती। केशो की पत्नी इस प्रकार निर्लिप्त भाव से अपने कार्य में व्यस्त रहती कि जैसे न तो उसे बजरंग से कोई मतलब है और न ही उसकी किसी बात से। केशो समझता कि उसकी बातों का असर हो रहा है।

परन्तु केशो को क्या मालूम था कि उल्टे घड़े पर पानी पड़ रहा है।

एक दिन अपने घर के अधखुले दरवाज़े से केशो ने देखा कि बजरंग पड़ोस के घर की ऊपरी छत से उसके अपने घर की ओर इशारेबाज़ी में मस्त है। केशो का माथा ठनका। दबे पाँव केशो ऊपर गया। केशो ने देखा कि उसकी पत्नी कपड़े सुखाना छोड़कर बजरंग की ओर देखकर हँसती जा रही है। केशो पाँच मिनट तक देखता रहा। और दबे पाँव वापस

लौट आया, लेकिन केशो के लौटने की आहट उसकी पत्नी को लग गई। केशो की पत्नी एकदम वापस मुड़ी, उसने देखा कि केशो सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी नीचे उतर रहा है। उसे संदेह हुआ। वह सोच-विचार में पड़ गई। भय, आशंका और न जाने कितनी प्रकार की कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में एक साथ साकार हो उठीं।

शाम को दूकान पर बजरंग आया। केशो ने पूछा, "बजरंग, मैं भी पहलवान बनना चाहता हूँ।"

"कसरत करो, बादाम खाओ, दूध पिओ।"

"यह तो मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे जैसा मस्त शरीर बनाना चाहता हूँ।"

"उसके लिए तो ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा।"

"तो क्या तुम ब्रह्मचारी हो ?"

"सेठ मैं मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूँ।"

"मैं के बाद रुक क्यों गए ? बकरे की तरह मैं-मैं करने लगे ।"

केशो, पहलवान को व्यंग्य से घेरता चला जा रहा था। पहलवान की खोपड़ी इस बात को समझ नहीं रही थी।

"मैंने सोचा था कि आप मेरे बारे में पूछ रहे हैं या और किसी के।"

"पहलवान, और किसके बारे में मैं पूछ सकता हूँ ! तुम तुम्हीं हो। तुमने तो दो-दो बार इलेक्शन में मुझे जितवाने का प्रयास किया है। परन्तु जमाने की ओर देखते हुए तुम्हारी बात का यकीन मानना कुछ ।"

"यकीन ···।" पहलवान को जोश आ चुका था।

उसने जाँघ ठोककर कहा, "है साला, कोई माई का लाल, जो बजरंग की तरफ अँगुली उठाकर यह बोल सके ! सेठ, मैं यह छाती ठोककर बोलता हूँ।"

"पहलवान !" पहलवान शब्द पर जोर देते हुए केशो ने कहा, "कई बातें दुनिया में ऐसी होती हैं जिन्हें इंसान करता है परन्तु उसे यकीन रहता है कि उसे किसीने नहीं देखा।" खलनायक की तरह केशो पहलवान को देखते हुए मुस्कराया। पहलवान को लगा कि निस्संदेह आज कोई भारी-सी चीज उसके सामने आती जा रही है। पहलवान ने कहा, "आज आप

इस तरह की बातें क्यों कर रहे हैं ?"

"तुमने ब्रह्मचर्य की बात उठाई, सिर्फ इसलिए और दूसरे तुम सदैव ब्रह्मचर्य की डींग मारा करते हो इसलिए भी···।"

"इसमें क्या शक है ?"

"पहलवान, जमाना फिसलन का है। बडे-बड़े राजा-महाराजा, ज्ञानी-ध्यानी जब इस फिसलन पर नहीं टिक सके तो भला एक पहलवान की क्या बिसात ?"

"सेठ, वे राजा-महाराजा, ज्ञानी-ध्यानी चाहे जो रहे हों परन्तु वे बजरंग पहलवान नहीं थे।

"दावे से कहते हो···?"

"हाँ···"

"अच्छा देखूंगा···अपने शब्दों को भूलना मत।" सुनकर पहलवान काँप गया। उसका मूड सेठ ने खराब कर दिया। पहलवान उठकर चलने लगा।

केशो ने कहा, "बैठो पहलवान, आज तो बहुत जल्दी चल दिये।··· क्या फिक्र है ? घर में कोई बीवी थोड़े ही है जो तुम्हारा इंतजार कर रही हो !"

४

तार पाते ही कर्नल चटर्जी को जमीन-जायदाद-संबंधी झगड़ों के लिए कलकत्ता जाना पड़ा। वे चले तो गये परन्तु इधर दूसरे दिन से ही रेणु को बुखार हो आया। घर में कोई भी मर्द नहीं था कि जो दौड़-धूप करता। रेणु की माँ तो रो पड़ी। अब उसे पता लगा कि स्त्री की दौड़ आखिर कहाँ तक होती है ? वह केवल चटर्जी के सिर पर ही इतना अकड़ सकती थी। उसके सामने अपने पति का सदैव मुस्कराता हुआ चेहरा घूम गया। ऐसी कोई विशेष बात नहीं हुई थी, परन्तु चटर्जी की दो ही दिनों की गैरहाजिरी ने श्रीमतीजी की आँखें खोल दी थीं। राम-राम करते शाम आई।

रामू हमेशा की तरह, आज भी चटर्जी के घर अपनी धुन में आराम से ही पहुँचा। रामू को देखते ही रेणु की माँ ने कहा, "मास्टर बाबू··· तुम्हारा भी कमाल है। दिन-भर न जाने कहाँ रहते हो? कभी बुलाना पड़े तो भी तुम्हारा कोई पता नहीं है।

"रेणु की तबियत पिछले दो दिनों से खराब है। किससे कहूं?···कोई दवा लाने वाला तक नहीं है। मेरे पान कल से खत्म हो गये हैं। शहर से कौन लाए? नौकर भी पिछले पाँच रोज से नहीं आ रहा। घर में एक आया है, बेचारी क्या-क्या करेगी?"

"ओह···रेणु बीमार है!" रामू रेणु के कमरे की ओर तेजी से बढ़ा।

"वह नीचे ही है बैड रूम में।" श्रीमती चटर्जी ने कहा। रामू नीचे कमरे में गया तो उसने रेणु को आँखें बन्द किये लेटे हुए पाया। रामू ने समझा कि रेणु सो रही है, इसलिए वह लौटने के लिए मुड़ा, रामू ने सुना, "मि० पाटिल······!"

"अरे, तू जाग गई ··बेटी, सो जा थोड़ी देर।" खटिया पर बैठकर श्रीमती चटर्जी ने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। श्रीमती चटर्जी की आवाज इतनी कर्कश होती थी कि वे कितना ही धीमे या दया से क्यों न बोलें, फिर भी वह कर्कशता छिप नहीं सकती थी। अपनी माँ की आवाज सुनते ही रेणु मन-ही-मन खीझ उठी। रेणु ने गुस्सा पीकर आँखें मूंद ली, "माँ, चाय बनाकर ले आओ।"

"अच्छा लाती हूँ।"

माँ के जाते ही रेणु के फीके चेहरे पर फीकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। उसने कहा, "मुझे माँ की आवाज बर्दाश्त नहीं होती। इतनी जोर से चिल्लाकर बात करती हैं कि पास बैठने पर उनके मुँह से थूक उड़ता है।"

"पर तुमने यह क्या हालत बना रखी है?"

"क्या आपको इसका दुख है?"

"किसीको भी दुख होना स्वाभाविक है।"

"मेरा सवाल आपसे है?"

"अरे, होगा कैसे नहीं?···तुम तो पागलों-जैसा सवाल पूछती हो।"

"पगली जो ठहरी।"

"मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि ज्यादा बातें न करो··· नहीं तो फिर सिर दर्द होने लगेगा।"

"मेरा सिर ठीक है।" रेणु के माथे पर रामू ने हाथ रखकर देखा। सिर तप रहा था।

"आपका हाथ कितना ठण्डा है ?"

अब तक चाय बनकर आ चुकी थी। श्रीमती चटर्जी की आज्ञा से उस दिन से रामू ने अपना डेरा-डण्डा चटर्जी के घर ही गाड़ दिया। काफ़ी रात गये तक रामू रेणु से बातें करता रहा। रामू के आने से श्रीमती चटर्जी को काफ़ी राहत मिली। आकर रामू ने कोई विशेष काम तो नहीं किया परन्तु रामू की उपस्थिति ही घर-भर के लिए काफी थी।

चटर्जी को गये सात दिन हो गये। इस बीच उनका केवल एक ही पत्र आया था कि वे सकुशल कलकत्ता पहुँच गये हैं। दूसरे सप्ताह श्रीमती चटर्जी कलकत्ते से विस्तृत पत्र की अपेक्षा कर रही थीं। उन्हें चटर्जी से दूसरा पत्र अभी तक नहीं प्राप्त हुआ। इस बीच रेणु का बुखार उतरने की बजाय चढ़ता ही गया। रोज़ आधा या एक डिग्री टेम्परेचर ऊपर हो जाता था। सात दिनों तक बुखार ने उतरने का नाम नहीं लिया। रेणु की माँ तो घबरा गई, उसने कर्नल चटर्जी को तार किया, कोई जवाब नहीं आया। दो दिनों के पश्चात् रिप्लाई पेड तार भेजा, परन्तु तार के साथ स्वयं चटर्जी ही आ गये। उसी दिन रेणु का बुखार भी उतर गया। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे बुखार चटर्जी से डरता था, इसलिए चटर्जी के कलकत्ता जाते ही वह उनके घर में घुसा और चटर्जी के लौटते ही उनके घर से निकलकर भाग गया।

इतने दिनों रामू ने ही घर की सारी दौड़-धूप कर सारा कारबार सम्हाला। रेणु का बुखार तो उतर गया परन्तु वह काफ़ी कमजोर हो गई। रेणु को डॉक्टर ने आराम करने की सलाह दी। उस समय रामू रेणु को उपन्यास या समाचारपत्र पढ़कर सुनाया करता था। श्रीमती चटर्जी ने देखा कि रामू का जैसे अपनापन है ही नहीं। पिछले दस-पन्द्रह दिनों से रामू ने कमाल की दौड़-धूप कर परिस्थिति को सम्हाला था। दो-एक बार

श्रीमती चटर्जी ने रामू को डाँट भी दिया था, परन्तु रामू शांत एवं मौन रहकर सुनता रहा था। यह डाँट अकारण एवं श्रीमती चटर्जी के स्वभाव-वश ही थी। बाद को स्वयं श्रीमती चटर्जी को इसके लिए पश्चात्ताप भी हुआ था। वैसे सामान्य रूप से रामू रेणु की माँ से सदैव बचने का प्रयत्न ही किया करता था, क्योंकि रेणु की माँ जब बोलना शुरू करती तो उनमें पूर्ण विराम की तो बात दूर रही, अर्धविराम तक का पता नहीं लगता था।

उस दिन किसी काम से श्रीमती चटर्जी को ढूँढ़ता हुआ रामू रसोई में पहुँच गया। श्रीमतीजी तरकारी काट रही थीं, बोलीं—"बैठो मास्टर बाबू, मैं चटाई ले लो।" रामू ने सोचा बुरे फँसे। वह अनमने भाव से चटाई पकड़कर जमूरे की तरह सिर हिलाते हुए आसन पर बैठ गया। श्रीमती चटर्जी ने बोलना शुरू किया, "अच्छा हुआ कि कर्नल साहब आ गये, नहीं तो न जाने क्या होता? घर में कोई तो आखिर आदमी होना ही चाहिये। घरनी बिन जैसे घर भूत का डेरा होता है उसी प्रकार आदमी बिना घर भी भूत का ही डेरा होता है। परन्तु सब-कुछ अपने बस की बात थोड़े ही है। भगवान् किसी के लाख चाहने पर भी उसे लड़का नहीं देता, दूसरी ओर ऐसे लोग होते हैं जो घर में लड़की का मुँह देखने को तरस जाते हैं तो उनके घर भगवान् सिर्फ लड़को की ही लाइन लगा देता है। कभी-कभी तो मेरा दिल काफी उदास हो जाता है। खैर अब तो आदत पड़ गई है इस-लिए काम चल जाता है। परन्तु कर्नल साहब को कोई फर्क नहीं पड़ता, सदा ही हँसते रहते हैं, खुश रहते हैं।

"मास्टर बाबू, पर खुश रहने को किसका दिल नहीं करता? परन्तु मैं यदि उनकी तरह फक्कड़ रहने लगूँ तो हो चुका घर का काम। घर में बीस काम होते हैं। घर में नौकर हुए तो क्या हुआ? नौकरों पर भी देख-रेख रखनी पड़ती है। मेरी तो जान दुखी हो जाती है। नतीजा यह होता है कि कहीं का गुस्सा कहीं निकल जाता है। अब देखो···तुम्हीं जब से यहाँ आए हो तो जी-जान से काम कर रहे हो, पर तुमको भी मैं यों ही दो-चार बार डाँट बैठी। तुम भी क्या सोचते होगे कि किस गुस्सैल औरत से तुम्हारा पाला पड़ा है। लेकिन मास्टर बाबू, मैं मजबूर हो जाती हूँ। किस्मत से ही तुम जैसे लोग मिलते हैं, नहीं तो इस स्वारथ की दुनिया में

कौन किसकी मदद करता है ? अच्छा है तुमने रेणु को इतना बजाना सिखा दिया। उसकी शादी होगी तो उसका दूल्हा खुश हो जाएगा। रेणु की बातों का बुरा न माना करो। अभी तो वह आधी पगली है। कभी मुझसे उलझती है और कभी अपने पापा से। खैर, वैसे तो मैं जानती हूँ कि तुम ठंडे मिज़ाज के आदमी हो, परन्तु मैं यह भी जानती हूँ कि ठण्डे मिज़ाज के नीचे बहुत बुरी आग भी सुलगती रहती है, जो मौका पाकर छोटे-से सूराख से निकलना चाहती है। जब निकल नहीं सकती तो ज्वालामुखी बनकर फटती है ···।" ज्वालामुखी के फटने का आभास, श्रीमती चटर्जी ने अपने दोनों हाथ फैलाकर देने का प्रयास किया। कर्नल चैटर्जी ने प्रवेश करते हुए कहा, "आ गये मिस्टर पाटिल; आज तुम रानीजी की लपेट में। यह तो नहीं होता कि मि० पाटिल को सिनेमा दिखाने या सैर-सपाटे करने की बातें करें···शुरू लैक्चर···मि० पाटिल, आओ मेरे साथ।"

डूबते को तिनके का सहारा मिला। पाटिल ऐसा सुनहरा मौका भला कैसे छोड़ता ? वह बाहर चला आया।

५

पांडुरंग यह देख रहा है कि पिछले तीन दिनों से लक्ष्मी 'महादेव की जात्रा' के लिए काफी तैयारी कर रही है। रात को लक्ष्मी जब सोने जाती तो उसे ऐसा लगता जैसे उसकी कमर टूट ही चुकी है। पांडुरंग को लक्ष्मी पर दया तो आने लगती, किन्तु इसे पांडुरंग की बुद्धि या चेतना या जो कुछ कहो, उस दया को उभरने नहीं देती। इस कारण पांडुरंग में वह उभरने वाली दया अन्दर-ही-अन्दर कुंठित होकर तिरोहित हो रह जाती। और इन सब मनोविकारों के ऊपर उसका अन्तर गरजकर कहता—"इस हरामजादी का कोई विश्वास नहीं।" महादेव की यात्रा का प्रस्ताव घर में पहले-पहल लक्ष्मी ने ही रखा था। पार्वती भी इस यात्रा में जाने के लिए उत्सुक थी। पांडुरंग इस यात्रा में पार्वती के जाने के पक्ष में नहीं था। दूसरी ओर लक्ष्मी अकेली अन्य यात्रियों के साथ जाना नहीं चाहती थी।

कि यह महादेव की यात्रा है कोई मजाक नहीं है।

सतपुड़ा की भयानक पर्वत-श्रेणियों पर चढ़ाई का सवाल है। कहीं यदि पैर फिसल गया या ऊँचे-नीचे मार्गों से गिर पड़ी तो उसका पता तक न चलेगा। वैसे इस प्रकार की मृत्यु को यात्री एक पुण्य ही मानते थे। प्रति वर्ष कुछेक यात्रियों का ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से फिसल जाना साधारण-सी एवं आकस्मिक बात है। परन्तु लक्ष्मी अपनी ढलती अवस्था में इस पुण्य को अकेले ही नहीं लूटना चाहती थी। वह चाहती थी कि यदि उसे इस प्रकार के पुण्य प्राप्त करने का अवसर मिले तो कम-से-कम परिवार का कोई-न-कोई सदस्य तो निकट होना ही चाहिये। लक्ष्मी पार्वती को साथ ले जाना चाहती थी, परन्तु पांडुरंग पार्वती को भला अकेले कैसे जाने दे? पांडुरंग ने मारुति को भी साथ जाने की आज्ञा दी। पार्वती की सुरक्षा के लिए पांडुरंग मारुति के फौलादी हाथों का घेरा मजबूत समझता था। आखिर यह तय हुआ कि मारुति, लक्ष्मी और पार्वती इस यात्रा में जायें।

लक्ष्मी ने हरी साड़ी पहन रखी थी। साड़ी का रंग देखकर पांडु को चौबीस या पच्चीस वर्ष पहले का समय याद हो आया। उन दिनों न तो नागपुर में रिक्शे ही थे और न ही पांडु रिक्शा चलाता था। वह उस समय कुली था। धरमपेठ में एक मकान का काम चल रहा था। पांडु सुबह काम पर गया। एक दिन एक बजे दोपहर को वह आधे दिन की छुट्टी में घर लौट रहा था। उसने बस्ती से बाहर इमली के पेड़ की छाया में एक मोटर खड़ी देखी। उसे ख़याल हो आया कि उसने इसी मोटर को दो-एक बार पहले भी इसी जगह पर ही देखा है। पांडु ने सोचा, निम्नस्तेही में भला मोटरवाला क्यों आता होगा?

पांडु अपने घर पहुँचा तो उसने दरवाजा बन्द पाया। उसने दरवाजा खटखटाया परन्तु कोई आवाज नहीं। पांडु [illegible] की [illegible] किन्तु वहाँ का दरवाजा भी बन्द था। वह बाहर खड़ा होकर सोचने लगा कि आखिर लक्ष्मी को क्या हो गया है। तरह-तरह के विचार उसके मन में आने लगे। उसने सोचा कि [illegible] नहीं हो। [illegible] भी क्या नींद कि इतना खटखटाने के बाद भी दरवाजा न खोले। [illegible] मन में अचानक [illegible] को लेकर कुछ [illegible] [illegible]

अन्दर ही आत्महत्या करके मर तो नहीं गई ? परन्तु आखिर वह ऐसा क्योंकर करेगी ? वह दूर हटकर खड़ा हो गया, जहाँ से अपने घर को चारों ओर से देख सके।

सहसा लक्ष्मी ने सामने का दरवाज़ा खोला। पाँडुरंग उस ओर कदम बढ़ाने ही लगा था कि उसने यह भी देखा कि उसके घर के पिछवाड़े से कोई आदमी निकल रहा है। पांडुरंग को सन्देह हुआ। उसने पुकारा—"कौन है ?" पाँडुरंग ने देखा कि वह आदमी कमीज़, पैंट पहने, काला-सा चश्मा लगाये हुए है, उसका रंग गेहुँआ था। वह तेज़ चाल से बस्ती के अन्य झोंपड़ों में विलीन होने लगा। पाँडुरंग ने देखा कि लक्ष्मी के चेहरे का रंग उड़ा हुआ है। पहले तो पाँडुरंग कुछ नहीं समझ सका, फिर उसने कड़ककर लक्ष्मी से पूछा कि पीछे से कौन जा रहा था।

"आज तो तुम शाम को आने वाले थे न ?" लक्ष्मी ने सम्हलते हुए पूछा। पाँडुरंग अन्दर आया तो उसने ज़मीन पर अंग्रेज़ी की एक पुस्तक पड़ी देखी। पुस्तक थी—'बीथोवन द क्रीएटर'।

पाँडुरंग ने पुस्तक उठा ली। उसे उलट-पुलटकर देखने लगा। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। सहसा जैसे उसे कुछ याद हो आया हो। उसने सोचा, पुस्तक······मोटर ·····आदमी······। उसे जैसे कोई भूली बात याद आई हो। उसने पुस्तक ज़ोर से लक्ष्मी के मुँह पर फेंककर मारी और फुर्ती के साथ उस इमली के वृक्ष की ओर दौड़ा। बस्ती के बाहर निकलकर पाँडुरंग ने देखा कि वही आदमी लम्बे-लम्बे डग भरता, सिगरेट फूँकता हुआ अपनी मोटर की ओर बढ़ा जा रहा है। पाँडु ने एक पत्थर उसे मारा। पत्थर उसके पास से सन्नाता हुआ निकल गया। उसने घूमकर देखा कि पाँडु उसी की ओर दौड़ा हुआ आ रहा है। उसे समझते देर न लगी, इसलिए वह भी तेज़ी से अपनी मोटर की ओर दौड़ा। पाँडु उसका पीछा तेज़ी से कर रहा था। बीच-बीच में रुककर पाँडु ज़मीन से पत्थर उठाता और उस आदमी को मारता। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश उसको अभी तक एक भी पत्थर नहीं लगा। पाँडु उसका पीछा करते-करते अपने-आप पर खीझ रहा था। पाँडु सोच रहा था कि वह जहाँ-जहाँ से भी दौड़ रहा है वहाँ ज़मीन आखिर क्यों नहीं भरी पड़ी है ? पत्थर उठाते समय पाँडु

का समय नष्ट होता, उतनी देर में वह आगे निकलता जाता था। दिशा-मैदान को निकलते समय न जाने पैरों में कितने पत्थर गड़ते। एक समय तो रात को दिशा-मैदान की ओर जाते हुए पत्थर से चोट खाकर पाँडु गिर भी पड़ा था। उसका पानी का डिब्बा एक ओर लुढ़क गया। उस समय उसे स्वयं को ही न जाने कितने छोटे-मोटे पत्थर गड़े ? और अब ? उसे पत्थर ढूँढने में अपना समय बरबाद करना पड़ रहा था। उसे लगता है कि डामर की काली सड़क की तरह सारी जमीन साफ है। पाँडु उस आदमी की माँ-बहन से रिश्ते जोड़ता चला जा रहा था। उसने जल्दी से मोटर स्टार्ट की और अपना रास्ता पकड़ा। पाँडु ने उसकी मोटर पर पत्थर बरसाये। मोटर की पिछली खिड़की का काँच टूट गया। मोटर में भी तीन-चार जगह बुरी तरह से पत्थर लगे। पर वह आदमी बचकर निकल गया।

पाँडु लौटा तो लक्ष्मी रो रही थी। लक्ष्मी को उसने पीटना शुरू किया। पाँडु पिटाई के साथ लक्ष्मी को गालियों से भी विभूषित करता जा रहा था। लक्ष्मी घुटनों में सिर रखे चुपचाप मार खा रही थी।

खुली पुस्तक के पन्ने उड़ रहे थे। पाँडु को प्रतीत हुआ कि ये उसकी जिन्दगी के ही पन्ने हैं जो खुलकर उड़ रहे हैं। पांडु ने पुस्तक उठाई। वह उसे फाड़ने लगा परन्तु न जाने क्या सोचकर उसने पुस्तक को अपनी संदूकची में रख ताला लगा दिया।

लक्ष्मी उस दिन भी हरी साड़ी ही पहने हुए थी। पाँडुरंग सोचता है कि एक दिन तिलनखेड़ी के चारों ओर डरावने एवं भयावह मैदान-ही-मैदान थे जहाँ कि गोकुलपेठ एवं धमरपेठ का कोई भी 'सभ्य आदमी' दिन में भी जाने से डरता था। तिलनखेड़ी बस्ती इन मैदानों-रेगिस्तानों में मरुद्यान की तरह थी। यदि शहर या स्टेशन से किसी ताँगेवाले को तिलनखेड़ी चलने के लिए कहा जाता तो वह शायद ही तैयार होता। बरसात में तो कोई भी ताँगेवाला जब तक कि वह पागल न हो इस ओर आने का साहस ही नहीं करता था।

और आज...

तिलनखेड़ी के आस-पास नागपुर की काया फैलती चली जा रही है। वृहत्तर नागपुर का निर्माण हो रहा है। लगता है कि एक समय छोटा-सा

दिखने वाला कछुआ अब बड़ा हो चुका है। और धीरे-धीरे वही विशालकाय कछुआ अब अपने पैर फैला रहा है। इस बस्ती के चारों ओर 'नगर' एवं 'एक्स्टेंशन एरिया' खड़े होते जा रहे हैं। गोकुलपेठ एवं धरमपेठ कहाँ परस्पर मिल गये हैं यह पता ही नहीं लगता। धरमपेठ एवं गोकुलपेठ किसी समय कौरवों एवं पाण्डवों की तरह अलग थे। परन्तु अब राम और भरत की तरह मिल चुके थे।

तिलनखेड़ी बस्ती इन नवनिर्मित क्षेत्रों से मिलकर भी नहीं मिल पाई थी, इसलिए कि गोकुलपेठ एवं धरमपेठ के मकान पक्के थे। तिलनखेड़ी बस्ती के कई नियम धरमपेठ एवं गोकुलपेठ में अपवादों के रूप में देखे जा सकते थे। तिलनखेड़ी के झोंपड़े अब भी इन धरमपेठ या गोकुलपेठ के पक्के मकानों से अपनी पृथकता बनाये हुए थे। तिलनखेड़ी व उसके आस-पास के क्षेत्र का अन्तर दो वर्गों का अन्तर था—गरीब या मध्यम वर्ग का अन्तर था। रवि नगर के बनते ही अमरावती रोड पर तिलनखेड़ी बस्ती के करीब, देश-विभाजन के पश्चात् दो-तीन सिंधी व्यापारियों ने दूकानें, होटल और आटे की चक्की लगा दी थी।

आटे की चक्की लगने से लक्ष्मी को विशेष रूप से प्रसन्नता हुई थी, क्योंकि अब उसे आटा पिसवाने के लिए धरमपेठ जाने की आवश्यकता नहीं थी। तिलनखेड़ी के आस-पास चलने वाले सभ्यता के रोलर ने धरमपेठ की कई आटे की चक्कियों की गर्मी कम कर दी थी।

६

केशो ने अपनी पत्नी से कहा, "मैं सौदा खरीदने इतवारी जा रहा हूँ, दोपहर को दूकान की देखभाल करना।"

"नौकर को बैठने को कहते तो ज्यादा अच्छा होता।"

"क्यों ?"

केशो की पत्नी पैर के अंगूठे से जमीन कुरेद रही थी।

"अब बोलोगी भी या······या नई-नवेली दुल्हन की तरह नखरे ही करती जाओगी।"

"……बस · मैं…दूकान पर नहीं बैठूँगी।"

"क्यों ?"

"तुम्हारे जाते ही वह कलमुँहा पहलवान आकर बैठ जाता है और जाने का नाम ही नहीं लेता।"

"तो क्या हुआ ?"

"मुझे नहीं अच्छा लगता।"

"कब से ?"

"मुझे तो कभी भी अच्छा नहीं लगा। मैं तो कितने दिनों से आपसे कहने के लिए सोच रही थी।" केशो को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि उसकी पत्नी में यह अप्रत्याशित परिवर्तन कैसा ? केशो ने कंधे बिचकाये। उस दिन तो केशो ने अपनी दूकान का भार नौकर पर डाल दिया किन्तु उसके बाद केशो ने अपनी पत्नी में एक परिवर्तन देखा—वह था बजरंग के प्रति उसके मन में ……। पहले यदि केशो, बजरंग को गाली देता, तो उसकी पत्नी केवल मौन भाव से सुनती। वह अपना विरोध कभी प्रकट नहीं करती।

आज बात ठीक इसके विरुद्ध थी। उसके बाद जब कभी भी केशो की पत्नी बजरंग को गाली देती, उसके प्रति अपना विद्रोह व्यक्त करती, तो अपना काम करते हुए भी केशो चुपचाप सुनता जाता। केवल वह अपनी पत्नी के भावों को उसके चेहरे से पढ़ने का प्रयास करता।

इस सबका यह मतलब कतई नहीं था कि केशो के मन से बजरंग हट गया था, बल्कि दरार दिन-प्रति-दिन चौड़ी होती जा रही थी।

संघर्ष के बादल

तिलनखेड़ी के उत्तर, दक्षिण एवं पूर्व में जितनी बेकार जमीन थी, वह तो कार्पोरेशन या इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने ले ली थी। कार्पोरेशन ने सार्वजनिक शौचालय बनवाये, परन्तु खुली हवा के घोड़े भला अस्तबल में रहना क्यों पसन्द करें ? सार्वजनिक शौचालय उसी तरह खड़े थे। बस्ती वालों ने पश्चिम की ओर खाली पड़ी जमीन तथा पहाड़ियों की ओर हटना प्रारम्भ किया। इधर-उधर कैसे जाते ? वहाँ तो कार्पोरेशन के चौकीदार डंडे लेकर खड़े रहते थे।

मारुति सुबह ही दिशा-मैदान के लिए सड़क की दूसरी ओर जा रहा था। उसने देखा कि पुलिया पर चार पठान बैठे हैं। वे एक आदमी को पकड़े हुए हैं। मारुति को पठानों की शक्ल से ही नफरत थी। मारुति ने भूखा मरना पसन्द किया, परन्तु आज तक पठानों से एक पैसा भी उधार नहीं लिया। पठान का पैसा मारुति के लिए रबर का पैसा था, जितना खींचो उतना ही लम्बा होता जाता था।

लौटते समय मारुति ने देखा कि वे पठान उस आदमी की पिटाई कर रहे हैं। मारुति तेजी से बस्ती में आया। रास्ते में उसे बजरंग पहलवान मिला। अन्य दो आदमियों को साथ लेकर मारुति पुलिया की ओर मुड़ा। मारुति और उसके साथियों के पास लाठियाँ थीं। बजरंग पहलवान मस्त चाल से सांड की तरह झूमता हुआ चला जा रहा था।

पठानों ने इस दल को आश्चर्य से देखा।

"मुहम्मद यूनुस······तुम ?"

"हाँ···पहलवान···मैं।···क्या करूँ ? कहता हूँ पैसा पटा दूँगा। लेकिन ये पठान मानते ही नहीं।"

मुहम्मद यूनुस किसी कारखाने में मिस्त्री था।

"एक साल से एक भी पैसा नही देना माँगता। उल्लू का बच्चा!" एक पठान ने कहा।

"पठान, जबान सम्हालकर बात करो। उल्लू का बच्चा बोलने की जरूरत नही है। कितने पैसे इस मिस्त्री पर हैं?"

"दो सौ रुपया।"

"कितने रुपये उधार लिये थे मुहम्मद यूनुस?"

"पच्चीस रुपए।"

"तो अब वे दो सौ हो गये?"

बजरंग ने पठानो की ओर मुड़कर कहा, "अगर मैं इसकी एक-एक पाई पटा दूँ तो चलेगा।"

"चलेगा···चलेगा···बरोबर चलेगा।"

"इसके बाद मैं बस्ती में तुम्हारी शक्ल नही देखना चाहता।"

"अम तो बस्ती में आताइ नई···यही पुलिया पर बैठता है। यहाँ तो अमारा हक है?"

"और इस हक की भी तुमको कीमत दे दूँ तो?"

"कितनी देगा?"

"कितनी लेगा?"

"पाँच सौ रुपये···।"

"बस! आओ पास आओ, देता है।" पठान बजरंग की ओर बढ़ा। बजरंग ने एक तमाचा कसकर पठान को मारा। इससे पहले कि वह पठान तैयार होता बजरंग का दूसरा प्रहार पड़ा। वह एक ओर लुढ़क गया। उसकी कुल्लेदार पगड़ी धूल चाटने लगी। चारो पठान इस परिस्थिति के लिए तैयार नही थे। उनका खून खौल उठा। "क्या बोला? मारता है··· अम भी पठान का बच्चा है।"

"अभी पता लग जायेगा कि पठान का बच्चा है या गधे का।"

मारुति व उसके साथी मैदान में उतर चुके थे। पठानों ने देखा कि उनका मुकाबला भी चार आदमियों से ही है, परन्तु काम आसान नहीं है। बजरंग पहलवान अकेला ही दो-दो को सम्हाल रहा था। पहलवान की कमीज फट गई थी, परन्तु उसने परवाह नही की पठानों की। पगड़ियाँ गिर गई थी।

एक पठान की वास्कट भी उतर गई थी। इधर मारुति तथा उसके साथियों ने दोनों पठानों को बुरी तरह से पीटना आरम्भ किया। मारुति तो वैसे ही तगड़ा आदमी था। कोई दस मिनट तक यह घमासान युद्ध चला। पठान पास के ही खेत में भाग खड़े हुए। किन्तु उनकी साइकिलें पुलिया के पास ही रखी हुई थीं। उन साइकिलों पर कुछ कम्बल, हींग तथा बादाम के डिब्बे थे, जिसे पठान बेचने लाये थे। पहलवान ने साइकिलें पंचर कर दीं, उनके टायर फाड़ डाले और कम्बल जला डाले।

अब तक बस्ती से काफी लोग आ चुके थे। बजरंग ने चिल्लाकर कहा, "ऐ, पठान के बच्चो, ले जाओ अपनी-अपनी साइकिलें, फिर कभी इधर शक्ल दिखाई दी तो चीरकर रख दूँगा। अभी तो सिर्फ मार-पीटकर ही छोड़ दिया है।" पठानों ने अपनी पंचर साइकिलें सम्हालीं और धीरे-धीरे गरदन लटकाये वहाँ से खिसक गये। पहलवान ने पठानों की पगड़ियाँ रख लीं। उसने कहा, "हरामजादो, तुम शायद मन में सोच रहे होगे कि पुलिस की जेब गरम कर उसे लेकर आओगे। अगर ऐसा किया तो तुम्हारा मालिक खुदा ही है। एक-एक की जान ले लूँगा। सारी साहूकारी बन्द कर दूँगा। खुलेआम लोगों को लूट क्यों नहीं लेते? रुपये पर दो आना ब्याज वह भी एक हफ्ते में।"

वैसे पठानों को मालूम था कि इस बस्ती में एक ऐसी वारदात पहले भी हो गई थी। पिटाई खाने पर एक पठान पुलिस को लेकर आया था, तो बाद को उसकी लाश तालाब में मिली थी। बजरंग को मालूम था कि बस्ती से और खासकर उसके अखाड़े से पुलिस का महीना बँधा हुआ है। इसलिए बजरंग के शिकार को कोई हाथ लगाने की हिम्मत नहीं कर सकता था। पठान चुपचाप चले गये।

बजरंग ने पगड़ियाँ उठाईं और झाड़-पोंछकर एक खुद पहन ली, दूसरी मारुति ने पहनी, बाकी मुहम्मद यूनुस तथा एक दूसरे व्यक्ति ने। बजरंग ने गरजकर कहा, "अबे यूनुस, इन पठानों को एक पाई भी दी तो तेरा खून चूस लूँगा। तेरा सारा कर्जा पट गया। अखाड़े को बस ग्यारह रुपए और एक नारियल की भेंट दे देना, समझा।"

वैसे तो यूनुस ने काफी मार खाई थी, पर उसकी आँखों में चमक आ

गई। बजरंग ने कहा, "तिलनखेड़ी बस्ती में अभी भी पानी है।" छोटा-सा जुलूस विजयमत्त से झूमता हुआ बस्ती की ओर चला आ रहा था। उस छोटे-से दल में पठानों की पगड़ियाँ पहने चारों मलंग दिख रहे थे। यूनुस के सिर पर पगड़ी इस प्रकार शोभा पा रही थी जैसे एक बाँस पर हाँडी रख दी गई हो।

२

रामू डायरी में लिखता है :

"मार-पीटकर अपनी गाड़ी बी० ए० तक पहुँची। वह भी बी० ए० में दूसरा साल है। अपने राम के लिए इसमें कोई नई बात नहीं है। यदि अपने सरीखे भी बी० ए० पास हो जायें तो एक दिन भारत का हर जवान बी० ए० हो जायेगा।

रेणु मेरे ही कॉलिज में आ गई है। अंग्रेजी साहित्य लेकर एम० ए० कर रही है। महिला कॉलिज में केवल बी० ए० तक ही पढ़ाई की व्यवस्था थी, इसलिए उसे एम० ए० के लिए मेरे कॉलिज मारिस कॉलेज में आना पड़ा। लड़कों को कहते सुनता हूँ कि इगलिश डिपार्टमेंट में तो कॉलिज की क्रीम रहती है। इस साल अंग्रेजी डिपार्टमेंट में सात लड़कियाँ हैं और एक लड़का। लड़कियाँ तो अगली बेंचों पर कब्जा कर लेती हैं, लड़का बेचारा दुबककर पीछे बैठता है। इंगलिश के बाद महत्त्वपूर्ण विषय अर्थशास्त्र का है जिसकी क्लास प्राइमरी क्लास की तरह लम्बी-चौड़ी होती है। हलुआ कहीं भरा है तो वह हिन्दी विभाग में। हिन्दी साहित्य के लगभग दो दर्जन कवि और लेखक तो इसी क्लास में भरे पड़े हैं। मराठी और संस्कृत की तो और भी बुरी हालत है।

"और रेणु···

"अब वह चार-पाँच साल पहले की रेणु नहीं है। अगले साल वह एम० ए० हो जायेगी।

"उसमें चंचलता कम हो गई है। एक तरह की गम्भीरता भी आ गई है। परन्तु फिर भी उसकी हँसी-मजाक करने की आदत गई नहीं। उसका

रूप मलाई की तरह निखर आया है। वह कॉलेज आती है तो उसे देखकर मुझे अपने-आप पर सन्देह होने लगता है कि मैं इस लड़की को जानता भी हूँ। क्या मैं ही इसका मास्टर हूँ ?

"उसके शृंगार में एक सादापन होता है। बड़ी-सी लाल बिन्दी उसके चौड़े मस्तक पर बहुत ही शोभा देती है। उसकी आँखों में एक तरह की शर्म और उदासी होती है। उसके गालों ने टमाटरों से उनकी थोड़ी-बहुत लाली छीन ली है। नागपुरी संतरे की नारंगी आभा का हल्का-हल्का रूप उसके व्यक्तित्व से झलकता है। बहुधा वह रेशमी साड़ी पहने होती है।

"दिन-प्रति-दिन वह मोहक और रहस्यमय-सी होती जा रही है। मुझसे वह एक अधिकार से पेश आती है। उसके सामने मुझे अपना व्यक्तित्व सदैव फीका-सा ही लगा है। गत वर्ष मुझे उसने दिवाली का ग्रीटिंग कार्ड भेजा था। दीपावली के शुभ अवसर पर कोई कहता है, 'नववर्ष मंगलमय हो !' 'दीपावली का हार्दिक अभिनन्दन,' 'दीपावली की शुभकामनाओं सहित' आदि-आदि। परन्तु रेणुजी के कार्ड पर अंग्रेजी में लिखा था :

'मेक हे ह्वाइल द सन शाइन्स।'

"अंग्रेजी की यह एक कहावत अवश्य है। एक बार नहीं बल्कि इसे लगभग दस बार पढ़ा। परन्तु समझ नहीं पाया कि रेणु ने आखिर दिवाली के मौके पर यह क्या लिख भेजा ? अब यह मैं स्पष्ट महसूस करने लगा हूँ कि उसे मैं संगीत के सिवाय कुछ नहीं सिखा सकता। बाकी बातों में तो मुझे ही उससे बहुत-कुछ सीखना है। लेकिन संगीत में भी सितार में तो वह दक्ष हो ही गई है। मैंने रास्ते की ओर इशारा किया था, खुद उस रास्ते पर चला तो नहीं था। चलने वाली तो रेणु है। कभी-कभी तो बातें करते समय लगातार मैं उसकी आँखों से आँखें नहीं मिला पाता।"

ताल कटोरा गार्डन्स पहुँचकर बस से उतरकर विद्यार्थी अपना-अपना सामान देखने में व्यस्त थे। करीब से ही किसी यूनिवर्सिटी के लड़कों का झुंड गुज़रा। एक ने पूछा, "कौनसी यूनिवर्सिटी ?"

"नागपुर……।"

"एम० पी० ···! ओह एबोरिजनल्स् (आदिवासी)!"

कहकर, ठठाकर हँसता हुआ वह समूह आगे निकल गया।

बस के सब लड़के-लड़कियाँ तो एक बार उस झुंड को देखने लगे। मिस रुस्तमजी ने जैसे फुफकार मारी हो। मुँह बिचकाने से मिस रुस्तम जी की पोनी टेल। हवा में लहराई। सिर्फ दो-चार बाल मुँह पर भी आये। मुँह से बालों को हटाते हुए मिस रुस्तमजी ने फरमाया, "हम तो खैर आदिवासी हैं पर ये लोग न जाने कहाँ के वासी हैं? बात तो ऐसे कर रहे हैं कि रोम और पैरिसवालों की औलाद जैसे भटककर इधर आनिकली हो···।'

मिस रुस्तमजी की बात पर लोबो ने सान चढ़ाते हुए कहा, "खैर नागपुरी मतरों से इनका पाला नहीं पड़ा है। अभी इन्हें आटे-दाल का भाव पता चल जायेगा।"

नई दिल्ली में होने वाले प्रथम अंतर विश्वविद्यालय युवक महोत्सव में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में रेणु और मैं भी चले आये थे। रेणु लोक-नृत्य में भाग ले रही थी। मैं भी बाँसुरी-वादन में ज़ोर-आज़माई करने चला आया था।

पूरे उत्सव या महोत्सव को फटी-फटी आँखों से देखता हूँ। सोचता हूँ कि या तो यह कोई 'महान् सांस्कृतिक आयोजन' है या फिर अपनी बुद्धि इस सबको ठीक-ठीक नहीं समझ रही। सुनता हूँ कि इस महान् आयोजन के माध्यम से देश के कोने-कोने से युवक-युवतियाँ एकत्रित होकर परस्पर भावात्मक एकता का विकास कर सकेंगे। उन्हें परस्पर विचारों के आदान-प्रदान का सुअवसर प्राप्त होगा। भारतीय विश्वविद्यालयों में पारस्परिक संसर्ग की भावना का विकास होगा तो ऐसा था देश का अपूर्व सांस्कृतिक आयोजन! वैसे अधिकारियों द्वारा इस युवकोत्सव में प्रचारित उद्देश्यों की एक फेहरिस्त तैयार की जा सकती है। फिलहाल तो मैं यही देखता हूँ कि मैं भी इस उत्सव में आया हूँ।

इसमें युवक-युवतियों का मुक्त सम्मिलन हो रहा है। प्रतीत होता है जैसे वे अवसर की ताक में ही थे। बाकी तो सब-कुछ तैयार था। रहा-सहा अवसर भी मिल गया। खाने-पीने और रहने का आला इंतज़ाम है। बस फि-

क्या है ? खूब मिलिये और हर तरह से मिलिये।

जल्दी भोजन कर रात को हम लोग पहाड़ी पर स्थित तम्बू में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तुत नाटक देखने पहुँच गये। स्थान तो सुरक्षित ही थे। मैं बैठ तो गया परन्तु यह सब-कुछ देखकर मुझे लगा कि नाम बड़े और दर्शन थोड़े। सारा काम जैसे खींच-तानकर किया गया हो। मंच भी औसत दर्जे का ही था। पण्डाल में भी केवल बड़े-बड़े पदाधिकारी एवं उनके 'परिवार वाले' ही भरे पड़े थे।

शाम को ही मुख्य द्वार से स्थानीय विद्यार्थियों ने अन्दर आने का प्रयास किया था, परन्तु पुलिस के देवताओं ने उन्हें संगीनों की नोकों से पीछे ठेल दिया था। उनसे स्पष्ट शब्दों में कह दिया गया था कि पंडाल में जगह नहीं है। सब विद्यार्थियों को जगह दी भी जाये तो आखिर कहां से? अब देखने पर पता लगा कि 'जगह नहीं है' का क्या रहस्य है। विद्यार्थियों के उत्सव में ही विद्यार्थियों के लिए जगह नहीं।

मेरे करीब बैठे हुए एक लड़के ने कहा, "विद्यार्थियों के उत्सव में भला इन सरकारी महापुरुषों की क्या आवश्यकता थी ? अंतिम दिन आ जाते। उस समय केवल सिलेक्टेड आइटम ही देखते।"

दूसरे विद्यार्थी ने कुर्सी पर पालथी मारकर बैठते हुए कहा, "भाई ज़माना सत्ताधीशों का होता है। वह सत्ता चाहे फिर किसी को भी क्यों न हो। अंग्रेज बहादुर सात समन्दर पार चले गये, राजा-महाराजा मिट गये, अब नये बादशाहों का ज़माना है। हमारे शासनकर्त्ता इन्हीं अफसरों के बल पर जी रहे हैं। अफसर और अवसर में घी-खिचड़ी का मेल होता है। वह अफसर नहीं मोम का पुतला है जो अवसर से लाभ न उठाये। आज भी अवसर मिला तो ये अफसर घुस आये। देश में डिमोक्रेसी नहीं ब्यूरोक्रेसी है। इसी कारण इस पंडाल पर भी आज ब्यूरोक्रेट्स ने मेहरबानी की है। यह तो विद्यार्थियों की मूर्खता है कि वे इस सड़ी-सी बात को नहीं समझते।"

सामने की लाइन से एक प्रोफेसरनुमा व्यक्ति ने अपनी गरदन पीछे घुमाई। उसने कहा, "पुतरो, क्यों फिज़ूल धमचख मचा रहे हो ? हर युग

का एक रहस्य होता है। इस युग का यही रहस्य है।"

"वाह, बहुत सुन्दर···बहुत सुन्दर · अति सुन्दर ··युग का रहस्य··· क्या कहने···क्या आइडिया है ? अब भाई इस युग के रहस्य का रहस्य भी समझा दीजिए।" पीछे से कहीं से बारीक-सी किन्तु तेज आवाज आई। आस-पास के लोग हँस पड़े।

कुर्सी पर टाँगें रखे हुए एक विद्यार्थी ने गला फाड़कर कहा, "बेटा, युग का नहीं, यह आज की शिक्षा-प्रणाली का रहस्य है। शिक्षा-प्रणाली का मतलब है—शिक्षा-प्रणाली में से विद्यार्थियों तथा उनके प्रोफेसरों को घटाकर जो बचे, वह। आज के विद्यार्थी उद्दंड, अनुशासनहीन और आवारा हैं, उनके प्रोफेसरों का भी स्तर गिरता जा रहा है। इस सबका इलाज करने विश्वविद्यालय के कुलपति, उपकुलपति, सीनेट सदस्य, गणमान्य शिक्षाशास्त्री, प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारों के शिक्षा विभाग व्यस्त हैं।"

"सच कहते हो भाई, विद्यार्थियों की कीमत तो केवल आजादी तक थी, जबकि मौके-बे-मौके कांग्रेस ने देश-भर के विद्यार्थियों को बकरा या मुर्गा बनाया। अब तो इस विषय पर विवाद होते हैं कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं।"

"और बेटा, बुजुर्गों की राय है कि राजनीति में केवल राजनीतिज्ञों को ही सक्रिय भाग लेना चाहिये। विद्यार्थियों का काम तो केवल राजनीति विषय पढ़ना मात्र है। ज्यादा-से-ज्यादा उन्हें राजनीतिक समाचारों की जानकारी रखनी चाहिये।"

"कुर्सी पर लातें रखकर बैठने का यह कौन-सा तरीका है ?" पास ही बैठे एक विद्यार्थी ने कुर्सी पर पालथी मारे बैठे हुए विद्यार्थी से पूछा।

"वत्स, यह भारतीय एवं वेस्टर्न कल्चर का सुन्दर एवं अद्वितीय समन्वय है। कुर्सी पर बैठना वेस्टर्न कल्चर की देन है और पालथी मारकर बैठना भारतीय संस्कृति की। दोनों संस्कृतियों का इतना सुन्दर संगम व समन्वय तुम्हें भला कहाँ दिखेगा ?"

आसपास के लोग हँस पड़े। रेणु बोर होने लगी थी। उसने मुझे इस चर्चा में न भाग लेकर सामने देखने के लिए कहा। मेरा ध्यान मंच की ओर गया, किन्तु मंच पर तो दक्षिणी भाषा का कोई नाटक खेला जा रहा

था, जिसे दर्शक समझने में असमर्थ थे, इसलिए हल्ला मचाकर या व्यर्थ ही तालियां पीटकर वे अपनी भावात्मक एकता का परिचय दे रहे थे। मैंने रेणु से कहा, "मंच पर भी जो हो रहा है, अपने लिए तो वह काला अक्षर भैंस बराबर ही है।"

"चुपचाप देखो तो! देखने से आंखें तो नहीं फूट जाएंगी आखिर।"

पंडाल के पास ही एक खंडहर-सी पुरानी दीवार थी, उस पर बैठकर कार्यक्रम के बाद मैंने अपनी बांसुरी बजाई। दूर तक योगियों की तरह समाधिस्थ तम्बुओं के ऊपर रात्रि की कालिमा को चीरकर मेरी वंशी के स्वर गूंज उठे।

३

रात्रि के साढ़े ग्यारह बज रहे थे। सेठ झंडुलाल ने कमरे का भारी-सा दरवाजा खोला। कुछ ठंडी हवा अन्दर आई। सेठजी ने आसमान की ओर देखा। आसमान तो वही था जो कि उन्होंने पच्चीस-तीस साल पहले देखा था।

उफ़! इस अर्से में कितना अंतर?

पहले आसमान अधिक उजला प्रतीत होता था। लगता था कि आसमान पर तारे भी अधिक हैं। परन्तु आज बिना चांद का आसमान विधवा-सा लग रहा था। और लोग कहते हैं कि आसमान पहले से अधिक उजला हो गया है।

बस लोगों की यही बात झंडुलाल की समझ में नहीं आती। लोग कहते हैं कि आसमान पर पहले से अधिक तारे खिल आये हैं।

सेठजी सोचते हैं कि लोगों को गोली मार दूं या अपनी ही आंखें फोड़ लूं। एक जमुहाई लेकर सेठजी कमरे में वापस आये। वे एक बड़ी-सी कुर्सी पर बैठ गये। उनके सामने दो लोग गंभीर मुद्रा में बैठे थे। उन लोगों के चेहरे लटके हुए थे। उनमें से एक टेबल को लगातार घूरे जा रहा था तथा पेपरवेट से ही उलझा हुआ था। जमाना बदल रहा है, या नया आ रहा है, या तरक्की कर रहा है, परन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि जमाने का

भारी पहिया सेठजी के खिलाफ ही घूम रहा था। कभी-कभी तो उन्हें इस पहिये से दब जाने का भय भी उत्पन्न हो जाता है।

कोई भी छत खमों पर ही टिकी होती है। सेठजी की महिमा की जो छत थी उसके भी चार-स्तम्भ थे। उनका पता सेठजी के सिवाय किसीको नहीं था। सेठजी ने आज तक जितनी भी खुराफातें की थी उनमें इन चारों का भारी हाथ था। सेठजी के रिक्शेवालों ने कितनी ही बार हड़ताल की थी और अपने बूते पर इन चारों ने उस हड़ताल को बार-बार तोड़ दिया। रिक्शेवालों के लीडरों को लालच देकर या मार-पीटकर अपने अधिकार में कर लेते थे। सेठजी बाई-इलेक्शन भी इन्हीं चारों के बल पर ही जीते थे।

परन्तु आकाश का उजाला कम हो रहा है, क्योंकि उन 'चारों' में से एक तो खून के जुर्म में आजन्म कैद भोग रहा है। उसके परिवार का पालन-पोषण सेठजी कर रहे हैं। रह गए तीन। उनका दादा⋯गत पच्चीस वर्षों से सेठजी की सहायता कर रहा था। एक बार उसे सेठजी ने कहीं 'मिशन' पर भेजा। सेठजी ने अपने किसी साथी को सहायता दी थी, उसी प्रकार जैसे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सैनिक सहायता देता है। परन्तु दुर्भाग्यवश इतना पक्का खिलाड़ी भी उस दिन खेत रहा। उसकी मौत का समाचार पाकर सेठजी के पैरों से धरती खिसक गई थी। उन्हें ऐसा लगा मानो उनके बाप की ही मौत हो गई है।

रह गये दो⋯।

उनके भी दिल टूट गए। "तो क्या मुझे अपना सारा कारोबार बन्द करना होगा?" उत्तर मिलता है—"नहीं⋯नहीं⋯"

"बड़े शर्म की बात है कि आज तुम लौटकर मुझे अपना मुंह इस प्रकार बता रहे हो। तुम उस आदमी के समान हो जो डरपोक है⋯जो लड़ाई का मैदान छोड़कर भाग आया है। क्या मैंने तुम्हें पैसे नहीं दिये? ⋯क्या तुम्हारी मनचाही मदद नहीं की? फिर किस बात की कमी है? क्या तुम एक सड़ी-सी हड़ताल भी नहीं तोड़ सकते?"

"मालिक, आज तो केवल आपके सौ ही रिक्शे हैं। इन हाथों ने वह भी ज़माना देखा है जब आपके पाँच-पाँचसौ रिक्शे चलते थे। उस समय

पाँचसौ रिक्शेवालों को तोड़ना जितना आसान था आज सौ रिक्शेवालों से निपटना उतना ही कठिन है। ज़माना बदल गया है···।"

बात काटकर, मेज पर मुक्का मारते हुए सेठजी ने गरजकर कहा, "ज़माना बदल गया है···ज़माने की ऐसी तैसी···जिससे सुनो···साला यही सुनाता है कि ज़माना बदल गया है। यह क्यों नहीं कहते कि तुम कम-ज़ोर हो गये हो। मैं तुमको पहले से हर काम के लिए ज्यादा पैसे देता हूँ परन्तु तुमने सिर्फ बातें बनाना सीख लिया है।·· आज दादा होते तो क्या मुझे यह जवाब मिलता?"

"मालिक, यदि आज दादा जीवित होते तो आपको यही उत्तर प्राप्त होता। ज़माना इतना मज़बूत हो गया है कि उसने दादा को मार डाला। रिक्शेवालों में भला कितनी ही फूट क्यों न हो परन्तु वे अपने स्वार्थों को अच्छी तरह से पहचानने लगे हैं। सामूहिक संगठन की ताकत व आवश्यकता को वे समझते हैं उनमें पहले से ज्यादा अक्ल आ गई है। दस-बीस को यदि हमने तोड़ भी लिया तो भला उससे क्या फर्क पड़ता है? उन दस-बीस लोगों को आपका नहीं बल्कि अपने साथियों का ही भय है। हमने बहुत कोशिश की परन्तु क्या करें? आपके सामने अपनी मजबूरी को स्वीकार करते हुए हमें शर्म आती है। हम जो कुछ भी करते हैं, उन पर पार्टियों के लीडर आकर पानी फेर जाते हैं। उन्हें भड़का देते है।" शांत किन्तु विश्वास-भरे शब्दों में सेठजी ने सुना।

"कौन-सी पार्टियों के लीडर?"

"जो भी कांग्रेस में नहीं हैं।"

"ज़माना ही लीडरों का है। हर ऐरा-गैरा लीडर बना बैठा है। जेब में चार पैसे नहीं होते और लीडरी करते फिरते हैं। जिनको कांग्रेस में जगह नहीं मिलती उनके पेट में आग लगती है, दिल में दर्द होता है। मेंढकों की तरह उचकते फिरते हैं। पता लगा कि कहीं हड़ताल या सत्याग्रह है तो खुदाई खिदमतगार बिना बुलाए वहाँ पहुँच जाते हैं।···खैर उससे क्या? ···और पैसे ले जाओ।"

"दुनिया में पैसे ही से सब-कुछ नहीं होता।"

"अब यह बात भी मुझे सीखनी होगी, वह भी तुमसे। आज तक हर

काम मैंने पैसे के जरिये किया है। आज तुम मुझे नया ज्ञान दे रहे हो।"

"मालिक, हम क्या खाकर आपको नया ज्ञान देंगे, फिर भी हमारा काम आपको हकीकत से वाकिफ कराना तो है ही।"

"सच को झूठ बना दो।"

"आप रास्ता बताइए। हम तो चोरी, डाका, मार-पीट, खून···सब-कुछ करने को तैयार हैं। परन्तु इन सबसे अब कामयाबी हासिल नहीं होगी।"

सेठ झण्डुलाल सोच-विचार में पड़ गये।

"मालिक, सही बात तो यह है कि रिक्शे के धन्धे में अब कुछ नहीं रह गया है। इसे खत्म कर देना ही ठीक होगा। कभी आपके पाँच सौ रिक्शे चलते थे, आज केवल सौ ही है। आमदनी कम और किट-किट ज्यादा।"

अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में समाचार प्रकाशित किया—'समाजवाद की ओर एक भारी कदम···। देश की उन्नति के इतिहास में एक नया कदम।'

बात दरअसल यह थी कि सेठ झण्डुलाल ने यह घोषित करवा दिया था कि सारे रिक्शे उनके चलाने वालों को एक दिन मुफ्त दे दिये जायेंगे। 'नागपुर रिक्शा सहकारी संघ' के माध्यम से कुल सौ रिक्शे थे और वे रिक्शेवालों में बाँट दिये जाने वाले थे। सेठजी ने एक भारी उत्सव किया। सहकारी रिक्शा संघ का उद्घाटन हुआ। नगर के प्रतिष्ठित नागरिक तथा प्रमुख अफसर इस आयोजन में उपस्थित थे। वन्देमातरम् गीत के साथ उत्सव प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् बड़े-बड़े व्याख्यान हुए। सेठजी की तारीफ के पुल बाँधे गये। बाद में सेठजी खड़े हुए। उन्होंने कहा, "भाइयो, बड़े-बड़े लोगों ने मेरे विषय में जो कुछ भी कहा, वह सब आप लोगों ने सुना, किंतु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तो केवल जनता का एक विनम्र सेवक हूँ, इससे अधिक कुछ नहीं। मैं कोई ऐसा बढ़ा-चढ़ा मनुष्य नहीं हूँ। यह तो आपकी महानता है कि मुझ जैसे तुच्छ आदमी को आप लोग सेवा का अवसर दे रहे हैं। हमारा देश समाजवाद की ओर बढ़ रहा है। हमारे

नेताओं का सुनहरा स्वप्न है कि हम समाजवाद की मंज़िल तक अहिंसात्मक तरीके से पहुँच सकेंगे। उस दिन के लिए हमें धैर्यपूर्वक ठहरना होगा, परन्तु तैयारी आज से ही शुरू करनी होगी। देश की प्रगति में जो भी योगदान होगा मैं दूँगा। रिक्शेवाले भाइयों ने हड़ताल की। मैंने कहा, भाइयो देश के रचनात्मक विकास में हड़ताल, सत्याग्रह आदि बुरी चीज़ें हैं। रिक्शेवाले भाइयों ने जिन माँगों को पेश किया मैंने उससे भी बड़ा क़दम उठाया। मैं इन रिक्शों पर से अपना हक़ छोड़ता हूँ। आज से रिक्शेवाले मालिक हुए। समाजवादी रचनातन्त्र में श्रमिक ही मालिक होता है। इसीलिए आज से रिक्शों के मालिक उनके चलाने वाले हुए। यदि रूस और चीन में पूँजीपतियों द्वारा इस वृत्ति से काम लिया गया होता तो वहाँ साम्यवाद आता ही नहीं और न ही संसार को साम्यवाद से खतरा ही पैदा होता। मैं तो एक अदना-सा प्राणी हूँ। समाजवाद की महान् क्रांति में मेरा तो यह एक छोटा-सा कदम है।"

तालियों की गड़गड़ाहट में सेठजी मंच पर बैठ गये। जनरल नाथूलाल ने भी भीड़ के एक कोने से यह लैक्चर सुना। वह भी सेठजी का रौब मान गया। जिस विश्वास एवं श्रद्धा के साथ सेठजी बोले उससे नाथूलाल अप्रभावित नहीं रह सका। नाथूलाल ने कहा—"यह आदमी एक मंजा खिलाड़ी है। बात में भले ही तुक न हो पर बेतुकी बात भी सेठजी की ज़ुबान पर आकर लोगों के दिलों में बैठ जाती है। कहाँ रिक्शे? कहाँ समाजवाद? सबकी टाँग तोड़-ताड़कर सेठजी ने अपना रौब ग़ालिब कर ही लिया, यहाँ तक कि नाथूलाल तक को इस नाटक का रहस्य समझ में नहीं आया। नाथूलाल ने सेठजी के मेट को पकड़ा। मेट को मालूम था कि इस समाजवादी रचनात्मक क्रांति के बाद उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। इसलिए वह वैसे ही खीझा हुआ बैठा था। नाथूलाल ने कहा—"मेट, सुना है कि तुम्हारे सेठ महान् रचनात्मक क्रांति की ओर कदम उठा रहे हैं। श्रमिक मालिक बनने वाले हैं, रिक्शे मुफ़्त बँटने वाले हैं। दान के इस युग में यह नया दान—रिक्शादान सेठजी कर रहे हैं।"

सेठ ने कहा—"जनरल, तेरा भी जवाब नहीं। तुझे बस खबर मिलनी चाहिए।"

"भाई मेट, अपने राम कोई मेट तो हैं नहीं। तुम लोगों के ही बीच का एक गरीब मनुष्य हूँ। खटमल खून का दान करे—बात जरा नई लगी, इसलिए पूछ बैठा।"

"खटमल इतना बुद्ध नहीं है। सेठजी के पास किसी समय पाँच सौ रिक्शे थे, आज केवल सौ ही रह गये थे। नागपुर में रिक्शों की संख्या मक्खियों की तरह बढ़ रही है। इस धन्धे में अब कुछ दम नहीं रह गया। सेठजी के लिए ये सौ रिक्शे सौ मुसीबतों की तरह थे। आजकल तो हड़तालों का जमाना है। पिछले दो वर्षों में ही रिक्शेवालों ने दो बार हड़ताल की थी। इस बार भी रिक्शेवाले हड़ताल पर ही थे। सौ रिक्शों में भला क्या आमदनी ? सेठजी अब लखपती आदमी हैं। दूसरे अभी पासिंग का टाइम है। पासिंग के लिए हर रिक्शे पर कम से कम सौ रुपया खर्चना तो आवश्यक है। इसके बिना कार्पोरेशन से एक भी रिक्शा पास होने की उम्मीद नहीं है। सेठजी ने इन्हीं रिक्शों से दस गुना कमा लिया है। रिक्शे दिये भी किसको ? अपने आदमियों को, न कि हड़ताल करने वालों को। रिक्शादान देकर तो सेठजी ने हड़तालियों को भविष्य में हड़ताल करने की चिन्ता एवं तकलीफ ही से मुक्त कर दिया। नाम कमाया सो अलग। यदि वे ऐसे समाजवादी हैं तो अपने मिलें मजदूरों को क्यों नहीं दे देते ? या स्वयं ही रिक्शा चलाना क्यों नहीं शुरू कर देते ? माधूलाल ! बड़े लोगों की बड़ी बातें होती हैं। हाथी मरता भी है तो सवा लाख रुपये का होता है। सेठजी की मौत पर भी जो इन्हें इज्जत मिलेगी वह तुम्हें जीते-जी नहीं मिलेगी। क्या हुआ जो तुम एम० एल० ए० हो गये तो ? क्या अन्धे के हाथ कभी बटेर नहीं लगती ?······बोलो है कुछ कहना ?"

जनरल माधूलाल ने दोनों हाथ जोड़कर कहा "माई-बाप·· कुछ नहीं कहना। बस यही सुनने आया था, बुरा मत मानना।"

४

रेणु को रात काफी अच्छी नींद आई थी। वह सुबह सोकर उठी तो आठ बज चुके थे। देखा तो तम्बू की सब लड़कियाँ चाय पीने जा चुकी

थीं। वह झटपट उठी और तैयार होकर अकेली ही चाय पीने चल पड़ी। सारी कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। नाश्ता कर सब जा चुके थे। रेणु को संकोच भी हुआ और अपने-आप पर गुस्सा भी आया। घड़ी पौने नौ बजा रही थी। वह चाय पीकर सड़क की दूसरी ओर लॉन पर लोकनृत्यों का प्रोग्राम देखने बढ़ गई। सुबह की हल्की-हल्की धूप बहुत ही सुहावनी लग रही थी। मौसम काफ़ी सुहावना था। सुबह की हवा में सिर के उड़ते हुए बालों को रेणु ने ठीक किया।

सामने ही लोकनृत्य हो रहे थे। आज नागपुर के अतिरिक्त अन्य विश्वविद्यालयों की पारी थी। रेणु को लोकनृत्य में दूसरे दिन भाग लेना था। इसलिए आज वह बेफिक्र-सी दर्शकों में खड़ी हो गई। सहसा उसे रामू का खयाल हो आया। रेणु को स्वयं इस बात का आश्चर्य हुआ कि रामू का खयाल उसे अब तक क्यों नहीं आया। और एक रामू है कि जिसने अभी तक आकर उसे पूछा तक नहीं। वह अपनी बगलों में हाथ दिये दर्शकों में रामू को ढूंढने लगी। रामू का पता···तक नहीं···।

वह आँखों को किंचित् सिकोड़कर सोचने लगी कि आखिर मास्टर बाबू गये कहाँ ? उसने सोचा कि रामू शायद सो रहा होगा, वह रामू के डेरे पर गई, किन्तु तम्बू के दरवाज़े का कपड़ा हवा के साथ झूलकर रामू की अनुपस्थिति का संदेश दे रहा था। दरवाज़े का कपड़ा हटाकर देखा तो अन्दर भी कोई नहीं था। वह वापस आई और चिबुक पर हाथ रखे सोचने लगी कि भलामानस आखिर जायेगा कहाँ ?

देखा······तो······

सामने, कुछ दूर पर लड़के-लड़कियों के एक समूह में रामू बातें करता हुआ दिखाई पड़ा। रामू को देखकर रेणु कुछ रुकी। उसने सोचा कि आखिर देखें मास्टर बाबू कितनी देर तक इस तरह उलझे रहते हैं। कुछ ही समय में लोकनृत्यों के प्रारम्भ होते ही उस समूह से अन्य विद्यार्थी प्रोग्राम देखने चले आये। केवल रामू तीन लड़कियों सहित रह गया। रामू इन लड़कियों से बातें करने में बिल्कुल तन्मय हो गया था। रेणु के माथे पर हल्के-से बल पड़े। एक बार उसने घूरकर रामू की ओर देखा।

और सहसा सामने किसी विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत आदिवासियों का

लोकनृत्य देखने में व्यस्त हो गई। लोकनृत्य देखते हुए भी रेणु रामू की ओर मुड-मुडकर देख लेती थी। वह अपने मन को बार-बार समझा रही थी कि यदि रामू को उसकी चिंता नहीं है तो उसे भी रामू की चिंता नहीं, परन्तु इस तर्क के बावजूद उसका मन रामू में ही अटका था।

उस लोकनृत्य को लोकनृत्य कहने की अपेक्षा तीन जनों का नृत्य कहना ही अधिक सार्थक होगा। यदि किसी से कहा नहीं जाता कि नर्तक विद्यार्थी ही हैं तो कोई उनके आदिवासी होने पर संदेह नहीं कर सकता था। नृत्य में भाग लेने वाले थे – एक स्त्री, दो पुरुष! आदिवासी पुरुषों का नृत्य करने वाले दोनों ही विद्यार्थी साँवले रंग और बलिष्ठ शरीर के थे। दोनों के हाथों में भाले थे। वे परस्पर एक-दूसरे को निशाना बनाकर मारने का प्रयास कर रहे थे। नृत्य का विषय कुछ ऐसा था कि वे दोनों पुरुष उस स्त्री से विवाह के इच्छुक थे। दोनों परस्पर शस्त्र-युद्ध कर रहे थे। दोनों पुरुषों में से केवल एक की मृत्यु से ही यह त्रिभुजमूलक समस्या हल हो सकती थी।

दोनों प्रतिस्पर्धी पूरे जोश से एक-दूसरे पर हमला करते और वह स्त्री नृत्य करती हुई दोनों के बीच से निकल जाती। उस स्त्री के जाते ही एक पात्र भाले से पूरे जोश के साथ दूसरे पर वार करता। दूसरा उसे विफल कर पैंतरा बदलकर आक्रमण करता। दोनों पात्रों के खुले बदन पर पसीने की बूँदें मोती के दानों की तरह छलक रही थीं। नृत्य में पुरुषत्व था। दोनों पात्रों के चेहरों के भाव भी देखते ही बनते थे। क्रोध से चमकती हुई उनकी आँखें! उस स्त्री की आँखों में दोनों के प्रति एक प्रकार की निर्ममता का भाव था। स्त्री की मुस्कान एक खलनायक की मुस्कान थी। अपनी मोहक छवि से वह दोनों प्रतिद्वंद्वियों को पागल कर रही थी।

नृत्य काफी सुन्दर बन पड़ा था। रेणु नृत्य देखने में जो तल्लीन हुई तो उसे रामू का खयाल ही न रहा। नृत्य समाप्त होने पर जैसे वह नींद से जागी हो। उसने मुड़कर देखा कि तीन की जगह एक ही लड़की रह गई है और रामूजी बड़े मजे से उससे उलझे हुए हैं। रामू को इस ओर देखने की अब तक फुरसत ही नहीं मिली थी। जिस प्रकार अपना शिकार जाता हुआ देखकर चील झपटती है, उसी प्रकार रामू की ओर रेणु झपटी। उसके

साहस का बाँध टूट गया था।

रामू ने कहा—"आइये···आइये···मिलिये आपसे···रेखा रामा-नाथन्···आप मैसूर से आ रही हैं······और आप हैं······रेणु चटर्जी···नागपुर से।"

रेणु के चेहरे पर एक भेद-भरी मुस्कान थी। रेणु ने भौंहों को ऊपर कर रामू को कुछ विचित्र ढंग से देखा। "मैं तो इन प्रोग्रामों से बोर हो गई हूँ। कोई भी चीज़ कितनी ही अच्छी क्यों न हो···किन्तु जब लगातार देखी जाती है······तो उसका चार्म चला जाता है।" मैसूर की लड़की ने कहा।

"······और चार्म ढूंढने के लिए नई वस्तुओं की ओर मुड़ना पड़ता है।" रेणु ने कहा।

प्रोग्राम प्रायः समाप्त ही हो रहा था। दर्शकों में तीनों मिल गये। बाद को रामू और रेणु बाहर आये। "लगता है कि मैंने काफ़ी अच्छे नृत्य मिस किये हैं।"

"आपकी बला से···आख़िर कुछ पाया भी तो।"

"क्या पाया?"

"यह तो आपको मालूम है। गप्पें मारने में तो आप ऐसे मशगूल थे कि······"

"सुबह मैं चायपान आदि से निवृत्त हो जैसे ही बाहर निकला···वैसे ही ये लोग साथ हो लिये।···बस जनरल टॉपिक्स पर बातें चल निकलीं।"

"आप तो उन लोगों में इस शान से खड़े थे जैसे कोई कलगीदार मुर्गा चूज़ों के बीच सिर उठाए गर्व से खड़ा होता है।"

"आ गईं तुम अपनी मजाक पर।"

"मजाक क्या? मैं सही बात कह रही हूँ। आपकी तारीफ़ कर रही हूँ।"

"ख़ैर, इतनी समझ तो मुझे भी है···परन्तु यह तो बताओ कि तुम रह कहाँ गई थीं?"

"मैं तो वहीं थी जहाँ सब थे। मैं सबसे अलग जाकर गप्पें मारने में थोड़े ही व्यस्त थी।"

"वैसे ही बात चल निकली···मेरे वंशी-वादन की उन्होंने तारीफों के पुल ही बांध दिये।"

"कितने पुल बांधे ? चलो अच्छा हुआ तांगे-रिक्शे अब उन पुलों से सुरक्षित रूप से पार जा सकेंगे।"

"क्या बात है ?···आज तुम मूड में दिखती हो।"

"मैं कि आप ?"

"मेरा भी भला कोई मूड रहता है।"

"उतना तो खैर मुझे पता है। रोने की आवश्यकता नहीं। यह आज की नहीं हर वक्त की बात है। मेरा सत्संग करते ही आपके मूड की हवा निकल जाती है।"

"देखो रेणु, अपने आपको तारीफ सुनने की हर किसी की कमजोरी होती है। वे लोग मेरी वंशी की काफी तारीफ कर रहे थे। इसलिए रास्ता भूलकर उस ओर निकल गया।···तुम्हारा ध्यान न रहा।"

"खैर यह तो प्राकृतिक सत्य रहा, पूरी बात ही कह दीजिये। मैंने तो आपसे कभी अनुरोध नहीं किया कि आप मेरा ध्यान रखा करें। आप इन सात दिनों में तो कम-से-कम मेरे मास्टर नहीं हैं।"

"मैं हमेशा के लिए ही तुम्हारा मास्टर रहना नहीं चाहता हूँ।"

"फिर क्या रहना चाहते हो ?"

रामू को समझ नहीं आया कि उसे क्या उत्तर दे ? उसे इस सीधे-से सवाल का सीधा-सा उत्तर नहीं मिला। फिर भी रामू ने सम्भलकर कहा, "मेरा मतलब है कि तुमने अब काफी कुछ सीख लिया। अब मुझे तुम्हारी छोटी बहन का मास्टर बन जाना चाहिये·· उसे सिखाना चाहिये।" रेणु ने उत्तर सुना तो वह मुँह ज़रा-सा टेढ़ा कर मुस्करा उठी। रामू ने असफल ढंग से रेणु के भावों को पढ़ने का प्रयास किया। रेणु ने कहा—"मैंने तो आपका पहले ही पता लगा लिया होता, परन्तु आपको व्यस्त देख मुझे कुछ हिचक हुई। मैंने सोचा कि आपकी प्राइवेसी में बाधा उपस्थित करना ठीक नहीं। परन्तु बाद को बेशर्म की तरह चली ही आई। बोलो कोई हर्ज तो नहीं······"

"रेणु, ज़रा कम बोला करो !"

"यह तो मुश्किल है, हाँ आप एक काम कर सकते हैं······एक साइ-लेंसर मेरे मुँह पर लगा दीजिये !"

५

सेठ झंडुलाल गहरी चिंता में डूबे हुए थे। केशो ने आकर ध्यान भंग किया—"आप किस चिंता में पड़े हुए हैं ?'

"मैं सोच रहा था कि अंग्रेज़ों के दिल पर भी क्या गुज़री होगी जब उन्होंने विवशतावश सारा हिन्दोस्ताँ कांग्रेस को पकड़ा दिया होगा ? बाहरी तौर से अंग्रेज़ों ने बहुत बड़ी-बड़ी बातें की थीं। साम्राज्यवाद का अंत करने का इसे पहला कदम तक कहा गया था। परन्तु यह सब उस आग का धुआं था जो उनके दिलों में भड़क उठी थी। भारत का इतना बड़ा साम्राज्य उन्हें छोड़ देना पड़ा। जब सँभाला न गया तो भला क्या करते ? लड़ाई के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी हो गई थीं कि मजबूर होकर अंग्रेज़ों को भारत स्वतन्त्र करना पड़ा। यदि लड़ाई न होती तो हो चुका था भारत स्वतन्त्र ! भले न चार-चार गांधी अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन आदि कर मर जाते, परन्तु आखिर कौन पूछता उनका भाव ? लोग कहते हैं कि गांधी-नेहरू ने आज़ादी दिलाई। मैं कांग्रेसी हूँ मुझे भी ऐसा कहना पड़ता है, पर क्या यह हक़ीक़त है ? एक बार यह बात मानी जा सकती है कि गांधी-नेहरू आज़ादी की लड़ाई के लिये जी-जान से लड़े—पर यह कहना कि आज़ादी उन्हीं के कारण मिली, बिल्कुल गलत बात है।"

"लेकिन सहसा आपको अंग्रेज़ों के दुखों का आज कैसे खयाल हो आया ?"

"अपने-आपके उदाहरण से। समाजवादी क्रांति, समाजवादी रचना-तन्त्र तथा पुनर्निर्माण आदि का नाम लेकर कुछ दिनों पहले मैंने जो अपने सौ रिक्शों का दान किया, वह मुझे अन्दर-ही-अन्दर जलाए डाल रहा है। दान करते समय मैं ही जानता हूँ कि मेरा दिल किस प्रकार रो रहा था।

अन्दर से तो मैं चाहता था कि यह उत्सव भी सम्पन्न हो जाए, मेरा नाम भी हर किसी की जुबान पर रहे, परन्तु रिवते न दान करने पड़ें।"

"सेठजी, यही तो जिंदगी की सचाई है।"

"वाह रे सचाई!" सेठ झंडुलाल ने बैठक बदलते हुए कहा, फिर पूछा—"आप कैसे आये?"

"मैं···मैं···तो डूब गया···मेरी आबरू मिट्टी में मिल गई।"

"क्या हुआ?" केशो मौन हो, धरती पर आँखें गड़ाये, ठोडी पर हाथ रखे विचार-मग्न था।

"अरे भाई बोलो भी तो क्या हुआ? यों ही बैठे रहोगे?"

"अपने यहाँ कोई लड़की या लड़का पैदा होने वाला है।"

"मतलब?"

"मतलब कि कोई वारिस आने वाला है।"

"तो अच्छी बात है, ईश्वर ने कम-से-कम इस उम्र में तुम्हारा खयाल तो किया।"

"लेकिन बहुत भारी कीमत पर।"

"मैं तुम्हारी बातें नहीं समझा।"

"मुझे अपनी पत्नी पर शक है···मैं सब-कुछ जानता हूँ···उससे आगे कुछ कहना-सुनना बेकार है।"

"आखिर कौन-सा आदमी है जिस पर तुम्हें शक है?"

"बजरंग पहलवान पर। मैं सब-कुछ अपनी आँखों देख चुका हूँ, इसलिए अविश्वास का सवाल ही पैदा नहीं होता। कल यदि उसका नाक-नक्शा पहलवान की सूरत का निकला और बात बढ़ी तो क्या होगा? मेरा बस्ती में रहना ही मुश्किल हो जाएगा। सारी दूकान उठानी पड़ेगी सो अलग। हर कोई मेरे नाम की टोपी उछालता फिरेगा।"

झंडुलाल ने गहरी चिन्ता में पड़े हुए कहा—"कम-से-कम सेठानी से मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी।" रुककर सेठजी ने पुनः कहा—"खैर घबराने की कोई बात नहीं है। अब जो हो गया, उसे जाने दो, उसे ढँकने की कोशिश करो। अपनी पत्नी से कुछ मत कहना। एक बात तो अच्छी हुई कि तुम्हें वारिस मिला। फिर चाहे किसी भी तरह क्यों न मिले? ईश्वर

के रास्ते काफ़ी टेढ़े होते हैं। कभी-कभी वह काफ़ी टेढ़े रास्तों से सहायता करता है। घबराने की बात नहीं है। मैं सब-कुछ निपट लूंगा।"

"इसीलिए तो मैं आपके पास आया था। मेरी हर तकलीफ़ का इलाज आपके पास होता है।"

"लेकिन गाँठ ढीली करनी होगी।"

"कितनी......?"

"कम-से-कम तीन हज़ार।"

"रकम तो बहुत है।"

"अरे रकम को रोते हो या अपनी नाक को। कल को बात बढ़ेगी। बस्ती में तुम्हारे नाम की चर्चा होगी। मैं जड़ ही काट दूंगा। केशो, कभी-कभी तुम भी बच्चों-जैसी बातें करते हो। तीन हज़ार का इन्तज़ाम करके रखना। तुम्हारा रास्ता साफ़ करना मेरा काम है।"

"क्या करेंगे आप?"

"कम-से-कम तुम्हें बेइज़्ज़त नहीं होने दूंगा। और सेठानी को दबाकर रखना। यह मौका फिर हाथ नहीं आयेगा।"

६

लक्ष्मी अब तक महादेव की यात्रा से लौट आई थी। मारुति तीन पुत्रों का पिता बन चुका था। इस मामले में उसने पार्वती को आराम न करने देना ही उचित समझा था। लक्ष्मी अपने पोतियों को देख मन-ही-मन प्रसन्न होती थी। वह आज काम पर नहीं गई थी। पिछले तीन वर्षों में यह आज एक ही दिन था जबकि लक्ष्मी काम पर नहीं गई हो। वैसे लक्ष्मी की यह तारीफ रही है कि उसने काम पर कभी नागा नहीं किया। एक बार बस्ती के कुएँ पर खड़ी होकर वह पानी खींच रही थी। कुएँ की लकड़ी पुरानी होकर सड़ चुकी थी। लक्ष्मी के वज़न से टूट पड़ी और लक्ष्मी कुएँ में जा गिरी। सारी बस्ती कुएँ पर जमा हो गई, पर दूसरे ही दिन लोगों ने आश्चर्य से देखा कि लक्ष्मी अपने काम पर हाज़िर थी।

अपने साथियों से खेलते हुए लक्ष्मी के समक्ष एकबारगी उसका अपना अतीत साकार हो उठा। वह भी किसी समय पार्वती की आयु की थी। उसे हर साल बच्चे होते और मर जाते। लक्ष्मी को वह घर याद आया जहाँ वह किसी समय काम करती थी। अब तो वह परिवार ही नागपुर से बाहर चला गया था। गेहुँए रंग का वह पुरुष! उसके सिर पर घुँघराले बाल बहुत ही शोभा देते थे। वह बाँसुरी बहुत अच्छी बजा लेता था। लक्ष्मी बाहर बर्तन माँजती और उसकी बाँसुरी सुनती। आज तक लक्ष्मी को यह नहीं पता लग सका था कि उसके मालिक का आखिर कौन-सा व्यवसाय है। वह तीन बजे दोपहर के करीब रोज बरतन माँजने आती और अपनी चिरपरिचित धुन सुन लेती।

जिस दिन वह बंसी नहीं सुनती उस दिन अनुमान लगा लेती कि मालिक घर पर नहीं हैं। घर के नौकर से पूछती — "आज मालिक घर पर नहीं हैं?" नौकर एक भेद-भरी मुस्कान से नकारात्मक उत्तर देता। इस भेद-भरी मुस्कान को देख लक्ष्मी अन्दर-ही-अन्दर जल उठती, परन्तु कुछ न कह पाती। दुनिया में ऐसी कई छोटी-मोटी घटनाएँ होती हैं जिनका कोई इलाज नहीं होता, या होता है तो बहुत मुश्किल होता है, इसलिए लक्ष्मी को भी किसी तरह निबाहना पड़ता था।

धीरे-धीरे लक्ष्मी ने अपने मालिक से काफी फायदे उठाने शुरू किए। एक बार पांडुरंग बुरी तरह से बीमार पड़ा। उसकी ज़िन्दगी और मौत का सवाल था। लक्ष्मी की गाँठ में न तो पैसे ही थे और न ही इस जान-पहचान के ज़माने में किसी अस्पताल में जगह ही। उस समय इसी 'बाबू' ने सारी सहायता की। उसने पांडुरंग को अस्पताल में दाखिल करवाकर उसकी दवादारू के पैसे दिए। वह स्वयं तो कभी अस्पताल नहीं गया, परन्तु उसने पांडुरंग के प्राण आखिर बचा ही लिये। लक्ष्मी तो उसके पैरों पर जैसे लोट गई। पांडुरंग लक्ष्मीसहित उसके घर कृतज्ञता प्रकट करने गया था। आज पांडुरंग को उसकी शक्ल ठीक-ठीक तो याद नहीं है, परंतु रामू को देखते ही वह शक्ल-सूरत कुछ-कुछ याद आने लगती है। उस समय पांडुरंग रामू पर पूरे गुस्से से उमड़ पड़ता। रामू के आँसू निकल पड़ते और उसे समझ नहीं पड़ता कि आखिर उसका क्या कसूर है। रामू आज तक यही पहेली बुझाता

रहा कि आखिर उसके बाप ने इसे कभी समझने का प्रयास क्यों नहीं किया ?

पाँडुरंग को अब बुढ़ापा घेरने लगा था। समय के साथ इन सब बातों को पाँडुरंग भूलने लगा था। सबसे बुरी बात यह हुई कि अवस्था के बढ़ते हुए अनेक कष्टों के साथ पाँडुरंग के दाहिने हाथ व दाहिने पैर को लकवा पकड़ने लगा था। पाँडुरंग का दाहिना हाथ धीमे-धीमे हिलता या काँपता रहता था।

पाँडुरंग अब रिक्शा चलाने में असमर्थ था। लक्ष्मी उस हिलते हुए हाथ और पैर को देखकर घंटों रोई थी। वह तो पाँडुरंग के पैर पकड़कर ही बैठ गई थी।

पाँडुरंग शून्य आसमान की ओर ताकता है। लक्ष्मी लगातार रोती जाती है ·····। दोनों क्या करें ? उन्हें लगता है कि जीवन के अब ऐसे दिन आ रहे हैं जिन पर उनका अब कोई अधिकार नहीं है। लक्ष्मी की आँखें जवाब देने लग गई हैं। वह मारुति से कहती है, "चश्मा लगवा दे।"

जब बाजार जाने का लक्ष्मी को अवसर मिलता है तो वह गूदड़ी बाजार में जाकर पुराने चश्मे आँखों पर चढ़ा-चढ़ाकर देखती है कि शायद कोई चश्मा उसे फिट आ जाये और वह उसे सस्ते भाव से खरीद सके। परन्तु कोई चश्मा गलती से भी काम नहीं देता। वह सोचती है कि ऐसे चश्मे को लगाने की अपेक्षा तो अंधा हो जाना कहीं श्रेयस्कर है। वह चश्मों को गाली देती हुई उठ खड़ी होती है। रद्दीवाला भी उससे तंग आ जाता है और सोचता है कि कब बुढ़िया यहाँ से उठे। दूसरे दूकानदार से बात करती है तो वह लक्ष्मी की शक्ल देखकर ही फैसला कर देता है। तीसरी दूकान पर जाने से पहले ही वह सुनती है—'तेरे लायक एक भी चश्मा नहीं है।'

लक्ष्मी का बस चलता तो वह अपना पुराना शरीर रद्दीवाले को बेचकर दूकान से नया जवान शरीर खरीद लेती। अब तो उससे बर्तन भी नहीं मांजे जाते।

ठण्ड आ गई है। लक्ष्मी के हाथ-पैर फट गये हैं। पैरों में बिवाइयाँ

पड़ी हैं। पार्वती रात को लक्ष्मी के पैरों पर जवस[1] का तेल लगाती है। लक्ष्मी पार्वती को आशीर्वाद देती हुई उसके सिर को हाथ लगा-लगाकर बलइयाँ लेती है। उसके बाद अपने कानों पर लक्ष्मी अपने दोनों हाथ रखती है। 'कड ''कड' अंगुलियों के कडकडाने की आवाज आती है।

पार्वती पर काम का बोझ बढ़ता जा रहा है, परन्तु वह उतनी ही प्रसन्न दिखाई देती है। पार्वती को लगता है कि जैसे उसका प्रमोशन हो रहा है। काम बढ़ रहा है तो अधिकार भी बढ़ रहे हैं। जिम्मेदारियाँ बढ़ रही हैं। घर के तीनों टूटे हुए लकड़ी के संदूकों की चाबियाँ उसके पास ही रहती हैं। मौके-बेमौके के लिये पार्वती ने बारह रुपये छः आने बचाकर भी रखे थे। हर माह मारुति की आय से वह दस-बारह आने अपने निजी फंड में डालती चली जाती है।

मारुति रिक्शा चलाता है। उसका जीवन रिक्शे के पहिये की तरह घूमता जा रहा है। इस कारण उसमें कभी पंचर भी हो जाते हैं। दोपहर को जब मारुति घर आता है तो पार्वती उसे भोजन परोसती है, उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है। यह काम लक्ष्मी कभी नहीं करती, क्योंकि उसे मालूम है यह केवल पार्वती का ही एक मात्र अधिकार है। मारुति भोजन करते-करते मुस्कराता जाता है। प्रत्युत्तर में पार्वती की भेद-भरी सकोचपूर्ण मुस्कान को देखकर उसकी थकान मिट जाती है। भोजन के पश्चात् हाथ धुलाने के लिए पार्वती उसे रसोई में ले जाती है। हाथ धोकर वह पार्वती को बाँहों में भर लेता है। रसोई का छप्पर इतना नीचा है कि दिन में भी वहाँ अँधेरा-सा ही छाया रहता है।

मारुति के लिए मादकता के ये क्षण अनमोल होते हैं।

इसके बाद वह तरोताजा होकर रिक्शे पर फिल्मी गीत की कोई धुन गाता हुआ बस्ती से गुजरता है।

मारुति सोचता है कि यदि उसका अपना रिक्शा हो तो कितना अच्छा हो!

---

१. अलसी

७

रेणु ने लोकनृत्य में भाग लिया था। लोकनृत्य सफल रहा था। गोंडी लोकनृत्य था। मेक-अप वगैरह ठीक था, परन्तु एक कमी रह गई थी। कम-से-कम गोंडों का सांवलापन नाचनेवाली लड़कियों के चेहरे पर नहीं था। उन के गोरे-चिट्टे चेहरे, ऊपर से मेक-अप, यह गोंडों के चेहरों से ठीक विपरीत बात थी। लड़कियों ने चोलियाँ पहन रखी थीं। नृत्य करती हुई जिस समय वे घुमाव लेतीं, या झुकतीं, तो गहरे हरे रंग की पोशाकों पर उनकी गोरी सफेद रंग की कमर गज़ब ढा देती थी। प्रतीत होता था मानो कई बिजलियाँ एक साथ कौंध जाती हैं।

निर्णायकों ने यदि इस दोष को ध्यान में न रखा होता तो शायद उस लोकनृत्य को प्रथम स्थान प्राप्त होता। वैसे नागपुर के ट्रूप ने काश्मीर को भी पानी पिला दिया था। काश्मीर का तो नाम-ही-नाम रह गया था। अन्य विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों पर नागपुर की धाक बैठ गई थी। लोग समझने लगे थे कि नागपुर कोई महान् सांस्कृतिक केन्द्र है। अनुशासन में भी नागपुर के विद्यार्थी उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की तरह नहीं थे।

•

चाँदनी रात में ताजमहल की मीनारों को देख रामू मुख्य द्वार पर ठिठककर जैसे ठगा-सा खड़ा-का-खड़ा ही रह गया। उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा, 'वण्डरफुल···!'

"देखा न······!" रेणु जैसे रामू के स्वर-में-स्वर मिलाकर कह उठी। "मिस्टर, इसीलिए मैं कह रही थी कि ताजमहल का वास्तविक सौंदर्य चाँदनी रात में ही देखा जा सकता है। और एक तुम थे कि तुम्हें गाड़ी के छूट जाने की पड़ी हुई थी। अभी साढ़े सात बजे हैं। यहां से साढ़े आठ बजे भी चला जाये तो गाड़ी मिला सकती है।···है न···संगमरमर में जीवित स्वप्न।"

"मैं कब इन्कार करता हूँ?'

"मतलब यह कि सत्य भी कभी-कभी अपनी सीमा का अतिक्रमण कर स्वप्नवत् हो सकता है।"

"मैं तो स्वप्न को भी सत्य का ही एक अंग समझता हूँ। स्वप्न की घटनाएँ भले ही हमारे वास्तविक रूप से हमारे संकुचित जीवन से न घटें परन्तु उनसे क्या? वे आखिर कहानी या उपन्यास की घटनाओं या पात्रों के समान होती हैं। हाँ स्वप्न में घटित होने वाले असाधारण या असम्भव तत्वों को साधारण समझना कहा जा सकता है। ताजमहल का अस्तित्व [illegible] वास्तविकता है। उसका सौन्दर्य उसे देखने वाले को एक स्वप्न का रूप प्रदान कर देता है। उसके सौन्दर्य को उसी तरह नहीं पकड़ा जा सकता जैसे स्वप्न में दीख पड़ने वाली घटनाओं को।" अब तक दोनों ताजमहल के करीब आ चुके थे।

"मालूम पड़ेगा कि शाहजहाँ ने कोई चीज बनवाई है?" [illegible]

"[illegible] चीज बनवाई है?"

घास में फूल की अपेक्षा अधिक सुन्दरता है, क्योंकि घास से उसकी भूख मिटती है, फूल से क्या होता है ? इसलिए फूल की ओर ताकना भी भैंस के खानदानी उसूल के खिलाफ है।"

"मैंने कहा······"

"मैंने कान बन्द कर लिए हैं···जो बोलना है बोलते जाओ।" रेणु ने कानों पर हाथ रख लिए थे। रामू चुप होकर यमुना के प्रशांत जल को देखने लगा। चाँद का प्रतिबिम्ब गतिशील जल में हल्का-हल्का कांप रहा था। यमुना के जल में एक दीपस्तंभ-सा बन रहा था। सहसा रेणु पुलकित हो उठी। रेणु ने अपनी साड़ी का छोर पकड़ा और रामू की ओर देखा। रामू निर्जन वन-प्रान्तर भाग की ओर खोया-खोया-सा देख रहा था।

"रामू······!" रेणु ने अपनी साड़ी के पल्ले में अँगुलियाँ उलझाते हुए कहा। रामू अपना नाम सुनकर चौंका। रेणु ने उसे आज तक नाम लेकर नहीं पुकारा था। रामू ने अपना पूरा शरीर घुमाकर रेणु को देखा। रेणु की पलकें उठीं और झुक गईं।

"रेणु······क्या बात है ?" रामू ने पूछा।

रामू ने देखा कि ताजमहल और यमुना के जल की तरह रेणु की छवि भी चाँदनी रात में अछूती नहीं रह सकती है। उसमें मादकता की एक लहर देख वह रोमांचित हो उठा। रामू ने रेणु के दोनों कंधों पर हाथ रख दिए और पूछा, "बोलो रेणु, क्या बात है ?'

"एक बात मानोगे ?"

"क्या ?"

"बंशी की एक धुन बजा दो।"

"बस···इतनी-सी बात···बंदा फर्माइश पर कम ही बजाता है, परन्तु ऐसी फ़र्माइशों को वह अपना अहोभाग्य समझता है।"

"चाहे···कोई भी इस तरह की फ़र्माइश क्यों न करे ?"

"नहीं······।"

"फिर······।"

"केवल तुम······।"

"सच।"

"बिल्कुल !"

रामू ने वंशी को पोंछा उसमें फूँक मारी, उसे साफ कर वह धुन बजाने लगा।

ताजमहल की घोर नीरवता में रामू की वंशी का स्वर गूँज उठा। दूर तक चाँदनी फैली हुई थी। निर्जन वन प्रांतर मात्र था। दोपहर को जहाँ धूल-ही-धूल उड़ती थी वहाँ अब चाँदनी रात में प्रकृति भी सोई हुई लग रही थी। सारे वातावरण में एक अजीब-सा सन्नाटा और मादकता थी। उस शान्ति में ताजमहल अपनी मीनारों सहित एक सजग प्रहरी-सा मौन खड़ा था। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे बनाया गया था उसकी याद-गार में आज तक वह जवान सिपाही की तरह सीना ताने खड़ा था।

उस सूने-से वातावरण में ताजमहल की एकाकी छवि······!

और उस एकाकी छवि में रामू की वंशी के स्वर······!

रेणु ठगी-सी अगुली ठोडी से लगाए रामू की वंशी सुन रही थी। रामू रेणु की आँखों में देखता रहा।

धुन समाप्त होने पर रेणु ने कहा—"पहले मैं सोचा करती थी कि साहित्य में भी गोपियों के वर्णन का यह क्या पागलपन भरा पड़ा है ! कृष्ण की मुरली में ऐसा कौन-सा जादू था कि गोपियाँ तन्मय होकर सुनती थी। मुझे इस कथन की सत्यता पर सन्देह होता था। मैं सोचती थी कि क्या कभी ऐसा हो सकता है ? आज महसूस करती हूँ कि हाँ ऐसा हो सकता है। दूसरे की मनोभावनाओं को तभी पूरी तौर से समझा जा सकता है, जब उनकी अनुभूति को हम अपनी बनाकर ग्रहण करें। कृष्ण की मुरली के पीछे स्वयं कृष्ण का प्रभावशाली व्यक्तित्व था। कृष्ण मुरली न बजाकर यदि उसकी जगह कुछ और भी बजाते तो भी गोपियों को कोई भिन्न अनुभूति न होती।···अब···समझे।···"

"तो मतलब यह हुआ कि मेरी वंशी में कुछ नहीं है। उसकी अपेक्षा······।"

"······चुप रहो···मेरी कसम, आगे जो कुछ कहा तो।" एक हाथ से रेणु ने साड़ी का गिरता हुआ पल्ला सम्हालते तथा रामू के मुँह पर हाथ रखते हुए कहा। रामू पीछे हटते-हटते कहने लगा, "अरे बाबा कुछ नहीं

कहता······लेकिन मुझे पीछे क्यों ढकेल रही हो ?···क्यों, यमुना में गिरा देने का इरादा है क्या ?"

"मैं यदि नदी होती तो तुम्हें डूबने की आवश्यकता न होती। मैं ही तुम्हें अपने-आपमें आत्मसात् कर लेती।"

इतने में ही उस ओर एक यूरोपियन युगल आता हुआ दिखाई दिया। रामू ने पहले उन्हें अंग्रेज समझा परन्तु बातों के सिलसिले में पता लगा कि वे नॉर्वीजियन हैं। वे स्पष्ट रूप से अंग्रेजी बोलने में असमर्थ थे। विशेषकर ट ध्वनि का उच्चारण वे त के-रूप में ही करते थे। उस मनुष्य के पास एक वायलिन था। उसकी बगल में कैमरा लटका हुआ था। उसकी पत्नी ने कैमरे की तिपाई पकड़ रखी थी। उसने कहा—"हम पहले इस ओर आते-आते रुक गए, इसलिए कि कहीं आपकी प्राइवेसी में बाधा न उपस्थित हो।"

"हमारी प्राइवेसी या आपकी प्राइवेसी ?"

"हमें अपनी प्राइवेसी का खयाल होता तो आपको कभी तकलीफ़ न देते। आपकी बाँसुरी सुनकर विशेष रूप से हम इस ओर आ निकले।"

"यह तो आपका बड़प्पन है।"

"मैं समझता हूँ कि बाँसुरी भारतीय संगीत का एक प्रमुख वाद्य-यन्त्र है। कोई भी भारतीय संगीत या वाद्ययन्त्र बाँसुरी के बिना अधूरा ही कहा जायेगा। मैंने चरवाहों को बाँसुरी बजाते हुए सुना है। निर्जन मार्ग में इससे उपयुक्त कोई संगीत नहीं। दोपहर को या रात के सन्नाटे में इसकी आवाज़ बहुत ही सुन्दर लगती है। मानना पड़ेगा कि यह कमाल की चीज है। एतराज़ न हो तो एक मिनट दिखाएंगे।" रामू ने पोंछकर बाँसुरी उस नॉर्वीजियन को पकड़ा दी। वह उसे उलट-पुलटकर देखता रहा। उसमें वह फूँक मारने लगा, किन्तु सिवाय दो-चार विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के कुछ न निकला। नॉर्वीजियन ज़ोर से हँस पड़ा। उसने कहा—"अपने बस की बात नहीं है। खैर मेरा यहाँ आना सार्थक हो गया···आपकी बाँसुरी सुनकर। ऐसी धुन मुझे भाग्यवश ही सुनने को मिली है।"

"आपने शायद बाँसुरी पहली बार ही सुनी है, इसलिए कदाचित् ऐसा महसूस करते हैं। भ्रमण कीजिए। भारत को अन्दर से देखिये। यहाँ

आपको एक-से-एक सगीतकार मिलेंगे जो मिट्टी में पड़े हुए हैं। तथाकथित 'सांस्कृतिक' प्रोग्रामों में तो केवल आपको तड़क-भड़क ही मिलेगी। भारत की ऐसी कितनी ही वस्तुएँ हैं जिनके बारे मे विदेशियो को कितनी ही गलतफहमियाँ हैं। विदेशी समझते हैं कि भारत एक गरीब देश है जहाँ राजे-महाराजे हाथियो पर बैठकर निकलते हैं। वे समझते हैं कि भारत साँपो, सँपेरो तथा रस्सी की ट्रिको के लिए प्रसिद्ध है। आप इन बातों की सत्यता अपनी आँखो से देखिये।" रामू जब तक यह सब-कुछ अग्रेजी मे बोल रहा था तब तक वह विदेशी मुस्करा रहा था। रामू को लग रहा था कि शायद उसकी बात बराबर नही बैठ रही है या विदेशी की मुस्कान में कुछ व्यग्य है। उस विदेशी ने कहा "आपने जो बातें कही वे औसत दर्जे के टूरिस्ट के लिए लागू हो सकती हैं। मैं स्वय वायलिन बजाता हूँ, इसलिए सगीत की थोडी-बहुत जानकारी मुझे भी है। सगीत की आत्मा को बड़े-बड़े कल्चरल प्रोग्रामो मे नही देखा जा सकता। मैंने स्वय पन्ना-लाल घोष को सुना है। उनकी बाँसुरी को सुनने का मुझे अवसर मिला है। भारत आने से पहले मैंने भारत-विषयक काफी साहित्य पढ़ा है। आप जिस भारत का वर्णन करते हैं वह विदेशों मे अग्रेजों की देन है। विदेशियो को यह भी मालूम है कि राजे-महाराजो के दिन लद गये। अब तो नये किस्म के राजे-महाराजे पैदा हो रहे हैं। अतीत में आपके राजे-महाराजे भी इन गलतफहमियो को फैलाने के जिम्मेदार रहे हैं। उनकी फिजूलखर्ची के कारण भी यह किसी हद तक हुआ। मैं भारत जरूर आया हूँ, बड़े-बड़े ऐतिहासिक स्थल, भाखरा-नगल आदि तथा नई बनी ऊँची-ऊँची इमारतें भी देखी हैं, परन्तु आप क्या समझते हैं कि मैं यही सब-कुछ देखकर सतुष्ट हो गया हूँ ? मैं यहाँ लोगो को देखने आया हूँ। मैंने उन हजारो और लाखों लोगों को देखा है जो गाँवों और शहरो के झोपडो मे बसते हैं। भाखरा-नगल बनाने वाले मजदूरों के झोपड़ो को भी मैंने देखा है। समुद्री तटवर्ती मछुओं को भी देखा है। इन सबको देखकर मेरी आत्मा कह उठी है कि यही मेरा नार्वे है। मैं हिन्दुस्तान मे अपना नॉर्वे देखने आया हूँ, और जहाँ कही भी उसकी छवि देखता हूँ तो मेरी आत्मा विभोर हो उठती है।"

वक्त हो रहा था। रामू और रेणु झटपट ताँगा कर स्टेशन की ओर

मुड़े। तांगे में रेणु ने कहा —"मिला न आखिर तुमको भी एक गुरु। ह
किसी को रेणु जैसा ही समझते हो। पकड़ा और लगे देने लैक्चर। सेर को
सवा सेर मिल ही जाता है।"

राजू को आज की रेणु वही चार-पांच वर्ष पहले की चंचल औ
अल्हड़ रेणु लग रही थी। तांगा हिचकोले खाता हुआ चला जा रहा था
चांदनी रेणु के घुटनों तथा पैरों पर पड़ रही थी।

राजू सोचता है कि सड़क जितनी पथरीली हो उतना ही अच्छा।

संघर्ष

मारुति की नींद सुबह खुली तो उसने अपने झोंपड़े के आसपास कई तरह की आवाजें सुनी। उसने सोचा कि आज ये नये प्रकार के पक्षी भला कौन बोल रहे हैं ? मारुति ने अपना टीन का दरवाजा खोला। वह सिर्फ बनियान और जांघिया पहने आँखें मलता हुआ बाहर आया। देखा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। "सेठजी···आप !" मारुति देखकर आश्चर्य-चकित हो गया। सामने सेठ झंडुलाल खद्दर का केवल बनियान-जाँघिया पहने, हाथ में बाँस पर लगी हुई झाड़ू लिये खड़े थे। अन्य कई सेवक इधर-उधर सफाई में व्यस्त थे। मारुति को तो अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। मारुति चाहता था कि कोई उसे आकर इस बात का विश्वास दिलाये कि ये सेठ झंडुलाल ही हैं। मारुति को यह दृश्य उसी प्रकार लग रहा था जैसे कोई कहे कि पंडित नेहरू साइकिल पर तिलनखेड़ी बस्ती में चक्कर लगा रहे थे।

सेठ झंडुलाल · नागपुर का जाना-माना व्यक्ति ··मारुति के झोंपड़े के सामने वह भी बनियान-जांघिए में केवल एक झाड़ू पकड़े हुए। सेठ झंडुलाल ने मारुति को पहले तो नहीं पहचाना। फिर उन्हें लगा कि जैसे इस चेहरे को कहीं देखा है।

"यहाँ रहते···हो ?" सेठजी ने पूछा।

"हाँ···पर आप यहाँ कैसे, मालिक ?···आँखों पर विश्वास नहीं होता।"

"हाँ मारुति पटेल, जमाना ही ऐसा है कि इसे देखकर किसी को अपनी आँख पर विश्वास ही नहीं होता। अब तो जन-सेवक की हैसियत से तुम लोगों की सेवा करने का समय है। अब तो मालिक तुम लोग हो। समिति का सेवा और सफाई-सप्ताह चल रहा है। उस सिलसिले में तुम्हारी

वस्ती की सफ़ाई हो रही है ···।"

"मालिक, आप भी क्या बातें करते हैं? मैं तो···एक मामूली रिक्शा-वाला हूँ।···हम गरीब लोग भला कहाँ मालिक ?"

"तुम लोग भाई जनता-जनार्दन हो···ऐसा न होता तो तुम्हारे दरवाज़े पर यह झाड़ू क्यों लगानी पड़ती ? तुम लोगों के दरवाज़े पर हम तुम्हें सफाई का पाठ सिखाने आये हैं।"

"सेठजी···आप हमारे दरवाज़े पर आये नहीं···कहिये आना पड़ा। अंग्रेजी राज होता तो क्या आप इस वस्ती में आते···? इस ओर देखना भी पाप समझते। अब तो बात ही दूसरी है। जमाने के साथ चलने में आप माहिर हैं। अब सेवा करनी शुरू कर दी।"

सुनकर सेठ झंडुलाल के चेहरे पर बल पड़ गए। उन्होंने कहा—"अब यह सब-कुछ तुमसे सुनना पड़ेगा। देखते नहीं कैसी-कैसी हैसियत के लोग तुम्हारी वस्ती की गंदगी दूर कर रहे हैं। तुम लोगों को सफ़ाई का पाठ सिखा रहे हैं। गरीबी कोई पाप नहीं है। पर गंदे रहना अवश्य पाप है। तुम गरीब लोग चाहो तो इस प्रकार रोज स्वयं अपने हाथों से अपना काम कर सारी वस्ती में सफ़ाई रख सकते हो। गांधीजी ने तो स्वयं अपने हाथों से मैला भी उठाया था···"

अभी सेठजी बात पूरी भी नहीं कर पाए थे कि नाथूलाल वहाँ टपक पड़ा। नाथूलाल तो सेठजी के पीछे-पीछे उनकी परछाई की तरह चलता था। नाथूलाल को जैसे ही पता लगा कि कांग्रेस समिति की ओर से सेवा सप्ताह तिलनखेड़ी बस्ती में मनाया जा रहा है तो वह भी दल-बलसहित तैयार होकर आया। अंतर केवल इतना ही था कि नाथूलाल के पास न तो झाड़ू ही थी और न ही वह झंडुलाल की तरह बनियान-जाँघिया ही पहने था। उसने आते ही अपनी तोप दागी—"सेठजी, इन गरीबों को क्या अक्ल चटा रहे हो? यह सच है कि आप जैसी हैसियत के लोग हाथों में झाड़ू लिये इस सफ़ाई के नाटक में भाग ले रहे हैं। मगर क्यों ? यह सेवा नहीं है, सेवा का एडवरटाइज़मेंट है। दूसरे इलेक्शन का समय है। इस-लिए आप लोगों ने यह स्टन्ट खड़ा किया है। आप लोगों के हाथों में सेवा जैसा पवित्र शब्द भी पड़कर अपना मतलब खो देगा। इतना ही नहीं बल्कि

आप सेवा शब्द को ही बदनाम करके दम लेंगे। सेवा की आड़ में आप लोगों का स्वार्थ छिपा है। यह आड़ जितनी मजबूत होगी उतनी ही आपकी खेती पनपेगी। आप क्या इन गरीबों को सफ़ाई सिखायेंगे? क्या कभी अपने त्यौहारों के समय झोंपड़ियों को अदर से जाकर देखा है? वे सिर्फ मिट्टी और गोबर से पुती होती हैं, परन्तु सोने से भी ज्यादा चमकती हैं। उन्हें सेवा-सप्ताह नहीं मनाने पड़ते और न ही इतने बड़े आडम्बर खड़े करने पड़ते हैं। बाकी बस्ती की सफाई के लिए सूअर हैं जो घूम-फिरकर मुफ्त में कारपोरेशन का बोझ हल्का किया करते हैं। रह गई गांधीजी की बात, तो आप गांधीजी का उदाहरण क्यों देते हैं? सामने ही मेहतर बस्ती है, उसका उदाहरण क्यों नहीं देते? मेहतर अपना ही नहीं बल्कि आपकी बस्तियों का भी मैला साफ करते हैं। गांधीजी तो बहुत बड़े आदमी थे। उनका मुकाबला आप लोग क्या खाकर करेंगे? गांधीजी का नाम ले-लेकर यह ढोंग आप कितने दिनों तक रचेंगे?'

नाथूलाल की आवाज सुनकर आसपास के समस्त सेवक वहां इकट्ठे हो गये। एक छोटी-सी भीड़ लग गई। बस्ती के कुछ लोग भी उधर आ गये। मारुति ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इस तरह का बखेड़ा उसके घर के सामने ही खड़ा हो जाएगा। पांडुरंग भी अपना एक हाथ हिलाता और लंगड़ाता हुआ बैसाखी के सहारे बाहर आ गया। नाथूलाल को देखकर भन्नूलाल ने खिसकना चाहा। परन्तु उसका लैक्चर शुरू होते ही भन्नूलाल को रुकना पड़ा। बिना जवाब दिये जाना भी भन्नूलाल को अपनी पराजय प्रतीत हुई। अन्य सेवकों को देखकर सेठजी की हिम्मत बढ़ी। उन्होंने कहा —

"क्यों, इस बस्ती में भौंकने के लिए कुत्ते नहीं हैं क्या?"

"इस बस्ती में कुत्ते भौंकते नहीं…सफाई करते हैं।"

"तुम चाहते क्या हो?" एक सेवक ने प्रश्न किया।

"यह तो एक स्थायी प्रश्न है।"

"अभी क्या चाहते हो?"…लड़ना?

"बिलकुल नहीं।"

"फिर इरादा क्या है?"

"इरादा! यह है कि आपकी सही-सही पोल खोलकर इन बेजुबान

वस्ती की सफ़ाई हो रही है ···।"

"मालिक, आप भी क्या बातें करते हैं? मैं तो···एक मामूली रिक्शा-वाला हूँ।···हम गरीब लोग भला कहाँ मालिक ?"

"तुम लोग भाई जनता-जनार्दन हो···ऐसा न होता तो तुम्हारे दरवाज़े पर यह झाड़ू क्यों लगानी पड़ती ? तुम लोगों के दरवाज़े पर हम तुम्हें सफाई का पाठ सिखाने आये हैं।"

"सेठजी···आप हमारे दरवाज़े पर आये नहीं···कहिये आना पड़ा। अंग्रेज़ी राज होता तो क्या आप इस वस्ती में आते···? इस ओर देखना भी पाप समझते। अब तो बात ही दूसरी है। ज़माने के साथ चलने में आप माहिर हैं। अब सेवा करनी शुरू कर दी।"

सुनकर सेठ झंडुलाल के चेहरे पर बल पड़ गए। उन्होंने कहा—"अब यह सब-कुछ तुमसे सुनना पड़ेगा। देखते नहीं कैसी-कैसी हैसियत के लोग तुम्हारी वस्ती की गंदगी दूर कर रहे हैं। तुम लोगों को सफ़ाई का पाठ सिखा रहे हैं। गरीबी कोई पाप नहीं है। पर गंदे रहना अवश्य पाप है। तुम गरीब लोग चाहो तो इस प्रकार रोज़ स्वयं अपने हाथों से अपना काम कर सारी वस्ती में सफ़ाई रख सकते हो। गांधीजी ने तो स्वयं अपने हाथों से मैला भी उठाया था···"

अभी सेठजी बात पूरी भी नहीं कर पाए थे कि नाथूलाल वहाँ टपक पड़ा। नाथूलाल तो सेठजी के पीछे-पीछे उनकी परछाईं की तरह चलता था। नाथूलाल को जैसे ही पता लगा कि कांग्रेस समिति की ओर से सेवा सप्ताह तिलनखेड़ी वस्ती में मनाया जा रहा है तो वह भी दल-बलसहित तैयार होकर आया। अंतर केवल इतना ही था कि नाथूलाल के पास न तो झाड़ू ही थी और न ही वह झंडुलाल की तरह वनियान-जाँघिया ही पहने था। उसने आते ही अपनी तोप दागी—"सेठजी, इन गरीबों को क्या अक्ल चटा रहे हो ? यह सच है कि आप जैसी हैसियत के लोग हाथों में झाड़ू लिये इस सफ़ाई के नाटक में भाग ले रहे हैं। मगर क्यों ? यह सेवा नहीं है, सेवा का एडवरटाइजमेंट है। दूसरे इलेक्शन का समय है। इस-लिए आप लोगों ने यह स्टन्ट खड़ा किया है। आप लोगों के हाथों में सेवा जैसा पवित्र शब्द भी पड़कर अपना मतलब खो देगा। इतना ही नहीं बल्कि

आप सेवा शब्द को ही बदनाम करके दम लेंगे। सेवा की आड़ में आप लोगों का स्वार्थ छिपा है। यह आड़ जितनी मजबूत होगी उतनी ही आपकी खेती पनपेगी। आप क्या इन गरीबों को सफाई सिखायेंगे ? क्या कभी अपने त्योहारों के समय झोंपड़ियों को अंदर से जाकर देखा है ? वे सिर्फ मिट्टी और गोबर में पुती होती हैं, परन्तु सोने से भी ज्यादा चमकती हैं। उन्हें सेवा-सप्ताह नहीं मनाने पड़ते और न ही इतने बड़े आडम्बर खड़े करने पड़ते हैं। बाकी बस्ती की सफ़ाई के लिए सूग्रर हैं जो घूम-फिरकर मुफ्त में कारपोरेशन का बोझ हल्का किया करते हैं। रह गई गांधीजी की बात, तो आप गांधीजी का उदाहरण क्यों देते हैं ? सामने ही मेहतर बस्ती है, उसका उदाहरण क्यों नहीं देते ? मेहतर अपना ही नहीं बल्कि आपकी बस्तियों का भी मैला साफ करते हैं। गांधीजी तो बहुत बड़े आदमी थे। उनका मुकाबला आप लोग क्या खाकर करेंगे ? गांधीजी का नाम ले-लेकर यह ढोंग आप कितने दिनों तक रचेंगे ?'

नाथूलाल की आवाज सुनकर आसपास के समस्त सेवक वहां इकट्ठे हो गये। एक छोटी-सी भीड़ लग गई। बस्ती के कुछ लोग भी उधर आ गये। मारुति ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इस तरह का बखेड़ा उसके घर के सामने ही खड़ा हो जाएगा। पांडुरंग भी अपना एक हाथ हिलाता और लंगड़ाता हुआ बैसाखी के सहारे बाहर आ गया। नाथूलाल को देखकर झड़ूलाल ने खिसकना चाहा। परन्तु उसका लेक्चर शुरू होते ही झड़ूलाल को रुकना पड़ा। बिना जवाब दिये जाना भी झड़ूलाल को अपनी पराजय प्रतीत हुई। अन्य सेवकों को देखकर सेठजी की हिम्मत बढ़ी। उन्होंने कहा—

"क्यों, इस बस्ती में भौंकने के लिए कुत्ते नहीं हैं क्या ?"

"इस बस्ती में कुत्ते भौंकते नहीं···सफाई करते हैं।"

"तुम चाहते क्या हो ?" एक सेवक ने प्रश्न किया।

"यह तो एक स्थायी प्रश्न है।"

"अभी क्या चाहते हो ?" ··लड़ना ?

"बिल्कुल नहीं।"

"फिर इरादा क्या है ?"

"इरादा ! यह है कि आपकी सही-सही पोल खोलकर इन बेजुबान

गरीब बस्तीवालों को बताऊँ। इन लोगों ने मुझे अपने वोट दिये है। मैं इनका एम० एल० ए० हूँ। आप लोग दीजिये मुझे जितने उपदेश देने हैं। परंतु······आप ऐसा नहीं करेंगे, क्योंकि आपको अपनी अक्ल की हद मालूम है। सेठजी···जिसके दिल पर गुजरती है उसीकी आवाज में तल्खी होती है, क्योंकि उसमें सचाई की ताकत होती है। आप मेरी बातों का क्या जवाब देंगे ?"

"जब हाथी चलते हैं तो कुत्ते भौंका करते हैं।" एक स्वयंसेवक ने कहा। उसने सबको सलाह देते हुए कहा—"इन कुत्तों को भौंकने दीजिये···चलिये यहाँ से।"

"खैर हम तो कुत्ते नहीं आदमी हैं। आप तो हाथी सही, खुद आप इस बात को मानते हैं। देखें आप लोगों की पूँछ कहाँ है ?"

"हाथियों का झुंड मुड़ चला। बस्तीवालों में से एक ने चिल्लाकर कहा "अरे हाथियो, अपनी पूँछ तो बताते जाओ।" दूसरे बस्ती वाले ने जवाब दिया "देखते नहीं कुर्ते के नीचे धोती का जो पल्ला निकला दिखाई देता है वही हाथियों की पूँछ है।" सब जोर से हँस पड़े।

झंडुलाल के सामने मारुति का हँसता हुआ चेहरा घूम गया। साथ ही नाथूलाल की तस्वीर एक झलक मार गई।

सेठ झंडुलाल ने कहा—"इन भिखमंगों को इस मज़ाक का जल्दी ही जवाब मिलेगा। इन्होंने सेठ झंडुलाल को छेड़ा है। ये टके के आदमी अपनी औकात नहीं पहचानते।"

२

रामू ने बी० ए० तो पास कर लिया था, परन्तु वह इस उलझन में पड़ा हुआ था कि नौकरी करे या न करे। वैसे तो नौकरी मिलनी भी मुश्किल थी और मिल भी जाती तो उसका निर्वाह कठिन था। ऑफ़िस में कुर्सी-मेज़ों पर सारा दिन गुजार देना उसे कठघरे में दिन गुजारने की तरह लगता था। एक दिन दूकान पर केशो सेठ अकेला ही बैठा था। रामू उस

ओर जा निकला। देखते ही केशो ने कहा—"बरखुरदार, अब तो तुम्हारी शक्ल-सूरत निकल आई है। यदि कपड़े कहीं ढंग से पहना करो तो एक ही रईस लगो। बीस साल पहले की तुम्हारी तसवीर आज भी मेरे सामने है। उस समय तुम नाक बहाते-बहाते पांडुरंग के साथ मेरी दूकान पर आते थे।···और एक आज का दिन है।"

"ताऊ, सब आप लोगों की मेहरबानी है।"

"आजकल क्या कर रहे हो? बी० ए० तो पास कर लिया है?"

"हाँ कर तो लिया।"

"रामू, तुम सोचते होगे कि यह बुड्ढा सेठ न जाने क्या मौके-बेमौके उपदेश देने बैठ जाता है। परन्तु एक बात याद रखो कि मैं हमेशा तुम्हारे भले की ही बात करता हूँ। तुमने बी० ए० पास कर लिया है, जवान हो गये हो, उम्र आ गई है, परन्तु फिर भी तुम ज़िन्दगी के दिन बेकार गँवा रहे हो। हर जवान आदमी की दो समस्याएं होती हैं—एक नौकरी, दूसरी छोकरी···क्या? ज़रा ध्यान से सुनने की बात है।"

"ताऊ, आप भी क्या मज़ाक कर रहे हैं!"

"मज़ाक!···कैसे हो जी तुम? तुम्हारे पास भेजा है या नहीं? तुम्हारे भले की बात कह रहा हूँ और उसे तुम मज़ाक कह रहे हो। मज़ाक तो तुम कर रहे हो अपनी ज़िन्दगी से। जवानी के ये दिन वापस नहीं लौटने के। जब तक तुम जवान हो तुम्हें अकड़ने का पूरा हक है, परन्तु एकबार बुढ़ापे ने आ घेरा तो बुरी तरह से पछताओगे। तुमने बी०ए० पास कर लिया है, कोई थोड़ी बात नहीं···बताओ तिलनखेड़ी में किस दूसरे ने बी० ए० पास किया है? नौकरी लगवाना मेरा काम। यदि मेरे बताये हुए तरीकों से काम किया तो हज़ारों कमा सकते हो। रह गई शादी की बात तो उसमें भी किस्मत तुम्हारा साथ दे रही है। उस बंगालिन लड़की से तो दोस्ती है ही, बस बढ़ा दो अपना हाथ। ऐसी पार्टी कभी नहीं मिलने की। बस बनाओ बंगला, खरीदो मोटर, करो ऐश। यह क्या पागलों-जैसी शक्ल बनाये फिरा करते हो? तुम हिन्दुस्तान के ही नहीं बल्कि दुनिया-भर के सबसे बड़े बाँसुरीवादक क्यों न हो जाओ, परन्तु बताये देता हूँ कि उसमें कुछ फ़ायदा नहीं होगा। लोग केवल तालियाँ पीटकर चले जायेंगे। कोई मौके

पर दो पैसे भी नहीं देगा। ईश्वर ज़िन्दगी गँवाने को नहीं वल्कि वनाने को देता है। मालूम नहीं तुम मेरी वात को समझने की कोशिश क्यों नहीं करते ?"

रामू सुनकर हँस पड़ा। केशो ने रामू को हँसते देख थोड़ी तेज़ी से कहा—"इसमें हँसने की क्या वात है ? तुम्हारे फ़ायदे की वात कर रहा हूं।"

"ताऊ, ज़िंदगी की हर वात में फ़ायदा न देखने ही से फ़ायदा है। आप नौकरी के लिए कहते हैं तो चलिये मैं तैयार हूं। देखूं ऐसी कौन-सी हज़ारों की नौकरी है जहाँ मुझ जैसा मूर्ख भी कुछ कर सकता है। रह गई कर्नल चटर्जी की वात, तो आप मेरा भरसक अपमान कर लीजिये, लेकिन उनका अपमान मत कीजिये।···"

"कैसा अपमान···? शादी से किसी का अपमान होता है ?"

"किसी लड़की से वात करने का यह तो मतलव नहीं होता कि विना अपनी हैसियत देखे उससे शादी की सोचने लगे।"

"यहाँ तो वरखुरदार किसी लड़की नहीं वल्कि खास लड़की की वात हो रही है। रह गई हैसियत की वात, तो उसका ठेका मैं लेता हूँ। ज़मीन से दो फुट उठे-उठे घूमोगे।"

"आप कहाँ की वात कहाँ ले जा रहे हैं ? किसी और के सामने यह वात कहीं न कह वैठना।"

' रामू, देखो हर चीज़ की कामयावी का एक उसूल होता है। वह यह कि हर काम का एक अवसर होता है। उस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। अवसर को खोने का नाम ही सफलता को खोना है। इस समय तुम्हारी उम्र है और सवसे वड़ी वात तो उस लड़की की है। कल को उसकी यदि कहीं और शादी हो गई तो तुम टापते ही रह जाओगे। अक्ल-मंद वह होता है जो चीज के हाथ में आने से पहले ही उस चीज़ के हाथ से न निकल जाने का उपाय सोच रखे। तुम मर्द हो। पहला कदम मर्द को उठाना चाहिये। नामर्दों की तरह ही-ही···करते, दाँत दिखाते हुए क्या घूमते हो ? ज़िन्दगी के सव सवाल एक वार ही में हल हो जायेंगे···ज़रा ध्यान से सुनने की वात है।"

आया ने बताया कि घर के सब लोग बाहर गये हुए हैं। रेणु शायद अपने कमरे में है। रामू छत पर गया तो देखा कि मुंडेर पर एक पैर रखे, रेणु पीछे हाथ किये आसमान को एकटक देख रही है। रामू रेणु की यह मुद्रा देखकर रुका, उसने सोचा कि देखूं भला रेणु क्या करती है? दो-तीन मिनट तक रामू रेणु को एकटक देखता रहा, फिर रेणु की ओर धीरे-धीरे बढ़ा। सहसा छाया को अपने करीब आते देख रेणु घबराकर पीछे हट गई। रामू जोर से हँस पड़ा। रेणु संभल गई। रामू ने देखा कि रेणु आज जरूरत से ज्यादा गंभीर है। रामू ने यह भी देखा कि रेणु की आँखें जैसे उसके चेहरे पर गड़ी जा रही हैं। रेणु की अंगुलियाँ ऊन के एक धागे से उलझी हुई थीं। रेणु ने कहा—"आज बड़े खुश नजर आ रहे हो, क्या बात है?..."

"ऐसी कोई बात नहीं है।"

"कमरे में चलो।" रामू रेणु के पीछे हो लिया। रामू ने देखा कि कमरा जैसे पिछले कई दिनों से ठीक नहीं किया गया है। चीजें अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। रेणु के चेहरे पर भी उदासी एवं गंभीरता थी। उसने रामू को देखा और देखकर उसकी पलकें झुक गईं। वह ऊन के टुकड़े से उलझी हुई थी। उसे कभी अंगुलियों पर लपेटती और कभी खोलती। रेणु ने देखा कि रामू का ध्यान उसकी ओर नहीं है। रेणु ने कहा—"मास्टर बाबू" न कहकर यदि आपको रामू नाम से पुकारूँ तो एतराज है आपको?"

"बन्दे को चाहे जिस नाम से पुकारिये।"

"लगता है आज मूड में हो।"

"खैर यह तो मालूम नहीं, परन्तु इतना जरूर दिखता है कि आज तुम मूड में नहीं हो।"

"मेरे सामने एक भारी पत्थर आ गया है। रास्ते में रुकावट आ गई है। तुम्हारी मदद चाहती हूँ।"

"मैं भला किस काम आ सकता हूँ?"

"चाहो तो बहुत काम आ सकते हो।"

"हुक्म दो।" रेणु एक पल रुकी। उसने रामू को देखा और पूछा: "क्या कभी तुमने अपने विवाह के बारे में विचार किया है?"

इस अप्रत्याशित-से प्रश्न के पूछे जाने पर रामू को आश्चर्य तो हुआ, किन्तु अपने मनोविकारों को दबाते हुए उसने कहा—"विवाह···! उसके लिए हैसियत···तथा दुनियादारी की अक्ल चाहिये···जो अपने पास नहीं है।"

"खैर यह साधारण-सी बात है। तुम्हारी हैसियत बनाने में मैं तुम्हें सहायता दे सकती हूँ।"

"आज तुम्हारे सिर पर यह क्या खब्त सवार हुई है! ···यह भी कोई प्रश्न है?"

"रामू, मैं मजाक नहीं कर रही। तुमसे एक सवाल का जवाब माँग रही हूँ। मान लो तुम्हारी हैसियत हो जाए तो क्या तुम विवाह करोगे?"

"तुम आखिर मुझे मुर्गा बनाकर किस लड़की पर मेहरबानी करना चाहती हो।"

"एक लड़की के भविष्य का सवाल है। बात इतनी सहज नहीं है जितनी तुम समझ रहे हो। उस लड़की के भविष्य का सवाल है। मौका ही कुछ ऐसा है?"

"तो लड़की को देख लिया जाए।"

"तुमने मेरे साथ उसे देखा है।"

"कब?"

"ये सब बाद की बातें हैं जो किसी भी तरह निपट ली जाएँगी। पहले तुम्हें वचन देना होगा कि तुम विवाह के लिए तैयार हो।"

"तुम तो आज इस तरह से पूछ रही हो जैसे कि मेरी कोई अभि-भाविका हो।"

"आखिर मेरा भी तो तुम पर कुछ अधिकार है।"

"कुछ क्यों बहुत अधिकार है, किन्तु यह बात मुझे कुछ असंगत प्रतीत हो रही है।"

"जब तक तुम वचन नहीं दोगे मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने की। मुझे डर है कि तुम कहीं दो कदम आगे जाकर पीछे न हट जाओ।"

रामू सुनकर गंभीर हो गया। वह नीचे देखने लगा। रेणु कुछ उत्साहित हुई। वह कुछ करीब आई···उसने कहा, "मुझ पर भी विश्वास नहीं है।"

"विश्वास की बात नहीं है रेणु···यह एक विचित्र सवाल है···जिसका मैं तुम्हें जवाब नहीं दे सकता।"

"विचित्र क्यों ? क्या कोई नया काम करने जा रहे हो? क्या लोगों के विवाह नहीं होते ?"

"अपने लिए तो बिलकुल नया है।···पर तुम्हें आज यह क्या सूझा?"

"मुझे कुछ नहीं सूझा ··एक तो उस लड़की का सवाल है···दूसरे···मेरा माँ···।"

"ओहो···तो यों क्यों नहीं कहती···इतनी लंबी भूमिका बाँधने की क्या आवश्यकता थी ?·· कब हो रही है ?"

"इसमें आश्चर्य करने की कौनसी बात है ? माँ-बाप के लिए लड़की की शादी एक बहुत बड़ी बात होती है। दामाद जितना अच्छा मिले, उन्हें उतनी ही प्रसन्नता होती है।·· क्या तुम्हें प्रसन्नता है ?"

"प्रसन्नता किसे नहीं होगी ? धूम-धड़ाका होगा। बाजे बजेंगे, मिठाई खाने को मिलेगी।"

"रामू, मुझे मालूम नहीं था कि तुम केवल इतनी ही अकल के मालिक हो। बाज़ार से थोड़ी-सी अकल उधार ले ली होती तो कहीं अच्छा होता।"

रामू, प्रकट रूप से जितना प्रसन्न हुआ था, बात वास्तव में ठीक उसके विपरीत थी। यह समाचार सुनकर उसे ऐसा लगा कि जैसे उसके पैरों तले से ज़मीन खिसक रही है। उसे लगा कि कोई मज़बूत-सी चीज़, जिसे वह आज तक पकड़े हुए था, आज उससे छूटना चाहती है। वह कुर्सी पर बैठ गया। रेणु रामू की हर प्रतिक्रिया को बारीकी से नोट कर रही थी। रामू ने अपने हाथ के नाखूनों को परखते हुए कहा—"किससे हो रही है ?"

रेणु ने ड्रॉयर खोला और एक फोटो रामू की गोद में फेंकते हुए कहा—"इससे।" रामू ने लड़के का चित्र देखा। लड़का स्मार्ट था। खूबसूरत भी। फोटो देखकर रामू ने रेणु को देखा और पूछा— "क्या करता है ?"

"माँ-बाप का अकेला लड़का है। इस वर्ष आइ० ए० एस० किया है। पोस्टिंग भी शायद हो गई है। ··खैर वह तो सब ठीक है, परन्तु उसमें

क्या ?"

"क्यों ? 'उससे क्या' का मतलब मैं नहीं समझा। शक्ल-सूरत, नाक-नक्शा, घर-खानदान, तनख्वाह, किसी बात में तो कम नहीं है। यही सब बातें तो देखी जाती हैं लड़के में···सब-कुछ तो है उसके पास।"

"तुम भी यही सलाह देते हो।"

"जो भी तुम्हारा शुभचिंतक होगा, वह इससे भिन्न सलाह नहीं देगा।"

"मेरे जितने भी शुभचिंतक हैं उनसे तुम्हारा दर्जा अलग है।"

"किसका सिलेक्शन है ?"

"माँजी का।"

"कर्नल साहब क्या कहते हैं ?"

"उन्होंने सब-कुछ मेरी पसंद पर छोड़ दिया है। परन्तु माँजी एक कदम भी पीछे हटने को तैयार नहीं हैं।"

"तुम्हारी क्या इच्छा है ?" रेणु की आँखें एकबारगी चमक उठीं, उसके बाद ही तत्क्षण झुक गईं। रेणु ने कहा—"तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ?"

"ठीक ! तो···तुम इस दुविधा में पड़ी हो कि तुम्हारा विवाह हो जायेगा तो मैं क्या करूँगा ? इसलिए मेरा विवाह भी हो जाना चाहिये।"

रेणु की इच्छा हुई कि रामू से वह सब-कुछ साफ-साफ कह दे, परन्तु बार-बार हिम्मत करके भी वह जैसे अनायास चुप हो जाती। उसे लगता कि उसके गले को जैसे किसी ने पकड़ लिया है। उसे अपने हाथ-पैर निष्प्राण होते हुए लगे···। उसे लगा कि उसके हाथ-पैर जैसे सहसा ठंडे हो रहे हैं। उसने अपने मन को कड़ा कर आखिर कह ही दिया—

"लड़की तुम्हारे सामने है···जिसे आज तक तुमने पढ़ाया।"

"मतलब···? क्या कहती हो ?" रामू कुर्सी से उछल पड़ा। "रेणु, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?"

"इन सब बातों पर तुम्हें विचार करने की जरूरत नहीं है। कल तक मैं तुम्हारा उत्तर चाहती हूँ। कल इसी समय तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। यदि तुम नहीं आये तो समझूँगी कि तुम्हें यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं है। रह गये···सन्देह, शंकाएँ···प्रश्न···तो उन्हें लेते आना···सबके उत्तर मेरे पास हैं।" रामू काफ़ी देर मौन रहा।

३

'बजरंग पहलवान का खून हो गया।'

यह खबर बस्ती में बिजली की तरह फैल गई। अखाड़े के शागिर्द पुलिस कोतवाली पहुँचे, देखा तो लाश बजरंग पहलवान की ही थी। लाश को बस्ती लाकर शागिर्दों ने उसका दाह-संस्कार किया। पहलवान का खून किसी ने रात के समय कर दिया था। वह मवाफ़िरी रोड से बस्ती को लौट रहा था। सड़क पर रोशनी नहीं थी। महाराज बाग की ओर जैसे ही वह मुड़ा तो पास के ही पुल से अचानक उस पर दो लोग झपटे। एक आदमी ने पीछे से पहलवान का गला पकड़ा, दूसरे ने उसका पेट चीर दिया। पहलवान ने चीख-पुकार की थी। पास के मकानों से दो-चार लोग भी दौड़े थे। किन्तु तब तक खूनी पुल से नीचे कूदकर नाले में ही लापता हो चुके थे।

खून से सनी पहलवान की लाश सड़क के बीचों-बीच पड़ी थी। पहलवान की तो हत्या हो चुकी थी, किन्तु कानून के शिकंजे खूनी को पकड़ने के लिये खुल चुके थे। खुफिया पुलिस के सिपाही तिलनखेड़ी बस्ती में फैल गये। परन्तु कुछ भी सुराग नहीं लगा। केशो की सहायता से पुलिसवालों ने थोड़ा-बहुत पता लगाया। आखिर मारुति के नाम का वारंट लेकर पुलिसवाले हाजिर हुए। घर के सामने पुलिस को देखते ही लक्ष्मी घबराई।

पाँडुरंग बाहर बिछे हुए तख्त पर बैठा था। उसका बायाँ हाथ काँप रहा था। लक्ष्मी एवं पार्वती ने बुरी तरह रोना-पीटना शुरू किया। मारुति निश्चल खड़ा था। वह लक्ष्मी से कह रहा था —"घबड़ाने की कोई बात नहीं है।"

मारुति को दफा ३०२ के अन्तर्गत बजरंग के खून के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था। रात-भर दरवाज़ा खोले लक्ष्मी मारुति का इंतजार करती रही परन्तु मारुति नहीं लौटा। पार्वती की आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुर्गों की बाँग के साथ आज भी सुबह हुई।...घड़ी के काँटे सरकते गये और आखिर दस बज गये।...पर मारुति न लौटा। पाँडुरंग

ने लक्ष्मी को समझाया कि पुलिस ने मारुति का हवालात में बंद कर दिया होगा, इसलिए उसकी आशा लगाये बैठे रहना व्यर्थ है। हारकर···प्रतीक्षा करते-करते थककर पार्वती और लक्ष्मी ने मारुति के लिए भोजन बनाया और कोतवाली की ओर चली दीं।

पार्वती को बाहर ही खड़ा कर लक्ष्मी कोतवाली की ओर बढ़ गई। उसने जाकर हवालात के सींखचों से झाँका। पहले तो पहरे पर तैनात सिपाही ने लक्ष्मी को फटकारा, परन्तु लक्ष्मी, के गिड़गिड़ाने पर उसे सींखचों तक जाने दिया।···सींखचों से झाँककर लक्ष्मी मारुति को खोजने का प्रयास करने लगी। वह धूप के तेज़ प्रकाश से अंदर आई थी, इसलिए अंदर वह साफ़-साफ़ देखने में असमर्थ थी। वैसे भी अंदर काफ़ी अँधेरा था।

"हवलदार साब···मेरे मारुति ने खून नहीं किया···झूठ है।"

"हरामज़ादी, तो रोती क्यों है? खून नहीं किया तो छूट जायेगा···।" पुलिस कान्स्टेबल ने उसे डाँटते हुए कहा।

"ऐ मुंशी, खबरदार जो हरामज़ादी कहा तो ! सीधे मुंह बोलना है तो बोल, नहीं तो चुप रह।" मारुति ने हवालात से गरजकर कहा। ऐसा लगा जैसे पिंजरे से कोई शेर दहाड़ा हो। मारुति की जलती हुई लाल आँखें उसके काले शरीर में इस प्रकार लग रही थीं जैसे लोहे के दो कटोरों में आग जल रही हो।

"नालायक, चिल्लाता क्यों है ?" पहरे के सिपाही ने कहा।

"तू गाली क्यों बकता है ?" अब तक इंसपैक्टर आ चुका था। उसने कहा —"आपको अगर गालियाँ इतनी नापसन्द थीं तो यहाँ आये क्यों ? खून क्यों किया ? अभी तक हेकड़ी गई नहीं।"

"मैंने खून नहीं किया···तुम लोगों ने मुझे ज़बरदस्ती पकड़ा है··· अदालत में देखूंगा।"

लक्ष्मी सींखचे पकड़कर रोती ही जा रही थी। पहरे के सिपाही ने लक्ष्मी को धक्का मारकर बाहर निकालने का प्रयास किया। धक्का लगते ही रोटियों का डिब्बा ज़मीन पर गिर पड़ा। उसमें की चीज़ें बिखर गईं। जिन रोटियों को, तरकारी और दाल को, लक्ष्मी तथा पार्वती ने बड़े

यत्न तथा चाव से बनाया था वे सब धून चाट रही थीं। तिल-तिल अपना पसीना डालकर इन रोटियों को लक्ष्मी ने बनाया था। इन रोटियों को बनाते समय वह यह सोच-सोचकर पुलकित हुई थी कि इन्हें मारुति खायेगा। रात-भर का भूखा मारुति इन रोटियों को खाकर तृप्त होगा। मारुति ने गुस्से से गरजकर कहा—"आई, तू यहाँ क्यों खड़ी है? घर जा···।"

"बेटा, रोटी तो खा ले।"

'पुलिस ने बहुत रोटियाँ खिलाई हैं···तेरी रोटियों की भूख नहीं है।"

अब तक लक्ष्मी रोती हुई बाहर आ चुकी थी। पार्वती दूर खड़ी सिसकियाँ भर रही थी। मारुति को लक्ष्मी ने पार्वती के आगमन की सूचना नहीं दी थी। लक्ष्मी पार्वती के साथ दूर नीम की छाया में बैठ गई।

उसी दिन साढ़े बारह बजे के करीब मारुति को हवालात से निकाला गया। उसे अदालत में पेश करना था। उसे पुलिस-लारी में ले जाया जा रहा था। हथकड़ी लगवाने के लिए पुलिस ने मारुति से हाथ बढ़ाने के लिए कहा।

मारुति ने इन्कार कर दिया। हाथापाई की नौबत आ गई। जो पुलिस कान्स्टेबल आगे बढ़ा था उसे मारुति ने पीछे ढकेल दिया। दूसरा पुलिसवाला बढ़ा। उसे मुँह पर घूँसा पड़ा। बात बढ़ती देखकर करीब आधा दर्जन पुलिस कान्स्टेबल मारुति की ओर एक साथ झपटे। परन्तु मारुति हथकड़ी लगवाना स्वीकार नहीं कर रहा था। मारुति पुलिसवालों से अकेला लड़े जा रहा था।

मारुति जमीन पर गिरा दिया गया। उसकी कमीज तार-तार हो गई थी। वह केवल एक खाकी चड्डी पहने लड़ता-भिड़ता, मार खाता पुलिसवालों को गालियाँ देता जा रहा था। उसके बाल धूल से भर गये थे। वह जमीन पर मुँह के बल औंधा पड़ा था। एक कान्स्टेबल ने मारुति की कमर पर लात मारी। दूसरे ने उसकी टाँगें रस्सी से बाँध दीं। उसके हाथ बाँधकर, उसे हथकड़ी पहनाकर, गठरी बना लारी में फेंक दिया गया।

जब यह हाथापाई चल रही थी तो लक्ष्मी को कौतूहल हुआ। उसने सोचा कोतवाली के पास यह कैसा झगड़ा? वह उत्सुकतावश सामने आई, देखा तो मारुति पुलिसवालों से उलझा हुआ है। मारुति का सारा शरीर

ने लक्ष्मी को समझाया कि पुलिस ने मारुति को हवालात में बंद कर दिया होगा, इसलिए उसकी आशा लगाये बैठे रहना व्यर्थ है। हारकर···प्रतीक्षा करते-करते थककर पार्वती और लक्ष्मी ने मारुति के लिए भोजन बनाया और कोतवाली की ओर चली दीं।

पार्वती को बाहर ही खड़ा कर लक्ष्मी कोतवाली की ओर बढ़ गई। उसने जाकर हवालात के सींखचों से झाँका। पहले तो पहरे पर तैनात सिपाही ने लक्ष्मी को फटकारा, परन्तु लक्ष्मी, के गिड़गिड़ाने पर उसे सींखचों तक जाने दिया।···सींखचों से झाँककर लक्ष्मी मारुति को खोजने का प्रयास करने लगी। वह धूप के तेज़ प्रकाश से अंदर आई थी, इसलिए अंदर वह साफ़-साफ़ देखने में असमर्थ थी। वैसे भी अंदर काफ़ी अँधेरा था।

"हवलदार साब···मेरे मारुति ने खून नहीं किया···झूठ है।"

"हरामज़ादी, तो रोती क्यों है? खून नहीं किया तो छूट जायेगा···।" पुलिस कान्स्टेबल ने उसे डाँटते हुए कहा।

"ऐ मुंशी, खबरदार जो हरामज़ादी कहा तो ! सीधे मुँह बोलना है तो बोल, नहीं तो चुप रह।" मारुति ने हवालात से गरजकर कहा। ऐसा लगा जैसे पिंजरे से कोई शेर दहाड़ा हो। मारुति की जलती हुई लाल आँखें उसके काले शरीर में इस प्रकार लग रही थीं जैसे लोहे के दो कटोरों में आग जल रही हो।

"नालायक, चिल्लाता क्यों है ?" पहरे के सिपाही ने कहा।

"तू गाली क्यों बकता है ?" अब तक इंसपैक्टर आ चुका था। उसने कहा —"आपको अगर गालियाँ इतनी नापसन्द थीं तो यहाँ आये क्यों ? खून क्यों किया ? अभी तक हेकड़ी गई नहीं।"

"मैंने खून नहीं किया···तुम लोगों ने मुझे ज़बरदस्ती पकड़ा है··· अदालत में देखूँगा।"

लक्ष्मी सींखचे पकड़कर रोती ही जा रही थी। पहरे के सिपाही ने लक्ष्मी को धक्का मारकर बाहर निकालने का प्रयास किया। धक्का लगते ही रोटियों का डिब्बा ज़मीन पर गिर पड़ा। उसमें की चीज़ें बिखर गईं। जिन रोटियों को, तरकारी और दाल को, लक्ष्मी तथा पार्वती ने बड़े

यत्न तथा चाव से बनाया था वे सब धूल चाट रही थीं। तिल-तिल अपना पसीना डालकर इन रोटियों को लक्ष्मी ने बनाया था। इन रोटियों को बनाते समय वह यह सोच-सोचकर पुलकित हुई थी कि इन्हें मारुति खायेगा। रात-भर का भूखा मारुति इन रोटियों को खाकर तृप्त होगा। मारुति ने गुस्से से गरजकर कहा—"माई, तू यहाँ क्यों खड़ी है? घर जा···।"

"बेटा, रोटी तो खा ले।"

"पुलिस ने बहुत रोटियाँ खिलाई हैं···तेरी रोटियों की भूख नहीं है।"

अब तक लक्ष्मी रोती हुई बाहर आ चुकी थी। पार्वती दूर खड़ी सिसकियाँ भर रही थी। मारुति को लक्ष्मी ने पार्वती के आगमन की सूचना नहीं दी थी। लक्ष्मी पार्वती के साथ दूर नीम की छाया में बैठ गई।

उसी दिन साढ़े बारह बजे के करीब मारुति को हवालात से निकाला गया। उसे अदालत में पेश करना था। उसे पुलिस-लारी में ले जाया जा रहा था। हथकड़ी लगवाने के लिए पुलिस ने मारुति से हाथ बढ़ाने के लिए कहा।

मारुति ने इन्कार कर दिया। हाथापाई की नौबत आ गई। जो पुलिस कान्स्टेबल आगे बढ़ा था उसे मारुति ने पीछे ढकेल दिया। दूसरा पुलिस-वाला बढ़ा। उसे मुँह पर घूँसा पड़ा। बात बढ़ती देखकर करीब आधा दर्जन पुलिस कान्स्टेबल मारुति की ओर एक साथ झपटे। परन्तु मारुति हथकड़ी लगवाना स्वीकार नहीं कर रहा था। मारुति पुलिसवालों से अकेला लड़े जा रहा था।

मारुति जमीन पर गिरा दिया गया। उसकी कमीज तार-तार हो गई थी। वह केवल एक खाकी चड्ढी पहने लड़ता-भिड़ता, मार खाता पुलिसवालों को गालियाँ देता जा रहा था। उसके बाल धूल से भर गये थे। वह जमीन पर मुँह के बल औंधा पड़ा था। एक कान्स्टेबल ने मारुति की कमर पर लात मारी। दूसरे ने उसकी टाँगें रस्सी से बाँध दीं। उसके हाथ बाँधकर, उसे हथकड़ी पहनाकर, गठरी बना लारी में फेंक दिया गया।

जब यह हाथापाई चल रही थी तो लक्ष्मी को कौतूहल हुआ। उसने सोचा कोतवाली के पास यह कैसा झगड़ा? वह उत्सुकतावश सामने आई, देखा तो मारुति पुलिसवालों से उलझा हुआ है। मारुति का सारा शरीर

छिल रहा था। जगह-जगह खून के दाग लगे थे। उसके घाव धूल ग्रौर खून से सने थे। मारुति के जब दोनों हाथ पीछे की ग्रोर बाँध दिये गये तो उसने ग्रपने बाल झटके। सामने पार्वती ग्रौर लक्ष्मी को देखते ही मारुति बौखला उठा। उसने दोनों को गालियाँ देते हुए कहा—"घर जाग्रो।"

पार्वती को देखकर एक पुलिसवाले ने उस पर छींटा कसा। मारुति के हाथ बँधे हुए थे। उसने पुलिसवाले के मुँह पर थूक दिया। प्रत्युत्तर में उस पुलिसवाले ने मारुति को थप्पड़ रसीद किया।

पुलिस की लारी धूल उड़ाती हुई चली गई। पार्वती ग्रौर लक्ष्मी ठगी-सी खड़ी थीं। लक्ष्मी की समझ में कुछ नहीं ग्रा रहा था। सामने सीता-वर्डी के चौराहे से नाथूलाल चिल्ला रहा था, "ग्राई, खड़ी क्या है···घर को जा, घर को···यह पोलीस राज है···जिस ग्रादमी ने जिंदगी में सुई नहीं चुराई उसे खून के ग्रपराध में पकड़ा है···माई! यह सब ताकत का नशा है—वाह रे···पुलिस···ग्रौर वाह री सरकार! इसी कोतवाली में ग्रौर इसी नीम के पेड़ की छाया में कांग्रेसी भी इतनी बुरी तरह से नहीं पिटते थे। माई, तू डर मत···तेरे लालों का खून···बेकार नहीं जायेगा··· जिस धूल ग्रौर मिट्टी में उसकी एक-एक खून या पसीने की बूंद गिरी है··· उसी मिट्टी से सौ-सौ सपूत उठेंगे ग्रौर इनसे पूरा-पूरा बदला लेंगे।"

ग्रौर लक्ष्मी फटी-फटी ग्राँखों से नाथूलाल को देखती है जैसे कोई पागल को देख रहा हो।

४

रामू के सहसा चले जाने से रेणु को प्रसन्नता नहीं हुई। वह सोचती हुई खड़ी रही। ड्राइंग रूम में ग्राकर वह कौच में धँस गई। वह सोचती है कि रामू एकदम प्रसन्न क्यों नहीं हुग्रा? सहसा गम्भीर क्यों हो उठा? रात को उसे भोजन भी नहीं रुचा।

काफी रात गये वह बिस्तर पर पड़ी-पड़ी सोचती रही। उसे नींद ग्रा ही गई। उसने स्वप्न देखा—उसका विवाह हो रहा है। रामू ग्रौर

यह, मंडप में वेदी के समक्ष बैठे हैं। शहनाइयों के स्वर गूंज रहे हैं। वह स्वयं हर्ष से पागल हुई जा रही है। घूंघट की ओट से वह रामू को देखती है। रामू मुस्करा रहा है। रेणु की मुस्कान का उत्तर वह अपनी मुस्कान से देता है। शहनाई के स्वरों को दबाते हुए औरतों के मंगल-गीत गूंज उठते हैं। रामू रेणु के हाथ अपने हाथों में लेकर दबाता है। रेणु के शरीर में एक तरह की झनझनाहट दौड़ जाती है।

रेणु की नींद खुली। देखा तो सुबह हो रही थी।

वास्तविकता के हथौड़े ने स्वप्न को चूर-चूरकर दिया था। रेणु को लगता है कि जैसे उसके सारे शरीर में दर्द हो रहा है। उसने जमुहाई ली और चादर दूर फेंककर बिस्तर से बाहर आई।

वह सोचती है, काश सारी दुनिया एक स्वप्न होती! वास्तविकता के फीकेपन में वह स्वप्नों द्वारा मिठास खोजने का प्रयास करती है। दिल तसल्ली देता है कि शाम को रामू अवश्य आयेगा।

सन्ध्या आई। रेणु ने स्नान किया और सज-धजकर अपने कमरे में बैठ गई। रेणु की मां ने सोचा कि शायद लड़की कहीं बाहर जा रही है। इस कारण उसने रेणु से कुछ भी नहीं पूछा। रेणु अपने कमरे में मासिक पत्रों की टोकरी लेकर बैठ गई।

रेणु का जी नहीं लगता था…। रेणु बाहर छज्जे पर आकर सड़क से आने-जाने वालों को देखती है। पर मजाल है कि उनमें रामू कहीं दिखाई भी पड़ जाये। वह अन्दर आती है और अनमने भाव से साप्ताहिक पत्रों के चित्र देखने लगती है। चित्र देखने में उसका जी नहीं लगा। वह बाहर आ गई।

रेणु की माँ सोचती है कि यह पगली दो घंटे से ऊपर क्या सजधज कर बैठी है? यदि बाहर जाना है तो जाती क्यों नहीं? मन में वह अपने-आपसे ही प्रश्न करती है और निरुत्तर हो जाती है। वह रेणु के कमरे की ओर देखती है, परन्तु पूछने की हिम्मत नहीं है। सोचती है कि यह लड़की है या पटाखा। अभी छेड़ूंगी तो फट पड़ेगी। रात आ गई, सड़क पर बिजली के बल्ब जगमगा उठे, पर रामू का पता नहीं।

रेणु जैसे अपने-आपको समझाती हुई कहती है कि उसे इस तरह

मायूस नहीं होना चाहिए। कल यदि रामू से टाइम ले लिया होता तो कहीं अच्छा होता।

कभी-कभी रामू रात के नौ-नौ बजे भी तो आया है। रेणु घड़ी को देखती है। कांटे अपनी चिरपरिचित रफ्तार से बढ़े जा रहे हैं। रेणु को लगा जैसे सैकेंड के कांटे के अतिरिक्त सारी घड़ी बन्द पड़ी है। यदि चल रही है तो नौ क्यों नहीं बजा देती?

आया रेणु को एक पत्र दे गई। पूछने पर पता लगा कि पत्र कोई लड़का दे गया था। पत्र रामू का ही था।...रेणु ने पत्र खोला और पढ़ा। यह पहला मौका था जबकि रामू ने रेणु को कोई पत्र लिखा था। उसने शीघ्रता से लिफाफा फाड़ा। जल्दबाज़ी के कारण वह पत्र का एक कोना भी फाड़ गई। पत्र था—

"रेणु,

"हाथ कांपते हैं, यह पत्र लिखते और शर्म आती है यह सोचकर कि तुम इसे पढ़ोगी। मैंने तुम्हारे प्रस्ताव पर अच्छी तरह से विचार किया है और सोचकर जिस निर्णय पर मैं पहुँचा हूँ उस फैसले को लेकर तुम तक पहुँचने की मेरी हिम्मत नहीं है। वास्तव में अपनी कमज़ोरी पर आवरण डालने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हें मैं जानता हूँ और अच्छी तरह से जानता हूँ। तुमने मेरी काफ़ी प्रतीक्षा की होगी। हज़ार तरह की संभावनाएँ प्रतीक्षा करते-करते की होंगी।

"रेणु! पिछले सात-आठ सालों से तुम्हारे परिवार ने मुझे जो स्थान दिया उसके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। दुनिया की सारी दुख-तकलीफ लेकर जब मैं तुम्हारे परिवार में आता तो मुझे ऐसा महसूस होता मानो मैं स्वर्ग में आ पहुँचा। तुम्हें या तुम्हारी बहन को पढ़ाकर जब निकलता तो घर लौटने की इच्छा ही नहीं होती थी। सोचा करता था कि काश मैं भी कर्नल साहब के परिवार का एक सदस्य होता! जी-जान से उनकी खिदमत करता। उनकी हर बात को सिर-आँखों पर रखता। अवसर आने पर उनके लिए अपनी जान तक गँवाने को तैयार हो जाता। वे बहुत अच्छे हैं।

"तुमने जो प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा था, उसे मैं तुम्हारी भावुकता ही

कहूँगा। तुम स्वयं ही इस पर पुनर्विचार करो। यह कोई मामूली प्रश्न नहीं है। इतने बड़े सवाल का जवाब तुम एक दिन में, एक घंटे में और एक पल में चाहती हो। तुम्हारे समस्त जीवन का प्रश्न है। जल्दबाजी में मैं ऐसा कोई उत्तर कैसे दे दूं जिसमें तुम्हारा भविष्य खतरे में पड़ जाये! आखिर मैंने तुम लोगों का नमक खाया है।

"यदि तुमने अपने प्रस्ताव के सिद्धांत पक्ष की अपेक्षा व्यवहार पक्ष पर जोर दिया होता तो कहीं ठीक हुआ होता! तुम्हारा विवाह होना चाहिए···जरूर, कई कारण हैं। परन्तु उसके लिए मैं भला किस रूप में उपयुक्त हूँ? सबसे बड़ी बात आर्थिक स्तर की है। आर्थिक दृष्टि से मैं तुम्हारे स्तर का आदमी नहीं हूँ। इसे मैं व्यंग्य या किसी शिकायत के तौर पर नहीं कहता, बल्कि अपनी मजबूरी के तौर पर कहता हूँ। मैं आज तक अपने से ऊँची हैसियत वालों से मिलता रहा हूँ। परन्तु मैं उन सबसे मिलकर यह महसूस करता रहा हूँ कि जैसे उनसे मिलकर भी नहीं मिल पाया हूँ। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि मेरे पिता रिक्शा चलाते हैं। आजकल बीमारी एवं बुढ़ापे के कारण वह भी बंद हो गया है। मेरी माँ ने बर्तन माँजकर मुझे बड़ा किया है। तिलनखेड़ी के झोपड़ों में जिन्दगी बसर की है। आर्थिक दृष्टि से तुममें एवं मुझमें दो वर्गों का अन्तर है। मजा तो यह है कि जिस बस्ती में मैंने जीवन के सुनहरे दिन गुजार दिए उस बस्ती के लोगों में भी कभी नहीं मिल पाया। बस्ती के छोटे-से सरोवर में एक तैरते हुए पत्थर के समान हूँ। जो पानी में तैरता हुआ भी उस पानी का कभी न हो सका और न ही पानी में डूब सका। उसे तुम उठाने का प्रयास कर रही हो। इसे मैं तुम्हारा अज्ञान नहीं बल्कि तुम्हारी महानता कहूँगा। मेरे मन में तुम्हारे लिए जो भाव हैं उन्हें यहाँ कैसे व्यक्त करूँ?

"फिर मैं न तो तुम्हारी जाति का हूँ और न ही तुम्हारी बिरादरी का। कम-से-कम मुझे बंगाली तो होना चाहिए था, जिससे तुम्हारी प्रान्तीय संस्कृति का तो हो सकता। खान-पान, रहन-सहन आदि में एक भिन्न व्यक्ति के साथ तुम कैसे गुजारा करोगी? फिर तुम एम० ए०, मैं बी० ए०···। रेगु, कहाँ तक एँडजस्ट करोगी? कहाँ तक मुझसे मिलने के लिए अपने स्तर से नीचे उतरोगी? इतना सब बलिदान क्यों?

मायूस नहीं होना चाहिए। कल यदि रामू से टाइम ले लिया होता तो कहीं अच्छा होता।

कभी-कभी रामू रात के नौ-नौ बजे भी तो आया है। रेणु घड़ी को देखती है। काँटे अपनी चिरपरिचित रफ्तार से बढ़े जा रहे हैं। रेणु को लगा जैसे सैकेंड के काँटे के अतिरिक्त सारी घड़ी बन्द पड़ी है। यदि चल रही है तो नौ क्यों नहीं बजा देती ?

आया रेणु को एक पत्र दे गई। पूछने पर पता लगा कि पत्र कोई लड़का दे गया था। पत्र रामू का ही था।...रेणु ने पत्र खोला और पढ़ा। यह पहला मौका था जबकि रामू ने रेणु को कोई पत्र लिखा था। उसने शीघ्रता से लिफाफा फाड़ा। जल्दबाजी के कारण वह पत्र का एक कोना भी फाड़ गई। पत्र था—

"रेणु,

"हाथ काँपते हैं, यह पत्र लिखते और शर्म आती है यह सोचकर कि तुम इसे पढ़ोगी। मैंने तुम्हारे प्रस्ताव पर अच्छी तरह से विचार किया है और सोचकर जिस निर्णय पर मैं पहुँचा हूँ उस फैसले को लेकर तुम तक पहुँचने की मेरी हिम्मत नहीं है। वास्तव में अपनी कमज़ोरी पर आवरण डालने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हें मैं जानता हूँ और अच्छी तरह से जानता हूँ। तुमने मेरी काफ़ी प्रतीक्षा की होगी। हज़ार तरह की संभावनाएँ प्रतीक्षा करते-करते की होंगी।

"रेणु ! पिछले सात-आठ सालों से तुम्हारे परिवार ने मुझे जो स्थान दिया उसके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। दुनिया की सारी दुख-तकलीफ लेकर जब मैं तुम्हारे परिवार में आता तो मुझे ऐसा महसूस होता मानों मैं स्वर्ग में आ पहुँचा। तुम्हें या तुम्हारी बहन को पढ़ाकर जब निकलता तो घर लौटने की इच्छा ही नहीं होती थी। सोचा करता था कि काश मैं भी कर्नल साहब के परिवार का एक सदस्य होता ! जी-जान से उनकी खिदमत करता। उनकी हर बात को सिर-आँखों पर रखता। अवसर आने पर उनके लिए अपनी जान तक गँवाने को तैयार हो जाता। वे बहुत अच्छे हैं।

"तुमने जो प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा था, उसे मैं तुम्हारी भावुकता ही

कहूँगा। तुम स्वय ही इस पर पुनर्विचार करो। यह कोई मामूली प्रश्न नही है। इतने बडे सवाल का जवाब तुम एक दिन में, एक घंटे मे और एक पल मे चाहती हो। तुम्हारे समस्त जीवन का प्रश्न है। जल्दबाजी मे मैं ऐसा कोई उत्तर कैसे दे दूँ जिससे तुम्हारा भविष्य खतरे मे पड़ जाये! आखिर मैंने तुम लोगों का नमक खाया है।

"यदि तुमने अपने प्रस्ताव के सिद्धात पक्ष की अपेक्षा व्यवहार पक्ष पर जोर दिया होता तो कहीं ठीक हुआ होता! तुम्हारा विवाह होना चाहिए···जरूर, कई कारण हैं। परन्तु उसके लिए मैं भला किस रूप मे उपयुक्त हूँ? सबसे बड़ी बात आर्थिक स्तर की है। आर्थिक दृष्टि से मैं तुम्हारे स्तर का आदमी नही हूँ। इसे मैं व्यग्य या किसी शिकायत के तौर पर नही कहता, बल्कि अपनी मजबूरी के तौर पर कहता हूँ। मैं आज तक अपने से ऊँची हैसियत वालो से मिलता रहा हूँ। परन्तु मैं उन सबसे मिलकर यह महसूस करता रहा हूँ कि जैसे उनसे मिलकर भी नही मिल पाया हूँ। तुम्हें शायद मालूम नही कि मेरे पिता रिक्शा चलाते हैं। आजकल बीमारी एवं बुढापे के कारण वह भी बद हो गया है। मेरी माँ ने बर्तन माँजकर मुझे बड़ा किया है। तिलनखेडी के झोपड़ों में जिन्दगी बसर की है। आर्थिक दृष्टि से तुममें एव मुझमें दो वर्गों का अन्तर है। मजा तो यह है कि जिस बस्ती में मैंने जीवन के सुनहरे दिन गुजार दिए उस बस्ती के लोगों में भी कभी नही मिल पाया। बस्ती के छोटे-से सरोवर में एक तैरते हुए पत्थर के समान हूँ। जो पानी में तैरता हुआ भी उस पानी का कभी न हो सका और न ही पानी मे डूब सका। उसे तुम उठाने का प्रयास कर रही हो। इसे मैं तुम्हारा अज्ञान नही बल्कि तुम्हारी महानता कहूँगा। मेरे मन में तुम्हारे लिए जो भाव हैं उन्हें यहाँ कैसे व्यक्त करूँ?

"फिर मैं न तो तुम्हारी जाति का हूँ और न ही तुम्हारी बिरादरी का। कम-से-कम मुझे बगाली तो होना चाहिए था, जिससे तुम्हारी प्रान्तीय संस्कृति का तो हो सकता। खान-पान, रहन-सहन आदि मे एक भिन्न व्यक्ति के साथ तुम कैसे गुजारा करोगी? फिर तुम एम० ए०, मैं बी० ए०···। रेणु, कहाँ तक एँडजस्ट करोगी? कहाँ तक मुझसे मिलने के लिए अपने स्तर से नीचे उतरोगी? इतना सब बलिदान क्यों?

"यह तो हो गईं मेरी अपने व्यक्तिगत परिचय की कुछ बातें जिनसे तुम अनजान थीं। यदि मैं स्वीकार भी कर लूं तो क्या कर्नल साहब मानेंगे? तुम्हारी माँजी सुनेंगी तो मुझे कच्चा ही चबा जायेंगी। तुम्हारे चरित्र पर सन्देह करेंगी सो अलग। तुम्हारा चरित्र जो शीशे की तरह चमकता रहा है—क्या उस पर मैं दाग लगाऊँ? लोग क्या सोचेंगे? तुम्हारे घरवाले तो शायद इसे भारी अपमान समझें। जीवन में हम जो कुछ भी सोचते हैं आवश्यक नहीं कि वह पूरा ही हो। कितने ही विचार हृदय-सागर पर बुलबुलों की तरह उठते हैं और फूट जाते हैं···तुम्हारे इस विचार को भी मैं इसी तरह का एक बुलबुला ही कहूँगा।

"रेणु, सोचो, क्या यह सब व्यावहारिक है? क्या कभी ऐसा हो भी सकता है? तुमने यह प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा, इसे मैं अपना आदर मानता हूँ। मैंने तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि तुम जैसी सर्वगुणसम्पन्न लड़की मुझ जैसे मूर्ख को भी अपना सब-कुछ समझ सकती है।···मेरे लिए यह बहुत बड़ा आदर है। जिस प्रकार कुपात्र को दान देना पाप होता है, उसी प्रकार एक अयोग्य पात्र को आत्मसमर्पण कर देना भी हानिकारक होता है। यदि तुम अपने आपका दान एक कुपात्र को दोगी तो उसका पाप तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

"जिस पात्र को तुम्हारे लिए चुना गया है वह तुम्हारे लिए सर्वथा उपयुक्त है। उस पात्र के सामने मेरा विचार करना सूरज और दीपक की तुलना करने के समान है।

"रेणु, उठो। भावुक न बनो और आँसू पोंछकर (मैं जानता हूँ इस समय तुम रो रही होगी।) इस विचार को दिल से निकाल फेंको। मन में यदि इस तरह के ज्वार-भाटे न आते रहें तो भला उसे मन कौन कहेगा? आशा है बुरा न मानोगी।

—रामू"

रेणु पत्र पढ़कर रोती जाती थी। आँसुओं के बीच से उसे खत के अक्षर नाचते-से नजर आते थे। उसने ओठ भींच लिए और रोती रही। उसने कमरे के दरवाजे बन्द कर रखे थे। पत्र पढ़कर वह निढाल हो बिस्तर पर गिर पड़ी।

५

केशो सेठ की दूकान वैसे अवसर संध्या बीतते ही एक पार्लियामेंट का रूप धारण कर लेती थी। उसमें नाथूलाल की स्थिति तो आग में घी का काम करती थी। पेंढारकर बाबू अपनी बगल में अपने पुत्र को दबाए एक हाथ में उधार अखबार लिये हुए उस ओर आ निकले। उन्होंने आते ही पूछा—"क्यों कर्नल, नागपुर का क्या होगा ? कहाँ जाएगा ? महाराष्ट्र में, बम्बई प्रान्त या विदर्भ में, नये मध्य प्रदेश में तो जाने का सवाल ही नहीं उठता।" नाथूलाल ने कहा—"कांग्रेस की भी क्या अक्ल है ? सारे देश के टुकड़े कर रही है। जिस बात का किसी समय स्वयं कांग्रेस विरोध करती थी, अब उसीको वह स्वीकार कर रही है। थूककर चाटने का यह सिद्धांत अवसरवाद के सिवाय कुछ नहीं है। भाषावार प्रान्त-रचना को कांग्रेस सरकार अब तक टालती रही थी, अब उसीके सामने झुक गई। लोगों को यह आश्वासन भी दे दिया गया है कि सारे भारत का पुनर्विभाजन भाषावार प्रान्तों के आधार पर हो जाएगा।"

सीताराम पंडित ने कहा—"अरे भाई देखते नहीं। उन्नीस सौ छप्पन शुरू हो रहा है। दूसरा चुनाव। चुनाव का ही एक ऐसा मौका होता है जबकि सत्ताधीशों की गरदन एक-एक आदमी के हाथ में होती है। इसलिए लोगों को खुश करने के लिए कांग्रेस जो न करे सो थोड़ा है।" केशव सेठ ने उखड़ी बात जमाते हुए कहा—"इसमें कांग्रेस को गाली देने की क्या जरूरत है ? आप ही खुद सोचिए। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को अपनी सहूलियत के अनुसार बाँटा था। अब भारत से अंग्रेज चले गए। आज भारत के नवनिर्माण की आवश्यकता है। हर पुरानी चीज को बदलना होगा। भारत के पैंतालीस करोड़ लोगों की अपनी भाषाएँ और अपनी संस्कृतियाँ हैं। उन्हें सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। प्रान्तों के विभाजन के पीछे किसी सिद्धान्त का होना आवश्यक है। आज जो प्रान्त बने हुए हैं उनका क्या आधार है ? वे सिर्फ गुलामी के दिनों की याद दिलाते हैं। दूसरे जब एक भाषा, एक प्रान्त बनेगा तो निस्संदेह शासन का कार्यभार सुचारु रूप से चलेगा। आज जिन प्रान्तों में तीन-तीन, चार-चार भाषाएँ

बोली जाती हैं, वे किस भाषा में अपना राजकीय व अन्य कार्य करें?"

नाथूलाल ने उत्तर दिया—"सेठजी, आपका कथन सत्य है कि अंग्रेजों ने भारत को अपनी सहूलियत के मुताबिक बाँटा था। 'बाँटा' कहने की बजाय उसे 'प्रांत बनाना' कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। बाँटने का काम तो अब हम करेंगे। नए प्रान्त बनेंगे। हर प्रान्त की अपनी भाषा होगी, अपनी संस्कृति होगी। सब अपनी-अपनी डफली लेकर अपना-अपना राग अलापेंगे। राष्ट्रीय हित से पहले वे अपने प्रादेशिक व प्रान्तीय हित देखेंगे। उस समय आपकी भारत की एकता कहाँ जाएगी? हर पुरानी चीज को बदलने का यह आशय तो क़तई नहीं होता कि यदि हम अंग्रेज़ों के ज़माने में पैरों के बल चलते थे तो अब सिर के बल चलें। नवनिर्माण का मतलब अपनी जड़ों पर कुल्हाड़ी मारना तो नहीं होता। पैंतालीस करोड़ लोगों की यदि अपनी-अपनी भाषाएँ एवं संस्कृतियाँ हैं तो आप और हम उन्हें छीन तो नहीं रहे हैं, और न ही उन्हें अंग्रेज़ ही अपने साथ ले गए। देश की गुलामी के दिनों में जो फूलती-फलती रहीं तो आज़ादी के दिनों में कौन माई का लाल उन्हें छीन लेगा? अंग्रेज़ों द्वारा बनाए गए प्रान्तों के माध्यम से कम-से-कम भारतीयता तो सुरक्षित थी। रह गई प्रशासन के कार्य की बात, तो सारे देश को एक भाषा की आवश्यकता है। संसार के हर उन्नतिशील देश की एक भाषा है। यह जरूरी नहीं कि वे अपना कार्य अंग्रेज़ी में ही करते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए हर क्षेत्र में एक भाषा के प्रयोग की नितान्त आवश्यकता है। उसके लिए हिन्दी है। जब तक लोग हिन्दी समझने योग्य नहीं हो जाते, साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का या जिस भाषा को वे समझते हैं उसका प्रयोग होता रहे। जब देश के पास एक भाषा है तो फिर इसे अन्य भाषाएँ ढूंढने की क्या आवश्यकता है? जिन विचारों को मैं व्यक्त कर रहा हूं किसी समय कांग्रेस के भी यही विचार थे। और आज भी यह बात नहीं है कि कांग्रेस को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं है। किन्तु अब कांग्रेस सिद्धांत नहीं हवा का देखती है। कांग्रेसी नेता आज चिल्ला-चिल्लाकर जिसका विरोध करते कल को उसे ही स्वीकार कर उसकी तारीफ के पुल बाँधते हैं। मजबूरियों को स्वीकार करने की अपेक्षा मजबूरियों को अवसर के

सिद्धांतों पर कसकर लोगों पर अपनी श्रेष्ठता का दावा करते हैं।"

केशो सेठ ने कहा—"जनरल, भूलो मत, जमाना जनता का है। कांग्रेस वही करेगी जो जनता चाहती है। यदि जनता का विरोध किया जाए तो उसके प्रतिनिधित्व का सवाल कैसे उठेगा ? ⋯कांग्रेस ने ऐसी कौनसी बात की ⋯कि पहले विरोध किया, फिर स्वीकार कर लिया ?"

"केशो सेठ, आखिर जमाना जनता का ही है⋯मूर्खों का तो नहीं। जनता के जितने भी मौसमी नेता हैं वे सब लोगों को समय-समय पर उनकी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रांत, पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और बकवाद के नाम पर उकसाते रहते हैं। कांग्रेस जनता का रुख पहचानकर उस ओर दौड़ जाती है। काश कि इस देश को ऐसे नेता मिले होते जो स्वतन्त्रता के पश्चात् देश को मज़बूत बनाते ! रह गई बात थूककर चाटने की, तो तुम कांग्रेस का इतिहास खोलकर पढ़ो। भाषावार प्रांत-रचना इसका आधुनिकतम उदाहरण है। तुम्हारे ही नेता थे जो पाकिस्तान बनने का विरोध करते थे। कोई कहता था कि "मैं मरूंगा तभी पाकिस्तान बनेगा। कोई दहाड़ता था कि पाकिस्तान मेरे जीते-जी नहीं बन सकता ! कोई चिल्लाता था कि मेरी लाश पर पाकिस्तान की नींव बनेगी। केशो सेठ, पाकिस्तान बना और ऐसा कहने वाले नेता जीवित रहे और जीवित हैं और बेशर्मी के साथ राज कर रहे हैं। अपनी इज्ज़त बचाने के लिए किसी ने आत्महत्या तक नहीं की। पोट्टू रामोल्लू ने आन्ध्र से रास्ता खोल दिया है। अब तो यह देखो कि विभाजन की यह परम्परा कहां जाकर रुकती है ?"

पेंढारकर ने कहा—"नाथूलाल, यह नवीन प्रांत-रचना क्या बुरी है ? हमारा यह पुराना स्वप्न था कि किसी दिन महाराष्ट्र बनेगा। महाराष्ट्र यानी महंतराष्ट्र। शिवाजी इस कल्पना की पृष्ठभूमि के प्रणेता थे। क्या हमारी अपनी कोई विशिष्टता नहीं है ? महाराष्ट्र ने भारत को कितने महान् पुरुष दिए हैं। इतने बड़े देश में महाराष्ट्र के बनने से महाराष्ट्रियन अपने-आपको सुरक्षित समझेंगे और मराठी को तभी उचित स्थान मिलेगा। महाराष्ट्र याने महान् राष्ट्र।"

नाथूलाल ने कहा—"बाबू पेंढारकर, आप बुरा नहीं सोचते।

तो एक राष्ट्र है। राष्ट्र में आपको महाराष्ट्र चाहिए। यह ज़माना ही 'महा' लोगों का है। इसलिए आज मूर्ख नहीं बल्कि महामूर्ख मिलेंगे। आज हर प्रांत अपने नाम के पहले महा का विशेषण लगा रहा है। आप ही क्यों? भारत के हर प्रांत और हर जाति की अपनी कोई-न-कोई महानता है। यदि महाराष्ट्र में शिवाजी ने जन्म लिया तो भारत के अन्य प्रदेशों में भी समय-समय पर अन्य महापुरुष जन्मे हैं जिन्होंने अपनी सेवाओं से देश को समृद्ध एवं सुदृढ़ बनाया है। परन्तु पेंढारकर! महापुरुष नहीं बल्कि उनके चेलों द्वारा ही गड़बड़ी मचाई जाती है। शिवाजी को लेकर अब उनके चेले जो बवंडर मचाएँगे वह देखने योग्य होगा। अंग्रेज़ों के नीचे जो महाराष्ट्र सुरक्षित रह सका तो उसे अब कौन तबाह करेगा? ज़मीन तो वही रहेगी, लोग वही रहेंगे, फिर उसे लघु-राष्ट्र कहो या महाराष्ट्र। आपको यदि मैं पेंढारकर न कहकर शाहपूरकर कहूँ तो क्या आप बदल जाएँगे? आप वही दो बच्चों के बाप रहेंगे और उसी पत्नी के पति।" सुनकर सब हँस पड़े। नाथूलाल ने देखा कि उसके सामने अब सिर उठानेवाला कोई नहीं है। नाथूलाल ने खँखारकर गला साफ किया और कहा—"यह इतिहास का एक व्यंग्य रहा है कि हम लोग सदा से बँटे हुए ही रहे हैं। हमारे दर्शन, जाति, धर्म या विचारधारा ने हमें आपस में मिलकर कभी एक नहीं होने दिया। जो भी ऐरागैरा विदेशी आया हमें चार लात लगाकर चलता बना। फिर भी हमें यह कभी भी अक्ल नहीं आई कि हम अपने-आपको भारतीय समझें। आज़ाद होते ही हर किसी को अपनी भाषा और अपने प्रांत की चिन्ता होने लगी है। हम आज पहले बंगाली, मद्रासी या महाराष्ट्रियन हैं भारतीय बाद को। टके-टके के नेता अपनी नेतागिरी बनाए रखने के लिए देश को गड्ढे में ढकेल रहे हैं। भारत नए तरीके से बँटेगा। परिणाम यह होगा कि हर प्रांत अपने स्थानीय झगड़ों को लेकर दूसरे प्रांत से लड़ेगा। अराजकता फैलते ही केन्द्र की सत्ता कमज़ोर होगी। एक प्रांत को दूसरे प्रांत से कोई मतलब नहीं होगा। विदेशियों को पुनः अवसर मिलेगा। पाकिस्तान सरीखे देश ताक में बैठे ही हैं। पाकिस्तान का तो निर्माण ही भारत के प्रति घृणा की भावना की नींव पर हुआ है। किसी समय बंगाल का विभाजन हुआ था तो सारा देश चिल्ला उठा

था। अब यदि किसी प्रांत में गड़बड़ी हुई तो दूसरे प्रदेशवाले तमाशबीन की तरह बैठे रहेंगे। जहाँ एक प्रदेश भूखा मरेगा वहीं पड़ोसी प्रदेश अनाज के स्टाक दबाए बैठा रहेगा। नए प्रांत बनेंगे, तो उनकी नई राजधानियाँ बनेंगी। उनके लिए पैसा कहाँ से आएगा ? पुरानी बनी-बनाई राजधानियाँ उजड़ेंगी। नागपुर का क्या होगा ? इतना बड़ा शहर वीरान हो जाएगा। यहाँ कुत्ते रोएँगे। यहाँ की रौनक भोपाल और बम्बई जाएगी। सरकार यह सब कर सकती है क्योंकि उसके पास सत्ता है, परन्तु आनेवाला युग और आनेवाली पीढ़ी इन सबका मूल्यांकन अपने ढंग पर करेगी। सत्ता हमेशा के लिए कभी किसीकी नहीं रही है। जिस दिन कांग्रेस की सत्ता नहीं रहेगी उसका सही इतिहास लिखा जाएगा। एक ओर हम जातीयता एवं साम्प्रदायिकता को समाप्त करने की बातें करते हैं तो दूसरी ओर नई तरह की साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जा रहा है। प्रान्तीयवाद सिर उठा रहा है। भारतमाता को भूलकर कोई महाराष्ट्र माता की जय बोलता है कोई कर्नाटक माता के नाम के नारे लगाता है। हर किसी ने अपनी एक-एक प्राइवेट प्रान्तीय माता का आविष्कार कर लिया है। यह बात नहीं कि नेताओं को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं, परन्तु सीधा-सा सवाल है कि जिस सिद्धांत से अपना स्वार्थसाधन नहीं होता *उस सिद्धांत को पालने से क्या लाभ ?"*

काफी रात गए तक तिलनखेड़ी के ये नेता देश के भविष्य के बारे में चिंता व्यक्त करते रहे। केशो सेठ तो चुपचाप हो गया, उसे तो नींद आ रही थी। वह भगवान् से मना रहा था कि कब यह बैठक उठे और वह दूकान बन्द करे। सीताराम पंडित बढ़ती हुई अधार्मिकता के बारे में चिंता व्यक्त करते रहे। कई मंत्रियों को गालियाँ देते रहे, तो किसी ने कालाबाजारियों की माँ-बहनों से रिश्ते जोड़े। नाथूलाल की बकझक भी साथ-साथ चलती रही। लोगों को नाथूलाल ने अमेरिका और रूस के उदाहरण दिए। उसने बताया कि किस प्रकार ये देश धूल और चट्टानों से उठकर आज संसार के सर्वशक्तिमान देश बने हैं। जिस प्रकार आग बुझ जाने के पश्चात् भी कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत हवा पाकर चिनगारियाँ सुलग-सुलगकर बुझती हैं, उसी प्रकार जाते-जाते नाथूलाल कह रहा है— "देश की बुनियादी समस्याएँ

भुखमरी, बेकारी, निरक्षरता आदि हैं। नये प्रान्त बन जाने पर भी ये समस्याएँ तो हल नहीं हो जाएँगी। बम्बई बनेगा तो अलग होने के लिए महाराष्ट्र और गुजरात लड़ेंगे। महाराष्ट्र बनेगा तो विदर्भ और महाराष्ट्र लड़ेंगे। महाराष्ट्र बन जाने पर भी ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के झगड़े क्या सुलझ जायेंगे ?"

थके-हारे चिन्तित ये नेता धीरे-धीरे अपने घरों को खिसकते हैं।

६

शाम को रामू अपने कमरे की पुस्तकें ठीक कर रहा था। पूरन गवली[1] ने आकर बताया कि केशो सेठ की दूकान पर कोई बाई उसका इन्तज़ार कर रही है। रामू ने झटपट चप्पलें पहनीं।

"रेणु, तुम······!"

"हाँ······मैं······।"

केशो सेठ ने रामू को देखा परंतु देखकर भी केशो सेठ कुछ ऐसी विचित्र एवं उदासीन मुद्रा में बैठा था जैसे वह कुछ भी न जानता हो। रामू ने देखा कि रेणु की आँखें गुस्से से तनी हुई हैं। वह सहम-सा गया। उसने रेणु का यह रूप कभी नहीं देखा था। केशो की दूकान पर खड़े-खड़े दो-तीन लोग तमाशा देख रहे थे। विशेषकर रेणु को वे इस प्रकार देख रहे थे मानो बस्ती में कोई सफेद हाथी घुस आया हो। रामू को वातावरण संकटमय प्रतीत हो रहा था, इसलिए उसने रेणु से कहा, "चलो······।"

बस्ती से बाहर रेणु की कार खड़ी थी। रेणु ने दरवाज़ा खोलते हुए फौजी हुक्म से कहा —"बैठो······।" रामू के बैठते ही रेणु ने भरपूर ज़ोर से मोटर का दरवाजा बन्द कर दिया। प्रतीत होता था जैसे रामू के प्रति अपना गुस्सा वह मोटर के दरवाजे पर उतार रही है। रेणु ने गाड़ी स्टार्ट की और स्टार्की पॉइंट की ओर मोड़ दी। नागपुर शहर की बाहरी सीमा समाप्त हो रही थी। रेणु ने मोटर का हुड गिरा दिया था।

---

१. ग्वाला।

रामू ने देखा कि स्पीडियोमीटर की सुई ४५ बता रही है। रेणु स्टियरिंग पर हाथ रखे सामने सीधे देखती हुए गाड़ी चलाती ही जा रही थी।

रेणु की आँखों में खलनायकों की-सी छाया थी।

मोटर की स्पीड बढ़ती ही जा रही थी।

रामू भयभीत हुआ······। इतनी स्पीड में वह कभी मोटर में नहीं बैठा था। उसने मौन भंग करते हुए साहस किया—"रेणु······आखिर तुम जा कहाँ रही हो?"

स्पीडियोमीटर की सुई ६० के आस-पास नाच रही थी। रेणु ने पूरी गर्दन घुमाकर ओंठ भींचते हुए रामू को ऊपर से नीचे तक देखा और झटक-कर गरदन सामने कर ली। सामने नागिन की तरह बल खाती हुई न समाप्त होने वाली सड़क को वह लगातार देखे जा रही थी। मोटर की गति बढ़ती ही जा रही थी। चारों ओर बेरी के जंगल-ही-जंगल थे। स्टार्की पॉइंट का घुमाव लेती हुई मोटर वीमेन्स कॉलेज की सड़क से गुजर रही थी। रेणु की चुप्पी रामू को भीषण लग रही थी।

"रेणु, मैं मोटर का दरवाजा खोलकर कूद पड़ूँगा······।"

"तुम हूँ···!" रेणु ने कहा और व्यंग्य से मुस्कराने की चेष्टा करने लगी।

"हाँ···मैं। आखिर तुम कहाँ जा रही हो?"

"मैं जा रही हूँ ··आखिरी फैसला करने···गाड़ी की स्पीड इतनी बढ़ा दूँगी···कि गाड़ी किसी पेड़ से टकरा जाए और दोनों का फैसला हो जाए।"

"रेणु···नहीं!···नहीं!!"

"इतनी ही ताकत थी।" गवर्नमेंट हाउस का चक्कर लगाकर, हाई-कोर्ट रोड पर आकर सामने ही पोलो ग्राउंड में रेणु ने कार रोक दी। उसने दरवाजा खोला और उड़ते हुए रूखे बालों को समेटते हुए कहा—"उतरो बुजदिल·· डरपोक, उतरो मोटर से ······।'

रामू उतर गया। "बैठो······।" और रामू बैठ गया। रेणु खड़ी ही रही। रेणु के रूखे केश संध्या की सुहानी हवा के साथ उड़ रहे थे। साड़ी

का पल्ला भी उड़-उड़ जाता था। वह उसे पकड़कर बार-बार सम्हालती। लगता कि जैसे नाचने के लिए मोर पंख फैलाना चाहता है। रेणु ने ब्लाउज से रामू का खत निकाला और रामू के मुँह पर दे मारा यह कहकर—"यह लो अपना खत।" रामू ने खत उठाया नहीं।

"दे लो जितनी गालियाँ देनी हैं···सुनने के लिए तैयार हूँ।"

"इसके सिवाय तुम कर भी क्या सकते हो?" रेणु ने कहा—"बुज़दिल, कम-से-कम मैं तुम्हें इतना कमज़ोर और डर-पोक नहीं समझती थी। मानती थी कि मर्द की हैसियत से आखिर कुछ दम रखते हो, परन्तु मेरा वह भ्रम था। तुम तो औरत बनने के योग्य भी नहीं हो। व्यर्थ ही परमात्मा ने तुम्हें मर्द बनाकर तुम पर अपना समय व शक्ति बरबाद की। दूसरे दिन स्वयं आने की भी हिम्मत नहीं थी। नहीं आ सकते थे तो कम-से-कम अपना ही पता बता दिया होता। मैं ही आ जाती।"

"तो अब कैसे पता लगा ?"

"अपने पत्र में तुमने जो तिलनखेड़ी के झोंपड़ों का उल्लेख किया था, उन्हींके सहारे चली आई। वास्तव में तुम्हारा दौलतखाना खुद अपनी आँखों से देखना चाहती थी—जहाँ तुम सरीखे बहादुर रहते हैं। खैर, इस पत्र के माध्यम से तुमने कम-से-कम मुझे यह तो बता दिया कि तुम कितनी ताक़त के मालिक हो। समाजवाद, सामाजिक पुनर्निर्माण और अन्तर्जातीय विवाहों पर घंटों लम्बी-लम्बी बहस करने वाले व्यक्ति को परिस्थितियों के सामने पड़ने पर आज कायर होते देखा। खैर यह कोई नई बात नहीं है। संसार के निन्यानवे प्रतिशत लोग तुम जैसे ही होते हैं जो अपनी तरफ से बहुत होशियारी से फूँक-फूँककर कदम उठाते हैं। उनमें एक तरह की कायरता होती है जो उन्हें साहसिक कदम नहीं उठाने देती, रिस्क नहीं लेने देती। वे किनारे-किनारे घुटनों के बल चलते हुए एक दिन मर जाते हैं। बीच सागर में अपनी नाव को खेते हुए डूबने की आशंका से भयभीत रहते हैं। वे तो मेरे सरीखे पागल ही हैं जो अपनी नाव अकेले बीच समुन्दर में इस तरह बेधड़क फेंक देते हैं। और सहायता नहीं बल्कि साथी के रूप में किसी को किनारे से पुकारते हैं।"

रेणु ने रामू का पत्र उठाया, उसे खोला और फिर कहना शुरू

किया, "बी० ए० पढ गये, लेकिन एक चिट्ठी भी लिखनी नहीं आई।"

"मुझे ऐसी चिट्ठियाँ लिखने का अभ्यास नही है।"

"नहीं, मुझे ही ऐसे पत्र पढ़ने का अभ्यास है। जैसे प्रेम-पत्र पढ़ते रहना ही तो मेरा धंधा है। क्यों, ठीक है···न···? लिखा है···रेणु··· । जैसे मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ। आगे-पीछे कोई विशेषण नहीं। आप लिखते हैं कि आपको शर्म आती है। वाहरी आपकी शर्म ! आपकी शर्म दूर करने को ही मैं आपको यहाँ तक लाई हूँ। उस दिन नहीं आये तो दूसरे रोज तो आना था। तीसरे रोज आना था। बिना नोटिस के आना क्यों बन्द कर दिया ? भूल गये कि तुम मेरे यहाँ मास्टरी करते हो; काम के पैसे लेते हो। कम-से-कम अपनी ड्यूटी का ही ख्याल किया होता। तुमने लिखा है कि तुम मुझे अच्छी तरह जानते हो। मैं कहती हूँ कि तुम मुझे खाक नहीं समझते । इतनी अक्ल अभी तुम्हें परमात्मा ने नहीं दी। यह प्रस्ताव मेरी भावुकता नहीं है बल्कि इसे ठुकराना तुम्हारी भावुकता है। कल को किसी से भी इस विषय पर सलाह लेना, तुम्हें कोई भी मूर्ख की संज्ञा ही देगा। रह गई बात आर्थिक स्तर की, तो यह सवाल तो मैंने तुमसे कभी किया नहीं। मैं तो सिर्फ तुम्हें जानती हूँ, सिर्फ तुम्हें। तुम्हारे माँ-बाप क्या करते हैं ? कहाँ रहते हैं ? इसके विषय में तो तुमसे मैंने आज तक कोई सवाल नहीं पूछा। विवाह के पश्चात् तो पति-पत्नी का आर्थिक स्तर एक-सा ही होता है। यदि एक कमाता है तो भी पैसे दोनों के ही काम आते हैं, यदि दोनों कमाते हैं तो भी उसका लाभ दोनों ही उठाते हैं। शादी के बाद तो दोनों एक नये रूप में ढलते हैं। उनका आर्थिक स्तर वह तो नहीं होता जो कि उनके माँ-बाप के यहाँ रहा है। रह गया सवाल जाति, धर्म या संस्कृति का, तो···तुम पुरुष हो, मैं स्त्री हूँ, दोनों एक-दूसरे को मानते हैं।"

"उससे क्या होता है ? क्या तुम्हारे घरवाले मानेंगे ?"

"तुम्हें मेरे घरवालों से विवाह करना है या मुझसे ? जब मुझमें इतनी ताक़त है तो तुम क्यों इतने कमजोर बनते हो ? यह तुम्हारे नहीं बल्कि मेरे सोचने की बात है। मेरे घरवालों में तुम्हारी बिगड़ भी जाएगी तो तुम्हारा क्या नुकसान होगा ? तुम उनके कौन हो ? मैं तो आखिर उनकी ।

लड़की हूँ। मैं घरवालों से इस बात की आज्ञा माँगूंगी। यदि मुझे आज्ञा नहीं मिलती तो यही समझूँगी कि मेरे प्रति उन्हें कोई ममता नहीं है। यदि वे मेरी भावनाओं का आदर नहीं कर सकते तो उस घर में रहने का क्या फ़ायदा ? कम-से-कम एक ऐसी हक़ीक़त का तो पता लगेगा जिसके बारे में आज तक मैं अँधेरे में रही।"

"रेणु, मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करता हूँ। तुम्हारी बोल्डनेस की इज्ज़त करता हूँ। कभी कोई मान भी नहीं सकेगा कि एक औरत होकर तुम अपने विचारों पर इतनी दृढ़ हो। एक तो यही बहुत है कि लड़की होकर अपने विवाह का प्रस्ताव तुम स्वयं रख रही हो—अपने विवाह की बात अपने मुँह से ही इतनी दृढ़ता से कर रही हो। मैं तुम्हें कमज़ोर समझता था, पर तुम फौलाद हो फौलाद। परन्तु एक बार पुनः मैं तुमसे प्रार्थना करूँगा कि अपने प्रस्ताव पर तुम स्वयं ही विचार करो। क्या यह उचित है कि तुम जैसी सर्वगुणसम्पन्न लड़की मुझ जैसे मूर्ख के गले बँधे ? तुम विवाह भी कर लोगी तो समस्या का अन्त तो नहीं हो जायेगा। कितनी ही नई बातें उठेंगी। प्रतिकूल परिस्थितियों से मुझको लेकर तुम कब तक जूझती रहोगी ? एक तरफ ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ और दूसरी तरफ मैं। इसमें या तो तुम निरपराध पिस जाओगी या परिस्थितियों से प्रभावित या प्रताड़ित होकर मेरे प्रति घृणा के भाव ले बैठोगी। यह घृणा तुम्हारी आज की मेरे प्रति भावना से ठीक गहरी और विपरीत होगी। उस समय एक सड़क के पत्थर की तरह मैं अलग कर दिया जाऊँगा। आज तुम मुझे इतना आदर दे रही हो यही बहुत है। मैं तो इस प्रस्ताव की कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। अपने व्यक्तिगत जीवन में दो समय के भोजन और एक छत की ही केवल मुझे आवश्यकता है।"

रेणु अब तक नीचे बैठ चुकी थी। उसका गुस्सा आँसू बनकर वह निकला था। उसने रूमाल से आँसू पोंछे। वह ज़मीन पर धूल में अँगुलियों से कुछ उल्टे-सीधे चित्र बना रही थी। "रामू, मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि तुम्हारा एक दिन यह रूप भी देखूंगी। अतीत में अपने मानस-मन्दिर में मैंने तुम्हारी मूर्ति को एक विशिष्ट रूप में प्रतिष्ठित किया था। आज उस रूप को छिन्न-भिन्न होता हुआ मैं नहीं देख सकती। आज मुझे

सीधी भाषा में इसलिए बात करनी पड़ी क्योंकि मेरे माता-पिता मेरे हाथ पीले कर देना चाहते हैं। यदि यह परिस्थिति नहीं आती तो तुमसे कभी शायद सीधी भाषा में बात करने की हिम्मत ही नही करती। समय ही ऐसा है कि मैं ठहर नहीं सकती। मुझे निर्णय लेना ही होगा। और यह एक दिन की बात तो नही है। स्थायी प्रश्न है। क्यों न हमेशा के लिए उसे सुलझा दूं? तुम्हें अपना समझती रही इसलिए इतने अधिकार एवं निस्संकोच भाव से बात कर सकी। मालूम नहीं तुममें इतना इनफीरिऑरिटी कॉम्प्लैक्स क्यों भरा पड़ा है? तुम मुझसे उम्मीद करते हो कि मैं तुम्हें सड़क के पत्थर की तरह अलग कर दूंगी। किसी विपत्ति की अपेक्षा उस विपत्ति का भय उस विपत्ति से कही खतरनाक होता है। तुम कल्पनाओं में सबसे डरते रहे, यहां तक कि मेरे भी न जाने किन-किन रूपों की कल्पना कर तुम डरते रहे। आखिर एक दिन तुम्हारा भी तो विवाह होगा। किस तरह की लड़की पसंद करोगे?"

"मैंने कभी इस विषय में नही सोचा। अविवाहित रहने पर भी मुझे कोई फ़र्क नही पड़ेगा। बाँसुरी बजाकर सारी जिंदगी काट दूंगा। मुझे ससार मे किसी से मोह नहीं है। इतने पाप किए हैं, और नही करना चाहता।"

"वास्तव में, देखा जाए तो मेरी नही बल्कि तुम्हारी बातें निकम्मी हैं, अव्यावहारिक हैं। अभी तक तुम भावुकतामय जीवन बिताते रहे हो। वास्तविकता में जीना तुमने नही सीखा। अवसर को पहचानना तुम्हे नही आता। दुनिया मे रहना है तो कुछ संसारी ढग से सोचो।···आओ··· बैठो मोटर मे···अँधेरा हो रहा है। घर चलें···भोजन करके ही जाना।"

रेणु ने घर की ओर मोटर मोड़ दी। रामू चुप था। दोनों के बीच एक भीषण चुप्पी थी—ऐसी चुप्पी कि जिससे दोनो बचना चाहते थे। रेणु चुप्पी को तोड़ते हुए, गाडी चलाते-चलाते कहती जाती है—"यदि ऐसी बात थी तो तुम क्यो न गैर बनकर रहे?···इतने अच्छे क्यों बने? तुम्हें पहले से ही दुष्टतापूर्वक व्यवहार करना था, एक दूरी रखनी थी। कम-से-कम यह दिन तो नही देखना पड़ता। तुम हिलते क्यों नही···? पिघलते क्यों नही?···काश कि···तुम केवल मास्टर बाबू ही रहे होते!"

परिवर्तन

झंडुलाल की भारी-सी कार पाँडुरंग के दरवाज़े पर रुकी। झंडुलाल काला चश्मा लगाये, मोटा-सा सिगार पीते हुए उतरे। पाँडुरंग ने देखा तो वह लंगड़ाता हुआ वह शीघ्रता से दरवाज़े की ओर बढ़ा। "माई···बाप··· आओ।"···पार्वती ने सिर ढँक लिया। लक्ष्मी भी बाहर आई।

"मारुति की तबियत कैसी है?'

"अब तो ठीक है।···सुबह कुछ नींद आ गई थी···अभी सो रहा है।"

"तो सोने दो।"

सेठ पाँडुरंग के घर में घुसने लगे···प्रवेश करते-करते सहसा रुक गए। देखा तो दरवाज़े की ऊँचाई ही कम थी। वे झुकते-झुकते रह गये और तनकर खड़े हो गए। "माई-बाप यह दरवाज़ा गरीबों के लिए है। छोटे आदमियों का छोटा ही दरवाज़ा होता है।"

"हूँ···।" सेठजी ने पहले पैर अंदर किये, फिर सिर पीछे की ओर झुकाया तथा अपने-आपको तसल्ली दे ली कि 'मैंने सिर नहीं झुकाया।'

मारुति सो रहा था। जगह-जगह पट्टियां बँधी थीं। पार्वती एवं लक्ष्मी ने उसे रात-भर सेंक किया था। सेठ को देखकर दोनों खड़ी हो गईं। प्रतीत होता था जैसे आधा कमरा झंडुलाल ही ने घेर रखा है। घर के बाकी लोग कोने में दुबके खड़े थे। कमरा सिगार की गंध से भरा जा रहा था।

झंडुलाल का डॉक्टर मारुति का इलाज कर रहा था।

झंडुलाल बाहर आये और मोटर में बैठकर केशो के घर की ओर चल दिए। केशो के पुत्र की सालगिरह थी। पाँडुरंग सपरिवार झंडुलाल की कृतज्ञता के बोझ से दबा जा रहा था। झंडुलाल ने ही मारुति को छुड़वाया था। ज़मानत पर भी मारुति को किसी हालत में पुलिस छोड़ने को तैयार नहीं थी। मारुति के साथ तीन-चार अन्य लोग भी पकड़े गए थे। सेठजी

ने सबको छुड़वा दिया था। सब सेठजी के अहसान से दबे आ रहे थे। पुलिस ने आदमी पकड़ तो लिए थे, परन्तु उनके पास पक्का सबूत नहीं था। परिणाम यह हुआ कि चौथी पेशी के बाद ही न्यायाधीश ने मुकदमा खारिज कर दिया और पुलिस को डाँटा सो अलग। झंडूलाल ने अपना नामी वकील लगा रखा था। मारुति छूट तो गया किन्तु उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। उसे काफी मार पड़ी थी। मारुति का अंग-प्रत्यंग छिल गया था। पुलिस ने उसे मार-पीटकर यह स्वीकार करवाना चाहा था कि खून उसीने ही किया है। यदि उसने खून नहीं किया तो कम-से-कम वह खूनी को जानता है। मारुति ने अदालत में पुलिस के अत्याचारों का बयान विस्तार से किया। जब मारुति घर पहुँचा तो अधमरा-सा हो रहा था।

अभी तक हवालात की काल-कोठरी का दृश्य मारुति के सामने घूम जाता है। इसका स्मरण आते ही मारुति की देह सिहर उठती है। छोटी-सी बदबूदार काली कोठरी। एक कोने में घुटनों पर सिर रखे मारुति बैठा है। सामने ही एक बीस या बाईस वर्ष का लड़का पड़ा सो रहा है। उसे काफी मार पड़ी है। दूसरी ओर चार-पाँच कैदी बैठे हैं। इतनी जोर से हँसी-ठट्ठा करते हैं कि इंस्पेक्टर भी उस ओर चौंककर देखता है। एक भयानक-सा दैत्यकाय काला आदमी सींखचे पकड़कर खड़ा है। वह बीड़ी पर बीड़ी फूंकता जा रहा है। वह बिल्कुल मौन है, सुनता ज्यादा है, बोलता कम है। बाहर सींखचेदार दरवाजे से प्रकाश छन-छनकर आ रहा है। प्रकाश को भी सीधे अंदर आने की मनाही है। वह भी सींखचों में से छन-कर ही आ सकता है। बाहर पुलिस का सिपाही संगीन लगी राइफल को कंधे पर रखे पहरे पर तैनात है। प्रकाश की पृष्ठभूमि पर मारुति की हवालात से, उस पुलिस का शरीर उसकी संगीन सहित एक छायाकृति के समान दिखता है।

लक्ष्मी, सेठ झंडूलाल के गुणों का बखान करती है। मारुति दहाड़ता है, "चुप रह, सेठ कभी किसी का फालतू भला नहीं करता।"

लक्ष्मी को मारुति की मंद बुद्धि पर बनावटी क्रोध आता है। पार्वती कहती है—"जल्दी···अच्छे हो जाओ···।"

केशो के घर अच्छा-खासा उत्सव हो रहा था। बच्चे की साल-गिरह थी।

"कोई मजाक है···बंजर जमीन में भी फसल उगी है।" एक मसखरे ने कहा।

"अबे जमीन तो काफ़ी उपजाऊ है, पर जमीन ही क्या करे जब उसमें बेकार बीज पड़ता है···फसल कहाँ से हो! इसमें सहकारी खेती का तो सवाल ही नहीं उठता।"

"हाँ यह भी एक पॉइंट है।"

सेठ झंडुलाल सेठानी से मिलने के लिए कोई एक घंटे से प्रतीक्षा कर रहे थे। सब लोगों के जाने पर सेठजी ने केशो से कहा—"सेठानी को कुछ कपड़े आदि उपहार-स्वरूप देना चाहता हूँ।"

"लाइये मैं दे दूंगा।"

"नहीं···उससे मुझे मिलना भी है।" केशो सशंक हो गया, परन्तु कोई चारा नहीं था।

केशो अंदर जाने लगा परन्तु, झंडुलाल ने उसे रोक दिया। स्वयं सेठ झंडुलाल आगे बढ़े। कमरे के बीचोंबीच सेठानी बच्चे को गोद में लिये बैठी थी। झंडुलाल को देखते ही उसने घूंघट खींच लिया।

"बहू, अब घूंघट खींचने की क्या जरूरत है? जब घूंघट गिरने की आवश्यकता थी तब तो गिरा नहीं।"

सेठानी ने कुछ नहीं कहा। वह बुत की तरह बैठी थी। झंडुलाल ने चुप्पी भंग करते हुए कहा—"लड़के का नाक-नक्शा तो निकल आया है।" सेठानी ने लड़के को चटाई पर रख दिया ताकि सेठ झंडुलाल ठीक तरह से उसे देख सकें और अपनी पीठ दूसरी ओर कर ली। झंडुलाल ने रंग-बिरंगे सूती और रेशमी कपड़े, ओढ़नी, लहंगे, पोलके, गहने तथा रुपये सेठानी के सामने रख दिये। जाते-जाते झंडुलाल ने छींटा मारा—"बहू, अच्छी बात है। कम-से-कम जायदाद के लिए तुम्हें वारिस तो मिल गया। चाहे कैसे भी मिला। ईश्वर के रास्ते बहुत विचित्र हैं। अब घूंघट को इसी तरह गिरे रहने देना। देखना कहीं और न उठे, अन्यथा भैयाजी का कहीं ठौर-ठिकाना नहीं रहेगा। नाक कटेगी सो अलग। सुखी गृहस्थ जीवन

के लिए स्त्री को सदा पति-सेवा करनी चाहिए। पति के सामने ही यदि यह घूंघट उठाया करे तो अच्छा हो…।" झंडूलाल का रेकार्ड चालू था। सेठानी का हृदय जल रहा था। वह सोच रही थी कि घूंघट हटाकर सीधी चोट करे। परन्तु वह ऐसा न कर सकी। उसे लग रहा था जैसे उसका गला सूखा जा रहा है। वह ओंठ चाट-चाटकर अपने को तसल्ली दे रही थी। उसे लगा जैसे उसका मुँह किसी ने सी दिया है, हाथ-पैरों पर पत्थर रख दिये हैं। झंडूलाल ने देखा कि सेठानी तो उसकी ओर पीठ किये, सिर झुकाए हुए गठरी की तरह बैठी है। झंडूलाल को यह अपना अपमान प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा—"मैयाजी की नाक तो चौड़ी है ''बच्चे की लम्बी है। मैयाजी की आँखें ऐसी नहीं हैं जैसी इस बालक की'''शायद नाक-नक्शा तुम पर गया है।'''" सेठानी की शक्ल भले ही सेठ झंडूलाल ने न देखी हो परन्तु वह कम-से-कम बजरंग की शक्ल तो जानता था। सेठानी व्यंग्य समझ रही थी। उसे क्रोध आ रहा था। उसने जैसे ही घूंघट उठाया, देखा कि सेठ झंडूलाल चौखट पार कर चुके हैं। झंडूलाल एक पल और रुके होते तो सेठानी अपने आँसुओं के बीच उन पर फट पड़ती। सेठ झंडूलाल के उपहार सामने पड़े थे। सेठानी ने उन्हें उठाकर दूर फेंक दिया। बालक को उठाकर वह दूध पिलाने लगी। दूध पिलाते-पिलाते वह, छोटे-से बिना, काँच के रोशनदान से, बाहर आकाश को देखती है। सोचती है—'ये सेठ अपनी जिंदगी में सिवाय पैसों के न तो कुछ समझते हैं और न कुछ जानते हैं। इनके लिए धर्म, ताकत, माई-बाप, इज्जत, सब-कुछ धन ही है। हर इंसान की मनोभावनाएँ होती हैं लेकिन इनकी बला से। झंडूलाल चार कीमती चीज़ें दे गया है—इनका क्या करूँ? कपड़ों से संदूक भरे पड़े हैं, आखिर किस काम आते हैं? बाप को सस्ते में वह मिला। मेरा हाथ पकड़ा दिया उसे। कुछ देना नहीं पड़ा और मैं किस्मत की मारी यहाँ आ टकराई। अब समझती हूँ कि पहली पत्नी की क्या भावनाएँ रही होंगी? वह घुल-घुलकर मर गई होगी। वही रास्ता मेरे सामने भी था। उठते-बैठते, सोते-जागते इनकी जिंदगी में सिवाय दूकानदारी के क्या है? इन्होंने हर बात को दूकानदारी समझ रखा है। सोचते हैं गहने-कपड़े लदा देने से औरत खुश हो जाएगी। बजरंग से मुझे जो मिला वह इनमें कभी भी देने

की हिम्मत थी ? ऐसे पति का क्या करूँ जो पति के कर्मों को भी पूरा न कर सके ? दो टाइम की रोटी के अतिरिक्त मेरी अन्य जरूरतें भी तो हैं।" केशो की पत्नी जैसे अपने-आपमें ही झुलसने लगी हो। वह उठी और अन्दर चली गई।

उधर बेशकीमती सजे-धजे कमरे में तख्त पर बैठे झंडुलाल और केशो हाथ मिलाते हैं। झंडुलाल कहता है—"एक पत्थर से चार-चार चिड़ियाँ केशो चार······चार ! ! पांडुरंग पर अहसान किया···मारुति से बदला लिया···तुम्हारे रास्ते से पत्थर हटा दिया···बजरंग को रास्ता दिखाया सो अलग।"

२

केशो समय के परिवर्तन को समझने में असमर्थ है। वह भविष्य में आनेवाले प्रतिकूल समय की कल्पना कर डर जाता है। पहली पंचवर्षीय योजना के बाद दूसरी पंचवर्षीय योजना आई परन्तु तिलनखेड़ी का वैभव तो लुटता ही जा रहा है। वह सोचता है कि यह आखिर कैसी तरक्की है ? तिलनखेड़ी के आस-पास सड़कें बन गई हैं। बड़ी-बड़ी इमारतें भी खड़ी हो गई हैं। रविनगर के सरकारी क्वार्टर दूर-दूर तक फैल गये हैं। दूर-दूर तक बाबुओं के क्वार्टर बिखरे पड़े हैं। लगता है जैसे रेल के डिब्बे इधर उधर बिखर गये हों।

अमरावती रोड पर रविनगर के सामने अनाज की दूकानें खुल गई हैं। साइकिल की दूकानें तथा पान के ठेले भी खुल गये हैं। एक रिक्शा-स्टैंड भी बन गया है। केशो को प्रतीत होता है कि जैसे तिलनखेड़ी का बाजार उठकर यहाँ आ गया है। अब तक बस्ती में केवल केशो का ही पक्का मकान था। उसे अपने मकान पर उसी तरह नाज था जिस प्रकार अंधों में काने को होता है। परन्तु अब तो तिलनखेड़ी के आस-पास एक-से-एक मजबूत मकान बन गये हैं।

तिलनखेड़ी के लोग भी अब इसी नये बाजार से सामान खरीदने लग गये हैं। केशो को विश्वास नहीं था कि उसके वर्षों पुराने ग्राहक एक

दिन उसे इस तरह छोड़कर चलते बनेंगे। उसे अब स्वयं अपनी होशियारी पर सन्देह होने लगा था।

केशो सोचता है—'बस्तीवाले तो अब मेरे भी गुरू बनते जा रहे हैं।' नई-नई तरह की बातें करते हैं। उनकी बातें समझ में नहीं आतीं। पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान में किसी का मन नहीं लगता है। क्या ज़माना आया है? केशो ने बस्ती वालों से कई बार अपील की थी कि बस्ती में कम-से-कम चंदा वसूल कर एक मंदिर तो बनाया जाये। पूजा करने के लिए गोकुलपेठ या धरमपेठ तक टाँगें तोड़नी पड़ती हैं।

वह समय भी आया, जबकि नागपुर बंबई प्रांत में सम्मिलित हुआ। नागपुर से पुराने लोग, सरकारी नौकर इत्यादि भोपाल जा रहे थे। नागपुर की दौलत जैसे लुटी जा रही थी। शहर की शान उसके लोगों के सामने से ही उठती जा रही थी। जिस शहर को किसी समय भोंसले राजाओं ने अपनी राजधानी बनाया था, आज वही शहर वीरान हुआ जा रहा था। सरकारी अफसर, बाबू'''चपरासी या तो भोपाल जा रहे हैं या बंबई।

सबकी ज़बान पर एक ही बात है—'अब नागपुर राजधानी नहीं रहेगी।' नागपुर जैसे शहर उजड़ते हैं और भोपाल जैसे शहर बनते हैं। इस सबका भार जनता को सहन करना होगा।

कल को भले ही केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार दयावश नागपुर का विकास करे, वहाँ नई सड़कें बनें, अधिक इमारतें बनें, कल-कारखानों का वहाँ विकास भी हो जाये, चाहे शहर और भी सुन्दर क्यों न बन जाये, केन्द्र के नये ऑफिस भी आ जायें और आबादी भी बढ़ जाये, पर राजधानी का गौरव कहाँ से लौटेगा? और उसे राजधानी कौन कहेगा?

नागपुर-निवासियों को इसका दुख नहीं है, क्योंकि छोटे नेता कहते हैं—"राष्ट्र-हित के लिए बलिदान करो।" पर यह राष्ट्र-हित आखिर है क्या बला? जो बड़े-बड़े नेता कहें—क्या वही सिर्फ राष्ट्र हित है? छोटे लोग—साधारण लोग, बड़ों की माया समझने में असमर्थ हैं। साधारण जनता का यही अपराध है कि वह साधारण है। साधारण जनता को तो सिर्फ कर्म करना चाहिये, फल देने या न देने वाला तो ईश्वर है। लोगों को तो केवल

यत्न करना चाहिये, फल देने का ठेका या तो ईश्वर का है या फिर लीडरों का। लोगों की समझ में नहीं आता कि आखिर सचाई क्या है ? मंच से एक लीडर आकर 'अमुक सत्य' का उद्‌घाटन करता है, दूसरा लीडर उसी बात को असत्य कहता है। जनता किस लीडर की बात माने ? किस पार्टी का प्रोग्राम स्वीकार करे ?

रविनगर उजड़ गया। नये ऑफिसों के नये बाबू वहाँ आकर बस रहे हैं। केशो मीरचंदानी सेठ से कहता है—"बाबुओं के क्वार्टर उजड़ेंगे तो इन सिंधियों की ढिबरी टैट होगी। लड़ाई खत्म हुई। देश बँटा और ये सिंधी हमारी जान को रोने यहाँ आ बैठे। सारी बस्ती को अपनी ओर खींच लिया। खुद तो दिवालिया बनकर आये और व्यापार की हवा ही बिगाड़ दी। चार पैसों की चीज़ दो पैसों में बेचेंगे। न खुद खायेंगे न दूसरों को खाने देंगे। दो पैसों के कपड़ों से इनका काम चल जाता है। तुम लोग नहाते हो या नहीं ? जिन कपड़ों को पैदा होते समय पहनते हो शायद उन्हीं कपड़ों में तुम्हारा जनाज़ा निकलता है।"

मीरचंदानी जवाब देता है—"केशो सेठ, मेरी कौम को गाली देकर क्यों दिल की भड़ास निकालता है ? मेरे कारण यदि तेरा बिज़नेस बैठ गया है तो आ मुझे गालियाँ दे ले। मेरी कौम को क्यों गाली देता है ? सिंधी चाहे कुछ भी करे, परन्तु भीख नहीं माँगेगा। मेरी जगह यदि तू होता तो शायद आत्महत्या कर लेता। यह मीरचंदानी ही है जो केशो के देश में पनप सकता है। यदि केशो मीरचंदानी के देश में आता तो भीख माँग-माँगकर मर जाता। केशो, तेरी आँखों के सामने तेरी माँ, बहनों की खुलेआम इज्ज़त नहीं लुटी, तेरी जायदाद अभी किसी ने लूटी नहीं, तू भाग्यवान है। ईश्वर का शुक्र अदा कर। लोगों को ठगने का नाम व्यापार नहीं है। है मर्द का बच्चा तो आ मेरी टक्कर में······बोल है मंज़ूर ?"

केशो बड़बड़ाता, पैर फटकारता हुआ आगे बढ़ जाता है।

इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के बड़े-बड़े इंजीनियर सिर लड़ाकर थक जाते हैं। उन्हें समझ नहीं आता कि नागपुर के बृहत्तर निर्माण मे तिलनखेड़ी जैसी बस्तियों को कैसे एडजस्ट किया जाये ? हड़ताल, सत्याग्रह और नारेबाज़ी के ज़माने में वे कोई निर्णय नहीं लेना चाहते। ऐसी बस्तियाँ दाग की

तरह हैं, जिनका शहर से हटा दिया जाना अत्यंत आवश्यक है। यदि कोई वी० आई० पी० आता है, तो ऐसी बस्तियों से नागपुर की प्रतिष्ठा को बट्टा लगता है। वे सोचते हैं कि तिलनखेड़ी-निवासी यदि सामूहिक रूप से बस्ती छोड़ दें तो कितना अच्छा हो! कम-से-कम वे इतना ही करें, जब कोई महान् नेता या विदेशी इधर से गुज़रे तो सारी बस्ती पर एक बुर्क़ा डाल दें या तिलनखेड़ी के सारे लोग अपने मकानों सहित कहीं छिप जायें और मेहमानों के चले जाने पर वापस आ जायें।

तय किया जाता है कि बस्ती को हटा दिया जाये।

परन्तु बिल्ली के गले में आखिर घंटी बाँधे कौन?

अफ़सर कहते हैं, साहस कौन करे? ज़माना ही अजीब आया है। अब तो दो-दो टके के लोग भी गुर्राते हैं। लाल आँखें दिखाते हैं। भूख-हड़ताल, सत्याग्रह तथा आन्दोलन आदि करते हैं। और लीडर तो ताक में रहते ही हैं। बात का बतंगड़ बना दिया जाता है। विरोधी दल के लीडर तो बेचारे कांग्रेसियों का मगज ही चाटते हैं।

फिर अफ़सर सोचते हैं—जाने दो। कमबख्त एक दिन खुद ही उठकर यहाँ से चले जायेंगे। प्रगति की ओर होले-होले ही क़दम उठने चाहियें। यह कहकर सत्ताधीश अपने-आपको संतोष दे लेते हैं।

३

"माँ, उन्हें लिख दो······आकर अपनी ड्यूटी पूरी कर लें," सुनकर रेणु की माँ ने रेणु को घूरकर देखा। वह हाथ मटकाकर बोली—"बाबा, आजकल की लड़कियों का माया तो भगवान् ही जानें! एक महीने से इसके पीछे-पीछे घूम रही हूँ···यह पूछते कि क्या लिखूँ? लेकिन कोई जवाब नहीं। आज जैसे नींद से जागी हो। इस प्रकार गुस्से से बोल रही है जैसे मुझ पर कोई एहसान कर रही हो। आखिर तेरी ही तो दुनिया में शादी नहीं हो रही। इस लड़की की समझ में तो पत्थर पड़े रहते हैं।···आज ही तेरे बाबूजी से लिख देने के लिए कहे देती हूँ।"

"ठीक है, उन्हें जल्दी ही लिख दो। दिन तय करें······और अपना

काम पूरा कर लें···।" बिना जवाब सुने रेणु लौट गई। रेणु की माँ उसे गुस्से से देखती रही। रेणु ने जब देखा कि रामू टस-से-मस नहीं हुआ, तो उसने स्पष्ट शब्दों में रामू से कह दिया कि वह उसके घर न आया करे। उसी गुस्से में उसने अपनी माँ को विवाह की स्वीकृति भी दे दी।

कर्नल ने देखा कि लड़की प्रसन्न नहीं रहती, दाल में अवश्य कुछ काला है। एक दिन समय देखकर उन्होंने रेणु को पास बैठाया और कहा, "बेटी, मैं इधर कई दिनों से देख रहा हूँ कि तुम उदास रहती हो। रो देती हो, गुस्से में आ जाती हो, आखिर क्या बात है? मुझे कारण जानने का क्या कोई हक नहीं है? मैंने हर समय तुम्हारी हर इच्छा को पूरा करने का प्रयास किया है। पिता के कर्त्तव्य के नाते विवाह भी मुझे ही करना है। वैसे तो अपनी तरफ से मैंने बहुत अच्छी पार्टी ढूंढी है। परन्तु यदि तुम्हें नापसंद हो तो इन्कार कर देता हूँ, तुम्हारी माँ ही बस नाराज़ होगी। परन्तु उससे हम बाप-बेटी मिलकर निबट लेंगे। तुम भी तो आखिर कुछ कहो। तुमसे जब तक मैं स्वीकृति नहीं प्राप्त कर लूंगा तब तक मैं कुछ नहीं लिखूंगा। तुम्हारे बाद मुझे रेखा के लिए तैयारी करनी है। उसके बाद अकेला बूढ़ा रह जायेगा। ईश्वर से तुम लोगों की दुआ माँगेगा, तुम सुखी रहो····· मेरा यही विचार है······बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है?" रेणु के सिर पर चटर्जी ने हाथ फेरते हुए कहा।

रेणु ने माँ को तो पहले ही स्वीकृति दे दी थी, इसलिए अब ना करने का प्रश्न ही नहीं था।

इसके बाद बात पक्की हुई, सगाई हुई, शादी का समय आया, मंडप सजा, बराती आये, बाजे बजे और············

विवाह भी हो गया।

कर्नल चटर्जी ने रोते हुए दिल के दूसरे टुकड़े को भी विदा किया। वे अपनी तीसरी पुत्री को देखकर सोचते हैं—'ईश्वर इसे बच्ची ही क्यों नहीं रखता? बच्ची रहे तो सदा गोद में तो खेलती रहे।' चटर्जी सोचते हैं कि आखिर लड़कियाँ क्या इसी दिन के लिए बड़ी होती हैं। एक लड़के-वाले होते हैं कि उनके यहाँ विवाह होने से परिवार में एक सदस्य की

संख्या बढ़ती है। आज यदि मेरे तीन पुत्र होते तो मेरे परिवार में तीन बहुएँ आतीं। शोरगुल बढ़ता। उनकी गोद में बच्चे खेलते। इधर एक लड़की की शादी क्या होती है, घर का एक चिराग कम हो जाता है।

कर्नल, जो फ्रंट लाइन पर एक-से-एक मौत के दृश्यों को देखकर भी नहीं रोया था, जिसने वहाँ एक-से-एक घिनौने दृश्य देखे थे, अस्पतालों में सैनिकों की सड़ती-गलती लाशों को गिन-गिनकर अपने सामने दफनाया था, वही अपनी लड़की की विदाई पर सहसा रो उठा था। कहता है—"रेणु···सितार छोड़ जाना, तेरी यादगार रहेगी।"

रेणु जब दूसरों का विवाह देखती तो उसे कोई विशिष्ट अनुभूति न होती। सोचती कि यह सब क्या तमाशा है? लोग क्यों ढोल बजाते हैं? बाजे बजाते हैं···? शादी के लिए इतनी उछल-कूद की क्या जरूरत? रेणु की दो-एक सखियों का विवाह हुआ तो रेणु ने उन्हें खिझा-खिझाकर नाक में दम कर दिया।

परन्तु आज उसकी बारी थी।।

सखियाँ उलाहने देती हैं—"हमें बताया भी नहीं, सब छिप-छिपकर तय कर लिया···इस शैतान ने।" रेणु चुप है। वह कुछ नहीं बोलती। पागलों की तरह उन्हें देखे जा रही है। "बोल न पगली······चुप क्यों है?"

"क्या बोलूँ!"

सारे विवाह में रेणु को ऐसे प्रतीत हुआ जैसे उसका अपना कुछ नहीं है। उसे जो कुछ कहा गया उसने यन्त्रवत् पूरा कर दिया। सजने को कहा गया तो बैठ गई···सजा दी गई। पण्डित ने आदेश दिया तो वेदी पर बैठ गई। परिक्रमा करने को कहा गया, तो परिक्रमा कर ली। रेणु का खूब शृंगार किया गया था। पर काश! कि उसके सूने हृदय का किसी ने शृंगार किया होता?

लड़के को नौकरी के बाद तथा लड़की को विवाह के पश्चात् जीवन के एक बहुत बड़े सत्य का पता लगता है। रेणु को अब पता लगा कि वह अपनी एक भी इच्छा आसानी से पूर्ण नहीं कर सकती, क्योंकि इच्छाओं की सफलता या असफलता में सांसारिक परिस्थितियों का भारी हाथ होता है।

दुनिया के ढोल-तमाशे जब पीछे छूट गये, तो अपने-आपको पति के सामने खड़ा पाया। धोती-कुर्ता पहने, गोरा-चिट्टा शरीर लिये, घुंघराले बालों से युक्त एक शरीर उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा था।

वह घुटनों पर मस्तक टेके हुए बैठी थी। उससे नहीं रहा गया, वह रो पड़ी। उसके पति घबड़ा उठे। उन्होंने पास बैठकर उसका सिर सहलाया।

"रेणु, क्या बात है ? मेरे कारण रो रही हो तो उठकर चला जाता हूं।" रेणु का क्रोध, करुणा, झुंझलाहट आदि आंसू बनकर ढल गये।

४

पांडुरंग को जब से लकवा मारा तब से वह अपने घर वालों को एक भार-सा प्रतीत होने लगा था। घर में रोटी-पानी के अतिरिक्त उसकी दवादारू के लिए पैसे लगते थे, सो अलग।

मारुति के पकड़े जाने के पश्चात्, घर में कमाई करने वाला कोई नहीं रह गया था। लक्ष्मी ने बुढ़ापे के कारण बर्तन मांजने का काम छोड़ दिया था। लक्ष्मी के हाथ कांपने लगे थे। आंखें भी अधिक नहीं देख सकती थीं। पार्वती तो आज तक एक पैसा भी कमाकर नहीं लाई थी जिसका लक्ष्मी को सदैव बहुत क्षोभ रहता था। लक्ष्मी बड़बड़ाती है, "पार्वती को मलका बनाकर घर में रखा है। आज कमाती होती तो क्या चार पैसे घर में न आते ?"

पुरनी जवान हो गई है। लक्ष्मी करीब से उसकी भरी हुई और चौड़ी छाती देखती है। लक्ष्मी का सिर झुक जाता है। संतरों के बगीचे वाला, डोमा भाऊ पिछले साल आया था। संतरा मार्केट से लौटते हुए, उसने लक्ष्मी से कान में कुछ फुसफुसाकर कहा था। मारुति की सलाह है कि डोमा भाऊ बुड्ढ़ा है। लक्ष्मी कहती है कि मेरा पति तो जवान था फिर भी मुझे क्या फर्क पड़ा ? पांडुरंग की रातें तो कहीं और गुज़रती थीं।

वैसे पुरनी ने सिंदियों[1] के कोमल कंटीले पत्तों से वेणियां बनाना

१. एक प्रकार की खजूर।

सीख लिया है। सोम एवं बृहस्पतिवार को सीताबर्डी बाजार, मंगलवार को सदरबाजार, और शुक्रवार को गोकुलपेठ, धरमपेठ के बाजार में वेणियाँ बेचकर कुछ पैसे ले आती है। उसीसे आजकल घर का गुजारा चलता है।

एक औरत की कमाई पर सारे घर का खर्च चलता है। पांडुरंग का माथा शर्म से झुक जाता है · पर वह क्या करे ?

एक हाथ से पांडुरंग पत्नी को वेणियाँ बनाने में सहायता देता है। मारुति कहता है कि अब वह रिक्शा नहीं चलायेगा। रिक्शा चलाने का धंधा ही बुरा है। मालिक का आदमी चार-चार बार पूछने आया, परन्तु मारुति को घायल देख लौट गया। मारुति उदासीन भाव से सुनता है कि मालिक ने दूसरा रिक्शेवाला रख लिया है।

पिछले चार सालों से मारुति इस मालिक के घर रिक्शा चला रहा था। मारुति सोचता है रिक्शेवालों को लोग चोर-उचक्का समझते हैं। क्या जिन्दगी है ? एक-एक सवारी के लिए लोगों का मुँह ताकना पड़ता है।

किन्तु दूसरे ही क्षण मारुति को यह भी स्मरण हो आता है कि इस करुणाजनक स्थिति का बहुत-कुछ रिक्शेवालों पर भी उत्तरदायित्व है। कितने ही रिक्शेवाले अपने मालिकों को किराया नहीं देते। झूठ बोलकर किनारा काट जाते हैं। नागपुर के कितने ही सुनसान स्थान रिक्शेवालों को बलात्कार की कहानियों से भरे पड़े हैं।

मारुति ने निश्चय कर लिया है कि अब वह किराये का रिक्शा नहीं चलाएगा। चलाएगा तो केवल अपना ही रिक्शा। उसे रामधन चपरासी याद आता है जो बीड़ी फूंकता हुआ विशेष श्रद्धा से कहता है—"अबे चपरासी बन जा। पेंशन है ··पेंशन···सुबह दस बजे गए और तबियत से पाँच बजे लौटे। महीने के आखिर में अस्सी रुपए चित·· सरदी, गरमी और बरसात किसी की चिंता नहीं। हर पहली तारीख को पूरे पैसे खरे। मास्टर अब तो पुराना जमाना नहीं रहा है। चपरासियों की भी यूनियन हैं यूनियन। साहब कुछ भी गड़बड़ नहीं कर सकता। लाल आँख दिखाई या नौकरी से निकालने की धमकी दी तो दूसरे दिन ही सारे चपरासी हड़ताल कर देते हैं। भूख-हड़ताल, सत्याग्रह और नारेबाजी कितने ही अहिंसात्मक तरीके

हूँ। काम भी क्या है? बस ऑफ़िस जाओ, केवल इधर की फ़ाइल उधर दे दो और उसके बाद अपनी मंडली में बैठे गप्पें मारो। दस बार घंटी बजे तो उठकर अन्दर जाओ। ऑफ़िस की ज़िन्दगी ही ऐसी है। साहब लोग अपने कमरों में अकेले बैठते हैं, हँसी-ठट्ठा करते हैं, सोते हैं और दस्तखत मार दें शाम को अपने घरों को लौट जाते हैं। बाबू लोग भी अखबार पढ़ते हैं। औरतों से गप्पें मारते हैं। शाम को सबकी आंखें घड़ी पर टंगी रहती हैं। साढ़े चार बजा नहीं कि ऑफ़िस से बाहर। बेटा चपरासी हो जा, चपरासी। रिक्शा चलाकर क्यों फिजूल टाँगें तोड़ता है? तुझे मालूम नहीं कि रिक्शा चलाने से नीचे की नसें घिस जाती हैं। लौंडे पैदा नहीं होते और न ही इन्सान शादी का मजा ले सकता है।"

बीड़ी के गोलाकार धुएँ के पीछे रामधन चपरासी का चेहरा मारुति के सामने घूम जाता है। रामधन चपरासी मुस्कराकर जैसे अपने धंधे का रहस्य बताता है।

रामू बाहर गया हुआ था। जब वह नागपुर लौटा, तो कमरे पर पहुँचते ही उसे समाचार मिला कि खून केस में पुलिस मारुति को पकड़ ले गई है। वह सीधा घर पर आया। उसे देखते ही लक्ष्मी ने शोर मचाना शुरू किया। लक्ष्मी मुट्ठियां कसे हवा में हाथ हिलाती जा रही थी। रामू के पास आकर वह गरजने लगी—ए···बंसीवाले···अब तो तू बड़ा आदमी हो गया है···तेरी तो सूरत ही नहीं दिखती। तेरे कमरे पर दिन के दो-दो चक्कर लगाकर आती थी, परन्तु वहाँ तो हर दम ताला ही टँगा रहता था। तू आखिर रहता कहाँ था? तू बी० ए० क्या हो गया···अपने माँ बाप को भूल ही गया। कभी इस तरफ आकर झाँका तक नहीं। तेरा बाप तुझे ठीक ही गालियाँ दिया करता था। बंसी बजा-बजाकर तेरा दिमाग खराब हो गया है। मारुति को पुलिस पकड़कर ले गई और तेरा पता तक नहीं। तेरा बाप लकवे में पड़ा है, आकर कभी देखा नहीं। मैं बुड्ढी हो गई हूँ, पुरनी तेरे सामने खड़ी है। घर में एक पैसे की भी कमाई नहीं है। तू बाबू बना घूमता है। सफेद कपड़ा पहनता है। कहाँ नौकरी करता है? कितने पैसे कमाता है? मुझे तो कुछ भी नहीं पता। घर में क्या चार पैसे

५

झंडुलाल एम० एल० ए० की पुत्री राधादेवी का आदर्श व शुभ विवाह था। विवाह वैसे तो पिछली रात्रि को ही सम्पन्न हो गया था परन्तु आदरणीय आमंत्रितों का स्वागत दूसरे दिन संध्या को रखा गया था। एक ओर सुसज्जित मंच पर वर-वधू सशरीर विराजमान थे। बुफे डिनर रखा गया था। डिनर के पश्चात् बम्बई की भूतपूर्व प्रसिद्ध अभिनेत्री और अब नर्तकी रजनीबाला एण्ड पार्टी द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाने वाला था। नागपुर की 'क्रीम क्लास' को आज यहाँ देखा जा सकता था। नागपुर के प्रतिष्ठित नागरिक, सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता, दयावान सेठ श्री चमनमल भजनदास न जाने कितनी संस्थाओं के रक्षक एवं भक्षक थे, इसलिए इस विवाह में नागपुर के पुराने व प्रसिद्ध घरानों से चिरणीस, बूरी, घराने, नागपुर के किसी समय के राजा भोंसले स्वयं सबकरदरा आए हुए थे। इनके अतिरिक्त नागपुर के जज, एडवोकेट, बार कौंसिल के अन्य आदरणीय सदस्य, नागपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा सीनेट सदस्य, नागपुर हाईकोर्ट के पेंशनशुदा जज, प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता जो नागपुर के समस्त हल्कों का प्रतिनिधित्व करते थे, नागपुर का समस्त मारवाड़ी समाज, केन्द्रीय सरकार के नागपुर स्थित उच्चाधिकारी, कलक्टर, डी० एस० पी०, भूतपूर्व रायबहादुर, दो-एक खानबहादुर व सरदार बहादुर, नागपुर गुमाश्ता मंडल की कार्यकारिणी के सदस्य, दो-चार छोटी-मोटी रियासतों के आदिवासी राजा-महाराजा, भूतपूर्व मालगुजार तथा जमींदार, संतरों के बगीचों के कुछ मालिक तथा सेठजी की नई, पुरानी, बूढ़ी या जवान प्रेमिकाएँ अपने पुत्रों, पतियों या फ्रेंड्स सहित उपस्थित थीं। सारे नागपुर का केवल यही आज एक विशाल आयोजन था। छोटे-बड़े सबकी जुबान पर इस आदर्श विवाह की चर्चा थी। यह शान-शौकत तथा ठाटबाट देखकर नागपुर के बड़े-बड़े रईस भी यह कह रहे थे—"इसे कहते हैं शादी, आजकल की भी कोई शादियाँ होती हैं। आजकल तो लोग बस गोबर ही कर देते हैं। रात को बाजे बजाये और सुबह बरात गायब···शादी हो तो ऐसी हो।" दूसरा कहता है—"अजी

मारकन तो नष्ट करने का जमाना है। बस नष्ट किया, कोर्ट में गए, मारी और एक पार्टी देकर छुट्टी।"

छोटे सेठ जी इस तरह दौड़-धूप कर रहा था मानो उसका ही विवाह हो। एक ओर नाच गाना था, दूसरी ओर विशाल मंडप सजाया गया था। कम्पाउंड के बाहर एक ओर ताँगे और रिक्शे खड़े थे। सेठजी की रईसी का प्रभाव चरम प्रदर्शन था। इसको तो देखते ही बनता था। सारी सेठजी के एकमात्र पुत्र की एकमात्र बहन राधा देवी का विवाह था।…
और पृष्ठभूमि में तिपनमेड़ी के मैले-कुचैले झोंपड़े थे, जो संध्या के हल्के नीले धुएँ में नींद में डूबे हुए प्रतीत होते थे। इन झोंपड़ों की पृष्ठभूमि पर सेठ मंगनलाल की दुर्ग-जैसी विशाल अट्टालिका संध्या के धूमिल प्रकाश में एक विशाल छायाकृति बना रही थी। दूसरी ओर पहाड़ी पर था लक्ष्मी-नारायण इंस्टीट्यूट। दूर मेहतरपुरे के नंगे, भूखे, गरीब पुरुष, स्त्रियाँ तथा बालक एक झुंड बनाकर भूखी ओर ललचाई आँखों से मंगनलाल के बंगले की ओर टकटकी लगाये बैठे थे। मेहतरों के इस झुंड में तिपनमेड़ी के भी कुछ गरीब बालक, बाहर के कुछ गरीब साधु व भिखारी आ मिले थे। इस झुंड में हर किसी को एक-दूसरे से घृणा हो रही थी। वह मन-ही-मन यही सोचता था कि यदि झुंड के बाकी लोग नष्ट हो जायें तो वह अकेला ही मंगनलाल द्वारा फेंके गये अनाज का एकमात्र अधिकारी होगा। वैसे मेहतरों व भिखारियों में इससे पहले महाभारत का एक लघु संस्करण भी हो चुका था। गरीबी व अभाव से दबकर भी कई परस्पर एक-दूसरे से श्रेष्ठता का दावा कर रहे थे। इस समुदाय के कई सदस्यों ने गालियों से भी एक-दूसरे का खूब स्वागत किया, परन्तु सेठजी के दरवाजे पर बजने वाले बैंड ने भिखारियों व मेहतरों को शीघ्र ही इस कार्य से मुक्ति प्रदान की। उनका ध्यान बँट गया और वे उत्सुकता से उत्सव की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

'तर……हरे… म र र रे…।' मोटरों के चारों पहिये कम्पाउंड की बजरी को कुचलते हुए आगे बढ़ जाते। युगली व एक-से-एक नये मॉडल की गाड़ियाँ कतारबद्ध खड़ी थीं। एक-दूसरे की पूँछ से अपने मुँह सटाए

ये मोटरगाड़ियाँ अपनी मौन स्वामिभक्ति का परिचय दे रही थीं। ड्राइवर गाड़ियों को पार्क कर, एक कोने में अपना घेरा बनाकर बैठते जा रहे थे। जैसे ही कोई नया ड्राइवर आता तो घेरा अधिक चौड़ा हो जाता।

"हट्ट···साली···।" सुनकर सब ड्राइवरों का ध्यान भंग हुआ। देखा तो सामने मजनूँकाय, लंबा, साँवला ड्राइवर भीखा पायजामे में दाहिना हाथ डाले जाँघ खुजलाता हुआ खीसें निपोरता ड्राइवर-मंडली की ओर आ रहा था।

"किसको छोड़कर आ रहा है!" एक ड्राइवर ने पूछा।

"मेमसाँब मिस वैरामजी···को···साली सफेद भैंस है···सफेद भैंस ···क्या बॉडी पाई है लाड़ो ने! बुड्ढी हो गई···अभी तक मिस हैं।"

'बुड्ढी घोड़ी लाल लगाम' दूसरे ने फिकरा कसा।

"सुना है···अभी तक पैसे देकर सवारी कराती है।" एक ड्राइवर ने दार्शनिक मुद्रा में सिगरेट पीते हुए कहा।

दूसरे ड्राइवर ने कहा—"कुछ भी बोल···फिर भी है तो आखिर दिलदार। जो करती है, अपनी कमाई से करती है, तुम्हारे घर भीख माँगने तो नहीं आती। मेरी मालकिन तो मुझसे एक-एक पैसे का हिसाब पूछती है। दो रुपए की तरकारी लाता हूँ तो एक-एक नये पैसे का हिसाब देना पड़ता है।"

"अबे तो तू कौन कम है! तू भी तो सवा सेर है। रुपये पर दस टका तो तेरा कमीशन चढ़ता ही होगा।"

"बेटा यह कहने की नहीं, समझने की बात है।"

एक आँख बंदकर सिगरेट का गहरा कश लेते हुए माधोदास ने कहा, "बच्चू······मज़े मेरे हैं। पटवर्धन डॉक्टर की जवान लौंडिया को जिस समय गाड़ी सिखाई है, मजा आ गया।" इस बात से माधोदास ने जैसे मैदान सर कर लिया हो। ड्राइवरों का ध्यान उस ओर खिंच गया। एक ड्राइवर ने कहा, "यार लौंडिया तो वाकई परी है।" यह कहकर वह ड्राइवर अपनी सिगरेट सुलगाता-सुलगाता रह गया। सिगरेट उसके मुँह में दबी ही रह गई। उसके मुँह से ऐसा लगता था कि अब लार टपकी······अब टपकी······। उसने पूछा, "आगे कुछ हुआ भी?"

"भागे यार…सब गड़बड़ हो गया…उसने शादी बना लिया…… हमको छुट्टी हो गया।"

दूसरी ओर सिद्दू मियाँ अपनी मूँछों में ही मुस्करा रहा था। उसने सिगरेट ठोककर सिगरेट की राख झाड़ते हुए कहा, "यह तो सिद्दू मियाँ से पूछो कि वह कितनी सवारी कर चुके हैं।" सिद्दू मियाँ ने नमक-मिर्च मिलाकर सच-झूठ बोलकर कम-से-कम एक बार तो मैदान मार लिया। सब पर उसका रौब छा गया। काफी रात गए तक ड्राइवर अपनी समस्याओं को, अपनी कहानियों को, अपने दुखड़ों को आपस में सुनते-सुनाते रहे। किसी ड्राइवर ने अपने मालिक की तारीफों के पुल बाँधते हुए बताया कि कैसे उसका मालिक दस का नोट देकर भी पेट्रोल के बचे हुए पैसे नहीं माँगता, तो दूसरे ने बताया कि उसकी मालकिन किस प्रकार कंजूस है। इस प्रकार अपने मालिकों के परिवारों की दया एवं कंजूसी की कहानियाँ ड्राइवरों की पार्लियामेंट में पारित होती रहीं। सरकारी गाड़ियों के ड्राइवर यह बताते नहीं थकते थे कि जब उनकी गाड़ियाँ गैरेज में रिपेयर होने जाती हैं, तो किस तरह उनका 'कमीशन पड़ता है।' किसी का 'महीना' बँधा है तो किसी का कमीशन 'पकता' है। ड्राइवर समुदाय यह महसूस कर रहा था कि जैसे इतने बड़े विशाल आयोजन में उनके लिए कहीं जगह नहीं है। अपने क्रोध, क्षोभ एवं निराशा को वे इस प्रकार व्यक्त कर अपने-आपको सन्तुष्ट कर रहे थे।

ड्राइवरों की पृष्ठभूमि पर तरह-तरह की चमचमाती हुई हरी, नीली, लाल, काली, सफेद, छोटी, लम्बी जीपें, स्टेशन वैगनें, कारें खड़ी थीं। दो-एक पुराने मॉडल की गाड़ियाँ उन मोटरों में इस प्रकार लग रही थीं मानो जवान औरतों में दो-एक बुढ़ियाँ घुस बैठी हों। पुराने मॉडल की गाड़ियाँ जैसे मौत से लड़कर अपने अस्तित्व का भान करा रही थीं।

छोटा-सा मण्डप रंग-बिरंगे बिजली के छोटे-छोटे लट्टुओं से सुसज्जित था। उन लट्टुओं की रोशनी जगमग-जगमग कर रही थी। मण्डप एवं उसका पार्श्वभाग मोगरे, रजनीगन्धा तथा गुलाब [illegible] से सजे थे। इन पुष्पों की आनन्ददायक सुगन्ध वातावरण को म

रही थी। यह मादकता वर-वधू पर एक मस्ती बनकर छा रही थी जिससे बार-बार दोनों अनजाने में जैसे सिहर-से उठते थे। भंडुलाल की पुत्री राधादेवी का चर्बीयुक्त वदन ठेठ मारवाड़ी पोशाक से सुसज्जित था। आज विशेष रूप से राधादेवीजी ने लहँगा, ओढ़नी व चोली पहनी थी। वधू की इस ड्रेस को देखकर सेठजी के मारवाड़ी दोस्त तो गद्‌गद हो गए थे। मुटापे के कारण राधादेवी की आँखों पर भी माँस लद रहा था। लहँगे एवं चोली के इंटरवल में सेठजी की पुत्री का पेट एक बड़े-से तरबूज की तरह लटक रहा था। राधादेवी सिर से पैर तक सोने से लदी हुई थीं। शरीर का अधिकाधिक भाग इन स्वर्णाभूषणों से ही ढँका था। दोनों हाथ हाथीदाँत की चूड़ियों से बगल तक भरे थे।

पैरों में कीमखाब की जूती लोगों से सहायता की भीख माँग रही थी। माँग में गहरा सिन्दूर चमक रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो श्यामल कोर पर जैसे डूबते सूरज की लाली एक रेखा बनकर बिखर गई हो। माथे पर भारी-सा बिंदा लटक रहा था। नाक की नथ पतली-सी डोर से कान से जुड़ी हुई थी, जो नाक एवं कान में सम्बन्ध जोड़ने का असफल प्रयास कर रही थी। इन स्वर्णाभूषणों की मेहरबानी से वधू की असुन्दरता बहुत-कुछ ढँक गई थी।

परन्तु वर ने पूर्ण रूप से मारवाड़ी संस्कृति का निर्वाह नहीं किया था। उनके गले में एक सोने की चेन थी जो उनके सेठियेपन की भग्नावस्था की द्योतक थी। चेन जैसे कह रही थी 'बस्स्......देखना कहीं गरदन इस चेन से छूटे नहीं......इस चेन से......या स्वर्णिम शृंखला से आज़ादी का मतलब होगा गरीबी।' मोटे-से लैंस का चश्मा चढ़ाए वरजी बैठे थे। जैसे ही कोई आमंत्रित सज्जन प्रवेश करता, भंडुलालजी एवं उनकी समधिन दोनों हाथ जोड़े, बड़ी ही नम्रता से उसका स्वागत करते तथा सांकेतिक रूप से वर-वधू की ओर खिसका देते। आदरणीय आमन्त्रित भी वर-वधू से मिलते। उन्हें आशीर्वाद या अभिनन्दन देते, साथ ही उप-हार दे बाजू में खिसक जाते। जब कोई मिलने आता तो वर-वधू बड़ी ही शालीनता से उठते। चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान लाकर बातें करते और यदि कोई फूल-माला लाया हो तो उसके पहनाने से पहले ही अपनी प्यारी

गरदन झुकाकर उसे फूल-माला पहनाने का मूक आमन्त्रण देते। इस प्रकार वे माला पहनाने वाले को अनुगृहीत करते और बैठ जाते। उठते-बैठते हर समय राधादेवी अपने वस्त्रों को ठीक करतीं। बैठते समय राधा-देवी की शर्म से भरी एक विशेष अदा होती। वर-वधू का यह तरीका बड़ा ही भद्दा हुआ और मैकेनिकल बन चुका था। वर महोदय को पैर लम्बे और पैरों के अनुपात में हाथ काफी छोटे थे। उनका चेहरा भी छोटा-सा एवं पिचका हुआ लगता था। कुल मिलाकर जमा-खर्च करने पर वर महोदय का व्यक्तित्व कंगारू जैसा प्रतीत होता था। बंजर जमीन पर जिस प्रकार विरला-सा जंगल होता है, उसी प्रकार वर महोदय के सिर पर फैली विरली केशराशि सिर से गुजरती हवा के साथ लहराकर या तो मंगल मना रही थी या पवन से अठखेलियाँ कर रही थी। उनकी ऊँचाई भी वधू से कुछ कम ही थी। वर महोदय को बातें करते समय, कमर पर हाथ रखने, बार-बार जीभ बाहर निकालकर अन्दर कर लेने की आदत थी। बैठते समय दूल्हाजी की गरदन एक ओर इस प्रकार झुक जाती थी मानो वे गहरे चिन्तन में डूबे हुए हैं। जब किसी की बात सुनते तो अपना प्यारा मुँह उठाकर उसे इस प्रकार देखते जैसे अपने किसी पुराने मित्र को पहचानने का प्रयास कर रहे हों। उनकी हँसी भी मौलिक थी। हँसी के लिटरेचर में ऐसी हँसी का अपना मौलिक रचनात्मक योग-दान था। अपनी विधवा माँ के साथ अकेले भाग्यशाली पुत्र थे। लोगों का कथन था कि लड़के की माँ काफी अमीर थी। और न जाने कितनों को 'बना चुकी थी।' उसके पति ने उसके चरित्र पर सन्देह कर जहर खा लिया था। इस विवाह में किसने किसको पटाया है यह तो समय ही बताएगा। सेठजी के मुख पर तो इस विवाह से 'आध्यात्मिक प्रसन्नता' थी। वैसे भी सेठजी को एक जमाई की सख्त जरूरत थी। सेठजी की अपने पुत्र से कतई नहीं बनती थी। उनके पुत्र को अपने पिता की हरकतें पसन्द न थीं।

मोटर-तांगों-रिक्शों से उतरकर आमन्त्रित लोग विशाल मण्डप में सजी कुर्सियों पर आसन ग्रहण करते जा रहे थे। एक कोने में महिलाएँ समाती

जा रही थीं। वह स्थान ऐसा प्रतीत होता था मानो रंग-बिरंगे जानदार फूलों की फुलवारी हो या रंग-बिरंगी चिड़ियां जैसे एक स्थान पर एकत्र होकर शोर कर रही हों। इस जनाने समूह में तरह-तरह की तथा विभिन्न आकारों तथा आयु की, रंग-बिरंगे कपड़ों में प्राय: हर प्रकार की महिलाएँ थीं।

श्रीमती घाटपाण्डे की पत्नी ने मेजर फिलिप्स की पत्नी के ओठों की ओर देखते हुए पूछा, "तुम्हारी लिपस्टिक की शेड तो बहुत अच्छी है।···
···किस दुकान से खरीदी थी ?"

"यह तो फ्रांस से खरीदी है। अभी ये गाजा गये थे। यूरोप घूमते हुए ···· फ्रांस में इन्हें यह खास पसन्द आई।······वैसे तो मेरे लिए पूरा कॉस्मैटिक्स् का बॉक्स ही लाए हैं।······दो सौ बाईस रुपए कीमत है।"

"देखते ही पता लगता है कि यह इण्डियन नहीं है। देखो, मैंने यह क्यूटीकोरा यूज़ किया है। यह भी फॉरेन की ही है······पर······अच्छा कभी मेजरसॉब बाहर जाएँ तो मेरा खयाल रखना। मुझे इन्फ़ार्म करना।"

"अभी बीच में ही कांगो जाने का चांस था।······परन्तु दूसरा मेजर चांस मार गया······।"

"कैसे······?"

"अपनी बीवी के कारण।"

इतने में ही दोनों का ध्यान कमला पारिख ने आकर्षित किया। डॉ० मिस पारिख की अवस्था कोई ४५ बरस की थी। आँखों के आस-पास खासी झुर्रियां पड़ रही थीं, परन्तु अवस्था के अनुसार उनके मेक-अप में कोई फर्क नहीं आया था। पतले-से स्लीवलैस ब्लाउज़ में उरोजों का प्रदर्शन करती हुई, जूड़े में फूल लगाए, चेहरे पर पाउडर पोते, मुस्कराती तथा मटकती हुई वे आईं। मिसेज़ बाटलीवाला ने पूछा, "आज किस को घायल करने निकली हो ?"

"जिसको······भी आज तक न घायल कर सकी।" डॉ० कमला पारिख ने एबार्शन्स् के केसेज़ में बहुत पैसा कमाया था। इतने में ही ऐसा लगा कि नारंगियों के समूह पर जैसे कोई भारी-सा पत्थर आ पड़ा हो। मिसेज़ धींगरा की उपस्थिति कुछ ऐसी थी।

"आज अकेली ही ······।" एक ने पुकारकर पूछा । मिसेज धींगरा खड़ी तो यहीं थी परन्तु उसका ध्यान दूर सामने की सीटों पर था। उसने कहा—"मिस्टर धींगरा को मैंने रिंग किया । कहने लगे आधा घंटा लेट आऊँगा । इधर आधे घंटे के चालीस मिनट हो गए । मैं तो टाइम की पाबंद हूँ···।" इतना कहकर मिसेज धींगरा आगे निकल गई । उसके जाने पर एक ने कहा—"बड़ी आई टाइमकी पाबंद···जान तो सुबह से यहाँ लटकी होगी···"

मंडूलाल से हाथ मिलाती हुई मिसेज धींगरा 'महत्त्वपूर्ण पुरुषों' में जा बैठी । उसने कहा—"मुझे बकरियों में बैठना अच्छा नहीं लगता ।"

वर-वधू को माला पहनाकर अपनी दोनों हथिनी-जैसी बेटियों को साथ लिये यमुनाबाई मस्तानी चाल से आ रही थीं।यमुनाबाई की ऊँचाई पौने छै फुट थी । सरकारी वेश्या उन्मूलन कानून तथा अपनी अवस्था के कारण उन्होंने अब अपना बिजनेस बन्द कर दिया था । पर लोग भी ऐसे माई के लाल थे कि यमुनाबाई के बारे में नजाने क्या-क्या अफवाहें उड़ाया करते थे । वे दोनों बेटियों सहित सीना ताने आत्मविश्वास की नजरों से आस-पास देखती हुई चल रही थीं।

"इसकी लड़कियों की चोटियाँ कैसी घनी लग रही हैं ?" एक ने धीमे से कहा ।

"वे अपने-आपको अभी बच्चियाँ ही समझती हैं ।"

"हाय···हाय इसकी माँ ने भी देखो कैसे पत्ते निकाले हैं?" यमुनाबाई का भी कभी नागपुर में जमाना था ।

मिस पुरी अपने बौने कद के कारण लुढ़कती-सी प्रतीत हो रही थीं । उनके साथ उनकी जवान बेटी थी जो लालीपॉप चूसती हुई सारी गैदरिंग का सरसरी नजर से मुआइना करती हुई आ रही थी । बैंक मैनेजर मि० पुरी चुरट का धुंआ फेंकते हुए सेठ मंडूलाल से शेक हैंड करते हैं । बातों के सिलसिले में पुरीजी की पुत्री कहती हैं, "मुझे तो जिन्दगी में सिर्फ तीन चीजों का ही शौक है—ड्राइविंग करना ··लालीपॉप चूसना और स्विमिंग करना।लालीपॉप और कभी-कभी चॉकलेटचूसती-चूसती मैं एमलैस ड्राइविंग करती जाती हूँ ।···थक जाती हूँ तो स्विमिंग पूल में घंटों पड़ी रहती हूँ ।"

जा रही थीं। वह स्थान ऐसा प्रतीत होता था मानो रंग-बिरंगे जानदार फूलों की फुलवारी हो या रंग-बिरंगी चिड़ियां जैसे एक स्थान पर एकत्र होकर शोर कर रही हों। इस जनाने समूह में तरह-तरह की तथा विभिन्न आकारों तथा आयु की, रंग-बिरंगे कपड़ों में प्रायः हर प्रकार की महिलाएँ थीं।

श्रीमती घाटपाण्डे की पत्नी ने मेजर फिलिप्स की पत्नी के ओठों की ओर देखते हुए पूछा, "तुम्हारी लिपस्टिक की शेड तो बहुत अच्छी है।······किस दुकान से खरीदी थी?"

"यह तो फ्रांस से खरीदी है। अभी ये गाज़ा गये थे। यूरोप घूमते हुए ·····फ्रांस में इन्हें यह खास पसन्द आई।······वैसे तो मेरे लिए पूरा कॉस्मैटिक्स् का बॉक्स ही लाए हैं।······दो सौ बाईस रुपए कीमत है।"

"देखते ही पता लगता है कि यह इण्डियन नहीं है। देखो, मैंने यह क्यूटीकोरा यूज़ किया है। यह भी फ़ॉरेन की ही है······पर······अच्छा कभी मेजरसॉब बाहर जाएँ तो मेरा ख़याल रखना। मुझे इन्फ़ार्म करना।"

"अभी बीच में ही कांगो जाने का चांस था।······परन्तु दूसरा मेजर चांस मार गया······।"

"कैसे······?"

"अपनी बीबी के कारण।"

इतने में ही दानों का ध्यान कमला पारिख ने आकर्षित किया। डॉ० मिस पारिख की अवस्था कोई ४५ बरस की थी। आँखों के आस-पास खासी झुर्रियां पड़ रही थीं, परन्तु अवस्था के अनुसार उनके मेक-अप में काई फर्क नहीं आया था। पतले-से स्लीवलैस ब्लाउज़ में उरोजों का प्रदर्शन करती हुई, जूड़े में फूल लगाए, चेहरे पर पाउडर पोते, मुस्कराती तथा मटकती हुई वे आईं। मिसेज़ बाटलीवाला ने पूछा, "आज किस को घायल करने निकली हो?"

"जिसको······भी आज तक न घायल कर सकी।" डॉ० कमला पारिख ने एवार्शन्स् के केसेज़ में बहुत पैसा कमाया था। इतने में ही ऐसा लगा कि नारंगियों के समूह पर जैसे कोई भारी-सा पत्थर आ पड़ा हो। मिसेज़ धींगरा की उपस्थिति कुछ ऐसी थी।

"आज ऐसे ही ······।" एक ने पुकारकर पूछा । मिसेज़ धींगरा खड़ी तो यहाँ थी परन्तु उसका ध्यान दूर सामने की कोटों पर था। उसने कहा—"मिस्टर धींगरा को मैंने रिंग किया। कहने लगे आधा घंटा लेट आऊँगा। इधर आधे घंटे के चालीस मिनट हो गए। मैं तो टाइम की पाबन्द हूँ···।" इतना कहकर मिसेज़ धींगरा आगे निकल गई। उसके जाने पर एक ने कहा—"बड़ी आई टाइमकी पाबंद···जान तो सुबह से यहीं लटकी होगी···"

मंडूलाल से हाथ मिलाती हुई मिसेज़ धींगरा 'महत्त्वपूर्ण पुरुषों' में जा बैठी। उसने कहा—"मुझे बकरियों में बैठना अच्छा नहीं लगता।"

वर-वधू को माला पहनाकर अपनी दोनों हथिनी-जैसी बेटियों को साथ लिये यमुनाबाई मस्तानी चाल से आ रही थीं। यमुनाबाई की ऊँचाई पौने छै फुट थी। सरकारी वेश्या उन्मूलन कानून तथा अपनी अवस्था के कारण उन्होंने अब अपना बिजनेस बन्द कर दिया था। पर लोग भी ऐसे माई के लाल थे कि यमुनाबाई के बारे में नजाने क्या-क्या अफवाहें उड़ाया करते थे। वे दोनों बेटियों सहित सीना ताने आत्मविश्वास की नजरों से आस-पास देखती हुई चल रही थीं।

"इसकी लड़कियों की चोटियाँ कैसी घनी लग रही हैं?" एक ने धीमे से कहा।

"वे अपने-आपको अभी बच्चियाँ ही समझती हैं।"

"हाय···हाय इसकी माँ ने भी देखो कैसे पत्ते निकाले हैं?" यमुनाबाई का भी कभी नागपुर में ज़माना था।

मिस पुरी अपने बौने कद के कारण लुढ़कती-सी प्रतीत हो रही थीं। उनके साथ उनकी जवान बेटी थी जो लालीपॉप चूसती हुई सारी गैदरिंग का सरसरी नजर से मुआइना करती हुई आ रही थी। बैंक मैनेजर मि० पुरी चुरुट का धुंआ फेंकते हुए सेठ मंडूलाल से शेक हैंड करते हैं। बातों के सिलसिले में पुरीजी की पुत्री कहती हैं, "मुझे तो जिन्दगी में सिर्फ तीन चीजों का ही शौक है—ड्राइविंग करना ··लालीपॉप चूसना और स्विमिंग करना।लालीपॉप और कभी-कभी चॉकलेट चूसती-चूसती मैं एकसलेन्ट ड्राइविंग करती जाती हूँ।···थक जाती हूँ तो स्विमिंग पून में घंटों पड़ी रहती हूँ।"

इतने में ही सोविता सरकार ने सिगरेट सुलगाई और लम्बा कश लेते हुए दो-चार अन्य औरतों को भी सलाह दी कि अपनी थकावट व बोरियत मिटाने के लिए वे सिगरेट फूंकें। उनकी इस सलाह का तात्कालिक प्रभाव गणपतराव पांडे की मुन्नी पर पड़ा। उसने सिगरेट सुलगाते-सुलगाते कहा—"मैं तो पिछले चार दिनों से बोर हो गई हूं। समझ ही नहीं पड़ता कि क्या करूं···कहां जाऊं? परसों का दिन पिकनिक में बिता दिया। कल दो सिनेमा देखे, फिर सोचा कि चलो इस फंक्शन में मज़ा आएगा, परन्तु यहां भी बैठे-बैठे बोर हो गई।······अब समझ नहीं आता कि घर जाकर क्या करूं?"

मिसेज़ तिवारी ने टोकते हुए कहा—"अपनी बोरियत दूर करने से पहले तू यह बता कि तूने अंग्रेज़ी पुस्तकों का पिंक कलर का सैट आखिर कहां से लिया? मैं भी अपने ड्राइंग रूम में पिंक कलर करवा रही हूं। मुझे भी पिंक कलर के बाइंडिंग की आवश्यता है।"

"ऐसे कवर की पुस्तकें आपको नहीं मिलेंगी···बुकसेलर्स के पास यदि इतना ही दिमाग होता तो क्या बात थी? तू अंग्रेजी की पुस्तकों का सैट खरीदकर उनकी बाइंडिंग बदलवा दे।"

"आइडिया तो अच्छा है।"

इतने में विदेशी टूरिस्टों के एक समूह ने प्रवेश किया। उनमें तीन पुरुष व तीन स्त्रियां थीं। उनके कंधों से कैमरे, दूरबीनें आदि लटकी हुई थीं। सेठजी ने उन्हें खास तौर से आमंत्रित किया था। वे 'इंडियन मैरिज' देखना चाहते थे। दो स्त्रियां स्लैक्स पहने थीं। वे लगातार सिगरेट-पर-सिगरेट पीती जा रही थीं। उन्होंने आते ही कहा, "ओ···वण्डरफुल···इंडियन मैरिज···हाउ-वण्डरफुल···?"

ये टूरिस्ट वर्ल्ड टूर पर निकले थे। सिर्फ सात दिन के अन्दर वे 'भारतीय संस्कृति की आत्मा' को समझना चाहते थे। झंडुलाल ने उन्हें अपना सारा बंगला दिखाया, फिर शादी की रस्म, भारतीय दांपत्य जीवन का आदर्श व उद्देश्य समझाकर उन्हें यह बताया कि यदि वे भारतीय आदर्श का पालन करें तो उनमें पश्चिमी जीवन से अराजकता दूर हो सकती है और वे भी सुखी व संतोषी होकर भारतीयों के समान

आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

वे लोग बड़े धैर्य से झंडूलाल की बातें नोट कर रहे थे। झंडूलाल की बातें सुनकर वे 'थैंक्यू···वण्डरफुल···एक्सलेंट···' के सिवाय कुछ कहते ही नहीं थे। उस विदेशी बुढ़िया ने जाते-जाते झंडूलालजी को बताया कि वह भारतीय संस्कृति से बहुत प्रभावित हुई है और यदि उसका वश चला तो अगले जन्म में वह भारत में जन्म लेने का प्रयास करेगी।

उधर मिस वाघमोर···खोवरागड़े को अपने घर तीन पत्ती खेलने का आमंत्रण दे रही थीं। उधर मिसेज रामलिंगम् ज़ोर-शोर से यह बताने का प्रयास कर रही थीं कि आजकल सिविल सर्विस की हालत कितनी खराब हो गई है। अब तो ऐरा-गैरा कोई भी आई० ए० एस० में ले लिया जाता है। अब तो पढ़ाई के साथ-साथ 'भिड़ाई' का होना जरूरी है। साला एक हजार मासिक में गुज़ारा नहीं होता, ज़माना कितना मँहगा आया है।

रतिबेन कापड़िया बंबई से अभी ताज़ा बॉब करवाकर आई थी। उसकी स्टाइल सबने पसंद की।

इतने में ही लोगों का ध्यान अपनी असाधारण वेशभूषा तथा बेढंगी पोशाकों के कारण कवियों के समूह ने आकर्षित किया। कवि एक साथ प्रवेश कर रहे थे। सांस्कृतिक प्रोग्राम में कवि-सम्मेलन भी होने वाला था। केवल चुने हुए कवि बुलाए गये थे। इन कवियों से यह अपेक्षित था कि ये सेठजी एवं उनकी पुत्री व जमाई का यशोगान करें। इनमें तीन-चार बंबई के फ़िल्मी कवि भी थे जिनकी ज़िंदगी सेठों के लिए, फ़िल्मों के लिए, विवाहों के निमंत्रण-पत्रों के लिए गीत व कविताएँ लिखते बीती थी। ये कवि अपनी मस्ती में आ रहे थे। इनमें से अधिकतर की शिकायत थी कि इतने कवि-सम्मेलनों के हीरो होते हुए भी हिन्दी साहित्य में उनका कहीं भी नाम नहीं है। आखिर उनकी इस मूक साधना का उन्हें कब फल मिलेगा? उनके साथ लंबा-चौड़ा शरीर लिये कमलकान्त श्रीवास्तव थे जो उनका नेतृत्व कर रहे थे। वे अपने-आपको हिन्दी साहित्य का महान् नाटककार समझते थे। दो-चार संस्थाओं का पैसा हड़प कर उन्होंने नौकरी से अपने-आप ही सेवा-निवृत्ति पा ली थी। एक कोने में बैठे हिन्दी साहित्य के एक दुखी कालेज अध्यापक बड़बड़ाते हैं—हिन्दी की मिट्टी इन

हिन्दी वालों ने बिगाड़ रखी है। साले सब जगह डॉक्टर-ही-डॉक्टर नजर आते हैं···कोई भी कम्पाउंडर नहीं है। महन्तशाही है। दिल्ली, बनारस, इलाहाबाद आदि-आदि महन्तों के गढ़ बने हैं। एक गुरु अपने दस चेलों को दस विश्वविद्यालयों में घुसेड़ देते हैं। हिन्दी के पुराने आलोचक लिखना-पढ़ना छोड़कर महन्त बन गये हैं···हर किसी ने अपने आसपास चाटुकारों का एक मंडल तैयार कर रखा है।"

अचानक फाटक पर छूटने वाली आतिशबाजियों ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया। काफी रोशनी होने लगी। पटाखों की लड़ियों की लड़ियां छोड़ी जा रही थीं। बीच-बीच में 'एटम बम' भी छोड़े जा रहे थे। आसमान में रॉकेट उड़कर अपनी निराली छटा बता रहे थे। रॉकेट नीचे से छूटकर आकाश में जोर से फटकर प्रकाश के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटकर गिरते-गिरते बुझ जाते थे। अचानक बैंड बज उठा।

सबने सुना कि रजनीबाला एण्ड पार्टी आ गई···'थ्री चीअर्स फॉर··· रजनीबाला एण्ड पार्टी···हिप-हिप-हुर्रे···हिप-हिप-हुर्रे···हिप-हिप-हुर्रे···।"

अत्यंत सादी पोशाक में सीना ताने मिस रजनीबाला अपनी पार्टी का नेतृत्व करती चली आ रही थीं।

दूसरे दिन नागपुर के अखबारों ने इस आदर्श विवाह के जोर-शोर से समाचार छापे। देश के कोने-कोने से आये हुए अभिनंदनपत्र व बधाइयां छापी गईं। कुछ कांग्रेसी अखबार तो इस आदर्श विवाह का कोई-न-कोई समाचार लगातार आठ दिनों तक छापते रहे।

६

रेणु के व्यवहार से रामू ने अपने-आपको बहुत अपमानित महसूस किया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह आसमान के नीचे फेंक दिया गया हो। रामू ने अपमान चुपचाप पी लिया। उसने चटर्जी के घर जाना भी बंद कर दिया। वह इस समस्त प्रकरण को भूल जाना चाहता था परन्तु चाहते हुए भी वह ऐसा न कर सका। उसने मन ही मन सोच लिया कि अब वह

चटर्जी के यहाँ ट्यूशन नहीं करेगा। मिल गया उसे सर्टिफिकेट जो मिलना था। आठ-नौ वर्षों तक कार्य करने के पश्चात् भी उसकी हस्ती एक सामान्य मास्टर से अधिक नहीं थी। हर मनुष्य दूसरे का मूल्य उससे मिलने वाले फ़ायदे के अनुपात में ही आँकता है। वह सोचता है कि रेणु केवल उससे इस कारण ही मीठा व्यवहार करती थी, क्योंकि उसे कुछ उम्मीद थी। जिस दिन रेणु की वह उम्मीद शीशे की तरह चूर-चूर हो गई उसी दिन रामू को पता लगा कि उसका वास्तविक मूल्य रेणु की नज़रों में क्या है ? रामू सोचता है कि उसने मौके-बेमौके जो सहायता की इसी कारण ही चटर्जी भी उसके प्रति एक प्रकार का वात्सल्य भाव बताया करते थे। रेणु की बीमारी में रामू ने जो-तोड़ मेहनत की, इसलिए चटर्जी कृतज्ञता के भार से दबे, अन्यथा उन्हें रामू से क्या मतलब ?

रामू को नित्य-नये दोस्त मिलते परन्तु उसका अकेलापन बढ़ता ही जा रहा था। रेणु का कथन था कि एक मास्टर की हैसियत से ही कम-से-कम रामू को अपनी ड्यूटी का निर्वाह करना चाहिए था। रामू को याद आता है···वह सोचता है कि पैसेवाले, पैसेवाले ही होते हैं, जो चार पैसे देते हैं वे भी उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाते। विचारों की आँधी व तूफ़ान को लिए वह चटर्जी के घर नहीं गया।

एक दिन रामू बर्डी-स्क्वेयर पर पान-ठेले के सामने खड़ा था। पान मुँह में डालने के लिये उसने अभी मुँह खोला ही था कि सामने चटर्जी दिखाई दिये। हाथ का पान हाथ में ही रह गया। उसने कहा, "आप ।"

"जी मैं······।" चटर्जी ने कहा।

"पान तो खाइये····· कम-से-कम······।"

"आप शौक फ़र्माइए···मेरे लिए तक्लीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं। ·· मेरे साथ आइए।" रामू हाथ में ही पान पकड़े चल रहा था। पान खाने की हिम्मत अब उसे नहीं हो रही थी। चलते-चलते उसने पान फेंक दिया। वेरायटी स्क्वेयर के पास चटर्जी ने अपनी मोटर रोक रखी थी। मोटर में बैठते हुए चटर्जी ने पूछा—"इतने दिन कहाँ थे ? · यह क्या रूप बना रखा है ? तुम भी अजीब मनकी हो। जो नदारद होते हो तो तुम्हारा पता तक नहीं चलता। पूछो कहाँ थे, तो हँसते ही रहते हो।"

रामू चुप ही रहा। चटर्जी मोटर चला रहे थे। रामू उनकी बगल में ही बैठा था। वह चटर्जी के चेहरे को देखता है। चटर्जी की आँखें सामने आने-जाने वाली मोटरों पर केन्द्रित थीं। सड़कों के बल्ब की रोशनी में चटर्जी की बड़ी व नुकीली मूँछें चमक-सी रही थीं। मोटर चलाते हुए चटर्जी ने पूछा—"आखिर आये क्यों नहीं थे?...क्या बात थी?" रामू को लगा कि जैसे चटर्जी परिवार के प्रति उसके कुछ आवश्यक व अनिवार्य कार्य हैं। उन कार्यों के न करने पर हर कोई उससे कैफियत माँगता है। रामू से इस बात की मौन व सांकेतिक शिकायत की जाती है कि उसका जो अधिकार चटर्जी परिवार में है, उसका वह खुलकर पूरा-पूरा उपयोग क्यों नहीं करता?

और एक रामू है कि वह संकोच में ही सिकुड़कर रह जाता है। न जाने वह इतना संकोच क्यों करता है? वह अपने-आपसे ही प्रश्न करता है। वह सदैव अपने-आपको बचाये-बचाये फिरता है। इस बात के लिए हद से ज्यादा सचेष्ट रहता है कि उससे कहीं कोई गलती न हो जाये। चटर्जी कभी-कभी सोचते हैं, कि कैसे गोलमटोल स्वभाव का यह आदमी है। चटर्जी परिवार ने तो औपचारिकता की सीमायें तोड़ डाली थीं, परन्तु इस सबको रामू चटर्जी का केवल बड़प्पन ही समझता था। रामू अपनी इस सीमा को समय-समय पर मजबूत करता रहता था। उसने कहा—"मैं अब ट्यूशन करना नहीं चाहता इसलिये नियमित रूप से आने की आवश्यकता नहीं समझता।'

"मैं भी यही समझता हूँ कि अब तुम्हें ट्यूशन करने की आवश्यकता नहीं है।" चटर्जी का कहने का वैसे आशय दूसरा था, किन्तु रामू ने उसका अर्थ अपनी समझ व अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही लगाया। चटर्जी का यह कथन रामू को भला नहीं लगा। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अब ट्यूशन नहीं करेगा, किन्तु उसी बात को कर्नल चटर्जी के मुख से सुनकर वह मुर्झा-सा गया। रामू मन में सोच रहा था कि वह कहेगा, "मैं ट्यूशन नहीं करूँगा।" तब चटर्जी उसे मनायेंगे। रामू की हालत उस लड़ने वाले की तरह हो रही थी कि जो दर्शकों से यह अपेक्षा करे कि लोग उसे लड़ने से रोकें और वह उतना ही जोश जताये। रामू ने सोचा—हाँ इन्हें अब क्यों जरूरत होगी? रेणु तो केवल विवाह योग्य होने के लिए

सितार सीख रही थी, सो तो उसने सीख ली। अब मेरी भला चटर्जी परिवार में क्या आवश्यकता? किन्तु चटर्जी के कहने का आशय दूसरा ही था।

७

फरवरी १९६२।

संसार के सबसे बड़े प्रजातंत्र देश का चुनाव।

नये प्रान्त मे झंडुलाल के मंत्री बनने की काफ़ी संभावनाएँ थी, क्योंकि सेठजी ने डटकर नाग-विदर्भ आन्दोलन का विरोध किया था। उन्होंने महाराष्ट्र विधानसभा में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। उस समय उन्हें उपमंत्री बनने का चांस था, परन्तु उपमन्त्री दूसरे को बनवाकर सेठजी सरकारी सहायता से केवल दो मिलें खोलकर ही शांत हो गये थे। उपमंत्री या मंत्री बनना उनके लिए कोई मायने नहीं रखता था। वे अब राजा नहीं बल्कि राजाओं को बनाने वाले थे—अपने-आपको वे किंगमेकर समझते थे। अपनी अवलमंदी व कूटनीति से उन्होंने बियाणी एवं अणे जैसे बरार के चोटी के नेताओं को परास्त कर नागपुर की इज्ज़त मिट्टी में मिला दी थी। इस कारण बंबई-पूना के कांग्रेसी सर्कल मे सेठजी की प्रतिष्ठा विशेष रूप से बढ़ गई थी। सेठजी को आशा थी कि अब चुनाव के पश्चात् वे अवश्य मंत्री बनेंगे। विदर्भ का जितना सेठजी नेतृत्व करते थे उतनी ही अंदर से उन्हें विदर्भ के लोगों से नफरत थी, परन्तु फिर भी कबाब मे हड्डी आ ही गई। जहाँ से सेठजी खड़े हो रहे थे, वहीं से उनके विरुद्ध नाथूलाल भी खड़ा हो रहा था। नाथूलाल ने एक बार झंडुलाल को सोचने के लिए विवश कर दिया कि वह इतना मामूली आदमी नहीं है जितना कि सेठजी उसे समझते हैं।

सेठजी ने समझ लिया कि बिना नाथूलाल का फैसला किए तो वे न मंत्री ही बन सकते हैं और न ही एम० एल० ए०। चुनाव के सिलसिले मे कई महान् कांग्रेसी नेता अपने तूफानी दौरे में नागपुर आये हुए थे। धरमपेठ मे संध्या को झंडाचौक में सार्वजनिक भाषण होने वाला था। रामटेक से नागपुर तक झंडुलालके नेतृत्व में पद-यात्रा का आयोजन समाप्त हुआ था। पद-यात्रा

से लौटकर सेठजी ने मुसम्मी का रस पिया। उनके खद्दर के कपड़े धूल से भरे जा रहे थे। उन्होंने अपनी पोशाक झाड़-पोंछकर साफ की। पद-यात्रा के पश्चात् चर्खा-कताई, सामूहिक सेवा और रामधुन का कार्यक्रम था। बड़ा-सा पोस्टर सामने ही टँगा था। उस पर पंडित नेहरू का चित्र था। नीचे ही बैल-जोड़ी की तस्वीर बनी हुई थी। पिछले तीन दिनों में नाथूलाल ने कोई अन्य प्रोग्राम आयोजित करने का लक्षण नहीं बताया था। इस कारण सेठ झंडुलाल ने समझा कि शायद नाथूलाल ठंडा पड़ गया है। तीसरे दिन नाथूलाल ने घोषित करवाया कि शाम को झंडाचौक से कुछ दूर हटकर उसका भी लैक्चर है। नाथूलाल लोगों को संबोधित करते हुए कहता है—"भाइयो, आपके हाथ में जो सत्ता है उसका दिन आ रहा है। उस दिन आप चाहें तो बड़े-से-बड़े नेता को भी पछाड़ सकते हैं। आप वोट देने से पहले यह अच्छी तरह से देख लें कि आप किसे वोट दे रहे हैं? और आपके दिये हुए वोट से राष्ट्र का हित कैसे होगा? आप महान् नेताओं एवं बैलों के चित्र देखकर कांग्रेस को वोट देते हैं और इसके पश्चात् अपने कार्य की इतिश्री समझ लेते हैं। आप यह भूल जाते हैं कि आपने यह अपना कीमती वोट महान् नेताओं के नाम पर झंडुलाल सरीखे मक्कार व भ्रष्ट आदमी को दिया है। ऐसे लोग असेम्बली में जाकर केवल अपना ही उल्लू सीधा करते हैं।

"प्रजातंत्र अपने-आपमें बुरा नहीं है, परन्तु उसे झंडुलाल जैसे लोगों ने बिगाड़ रखा है। आप ऐसे आदमी को वोट दीजिये जो आप लोगों के हितों का खयाल रखे या सरकार से उचित ढंग से जवाब तलब कर सके। दिन-प्रतिदिन बिगड़ने वाली हालत को आप लोगों ने यदि उचित व जिम्मेवार उम्मीदवार चुनकर न सुधारा तो देश की आजादी ज्यादा दिन नहीं टिक सकेगी। पड़ोसी राष्ट्रों के इरादे किसी से छिपे नहीं हैं।

"राजा-महाराजा, मालगुज़ार, ज़मींदार, अंग्रेज़ आदि तो चले गये, परन्तु उनकी जगह नया शोषक वर्ग उठ खड़ा हुआ है। भाई-भतीजावाद पनप रहा है। बड़ी-बड़ी मिलों के मालिक, उद्योगपति और मोटी-मोटी तनख्वाहें लेकर मौज करने वाले सरकारी अफसर उस शोषक वर्ग के अंग हैं। अंग्रेज़ गये किन्तु नौकरशाही नहीं गई। नौकरशाही की दीवार दिनों-

दिन चौड़ी हो रही है, जो इस दीवार को तोड़ने का प्रयास करता है, उसके हाथ काट दिये जाते हैं, मुँह बन्द कर दिया जाता है।

किसी भी सरकारी अफसर को तनख्वाह हजार-पन्द्रह-सौ से ऊपर रखना गरीब जनता के पैसे का दुरुपयोग करना है। घूसखोरी, भ्रष्टाचार, बेईमानी, आलस्य और लालफीताशाही आज की सरकार में घुस बैठे हैं। सरकारी नौकर न तो जनता से ठीक तरह से बर्ताव ही करते हैं और न ही अपना फर्ज अदा करते हैं। या तो वे घूसखोर मिलेंगे या फिर कानून को पालने के नाम से भ्रष्ट और हृदयशून्य होंगे। पुलिस, पी० डब्ल्यू० डी०, आबकारी, इनकम-टैक्स, सेल्स-टैक्स आदि महकमों पर आपको मेरे मत की आवश्यकता नहीं है। और यह ढील दिन-पर-दिन बढ़ रही है।

"कांग्रेस में एक नहीं बल्कि कई झंडूलाल जैसे घुस बैठे हैं जिन्हें यदि आपका वोट न मिले तो वे सत्ता न प्राप्त कर सकेंगे। वे अपने को जनता के प्रतिनिधि कहते फिरते हैं। दो-एक चोटी के नेता स्थिति सुधारना भी चाहते हैं तो उन्हें वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं लगता; क्योंकि उनके पास चाटुकारों का बहुत बड़ा घेरा है जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नेताओं को वस्तुस्थिति का पता नहीं लगने देता। पद-यात्रा, सेवा-सप्ताह, रामधुन इस ढोंग के एडवरटाइजमैंट के तरीके हैं जिनकी आड में जनता को गुमराह करने का प्रयास किया जाता है।

"नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी को तो केवल शारीरिक रूप से ही समाप्त किया था परन्तु उनके चेले गांधीजी का नाम ही समाप्त कर दम लेंगे।

"*झंडूलाल से पूछो कि उसने कब से खद्दर पहनना शुरू किया?* जिस खद्दर की आजादी से पहले पूजा होती थी उसी खद्दर को आजादी के बाद ढोंग का प्रतीक माना जाता है, क्यों? इस पर कभी आपने विचारा?

"……उसने सौ रिक्शों का दान कर, कौन-सा तीर मारा? क्या वह अपनी सारी मिलें मजदूरों को देने को तैयार है? इनके बाप को भी समाजवाद का मतलब मालूम नहीं। तोते की तरह केवल समय का रुख देखकर ये लोग इन शब्दों को दुहराते हैं। संविधान की ओर से आपको एक दिन मिला है। अपनी ताकत को पहचानो।

"......जिस कांग्रेस का नाम आपके सामने लिया जाता है वह तो आज़ादी के पहले की है, जिसका मैं भी एक सदस्य था। सिर पर कफ़न बांध-बांधकर...मैंने भी क्रांतियों में भाग लिया है, लेकिन आज़ादी के बाद सत्ता और संपत्ति के लिए कांग्रेसी कुत्तों की तरह छीना-झपटी कर रहे हैं। जो कल तक मुंह की मक्खी नहीं उड़ा सकते वे आज लाखों के मालिक हैं ..क्या आप उनको वोट देंगे?

"......कुछ नेता हैं जो जेल में गये थे। थोड़ी-बहुत जिन्होंने आज़ादी के लिए मार भी खाई है, वे भी आज पूंजीपति बन बैठे हैं—उन्होंने अखबारों को खरीद लिया है......।"

झंडूलाल ने देखा कि भीड़ धीरे-धीरे छंट रही है और नाथूलाल के भाषण की ओर खिसक रही है, तो वे खून का घूंट पीकर रह गये। बोलने खड़े हुए—"भाइयो, हमारा देश एक धार्मिक देश है। हमारे देश को स्वतंत्र कराकर महात्माजी ने सत्य और अहिंसा का मार्ग बताया। उनके बाद हमारे कंधों पर भारी ज़िम्मेदारी आ गई है। सदियों की दासता के बाद हम जागे हैं। आज़ादी के बाद हमने जो उन्नति की है वह आश्चर्यजनक है। हमारे साधन सीमित हैं फिर भी भारत प्रगति कर रहा है।

"......आजकल गालियां देना ज़माने का फैशन हो गया है। कांग्रेस को, सरकार को, लीडरों को, गांधी-नेहरू को, अपनी संस्कृति और धर्म को तथा अपने रीति-रिवाजों को हर कोई गाली देता मिलेगा। आज आदमी पैदा होता है, उसकी शक्ल अभी निकलती नहीं कि वह पहले गालियां देना सीखता है। आलोचना-प्रत्यालोचना करता है। और तो और अब तो यह ज़माना आ गया है कि बेटे बाप से पूछते हैं—'मुझको क्यों पैदा किया?'

"......मैं पूछता हूं कि ये गाली देने वाले, घूसखोरी और बदमाशी से ऊपर हैं क्या? वे इसलिए गालियां देते हैं कि स्वयं उन्हें हाथ रंगने का मौका हाथ नहीं आता। यदि वे उस अवसर को पाते तो चुपचाप ज़बान बंद कर वही रास्ता अपनाते। सहकारी समितियां, सहकारी मकान, निर्माण योजनाएं क्या सरकार ने अपने लिए बनाई हैं? फिर ये क्यों नहीं सफल होतीं? कारण साफ है...जिनके लिए ये समितियां बनाई गई हैं वे

ही स्वयं भ्रष्ट एवं बदमाश हैं।

"......मैं मान लेता हूँ कि कांग्रेस बुरी है। इसमें चोर-उचक्के भरे हैं परन्तु मैं आपसे एक सीधा-सा सवाल करता हूँ कि जिस पार्टी में तिलक, गांधी, नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, सुभाष और पटेल जैसे लोग हुए" और उसका यदि यह हाल है, तो अन्य छोटी-मोटी पार्टियों का क्या हाल होगा ? अन्य पार्टियां तो देश का भविष्य ही मिटा देंगी। कांग्रेस लाख बुरी होते हुए भी अन्य पार्टियों से लाख अच्छी है, यह आप भी मानते हैं और मैं भी इसलिए लाख गालियां देते हुए हम कांग्रेस को वोट देते हैं। झंडूलाल को आप वोट मत दीजिये, वह भ्रष्ट है, बदमाश है, अवसरवादी है, पर मेहरबान, कांग्रेस ने आपका क्या बिगाड़ा है ? कांग्रेस को गालियां देकर क्यों आप लोग अपने देश के भविष्य से मज़ाक करते हैं।

"हिन्दू महासभा, जनसंघ और मुस्लिम लीग सरीखी पार्टियों का तो सवाल ही नहीं उठता। ये तो साम्प्रदायिक पार्टियां हैं। विज्ञान के युग में भी धर्म का झंडा लेकर चलने वाले यही अक्लमंद लोग हैं। सांप्रदायिक दलों के नेता हर दम चिल्लाते मिलेंगे कि उनका धर्म खतरे में है। यदि ऐसा न कहें तो उनकी रोटी कहां से चले। दोस्तो, युग के अनुसार जमाने की मान्यताएं बदलती हैं। हमें आज ऐसी संस्कृति का निर्माण करना है जिसका स्तर अखिल भारतीय हो। इसलिए हमारा आदर्श एक सैक्यूलर देश का है।

"क्या हम पाकिस्तान का रास्ता नहीं अपना सकते थे ? पाकिस्तान में एक भी हिन्दू नहीं, जबकि यहां दस करोड़ मुसलमान मौज से रहते हैं और कुछ तो समय-समय पर प्रतिगामी कार्यवाहियां भी करते हैं, पर यह भारत की—और विशेषकर कांग्रेस की महानता है कि वह इन सबका निर्वाह किये जाती है।

"सोशलिस्ट, प्रजासोशलिस्ट व अन्य कई तरह की सोशलिस्ट पार्टियां हैं, परन्तु उनमें कोरी कागजी मसौदेबाजी एवं सिद्धान्त-ही-सिद्धान्त हैं। उनके पास न तो कोई नेता है और न कोई संगठन। मैं पूछता हूँ कि कांग्रेस के समाजवादी उद्देश्यों से इन समाजवादी पार्टियों के उद्देश्य कहां और कितने भिन्न हैं ?

"कम्युनिस्ट पार्टी का तो कुछ कहना ही बेकार है। यह कांग्रेस की महानता है कि जिसमें कामरेड पनप सकते हैं। कामरेडों के राज्य में अन्य कोई पार्टी नहीं होगी। वे लोग ताक में हैं कि केवल एक बार सत्ता मिले केवल एकबार" और भारत के भविष्य का फैसला वे रूस व चीन की लाइन में भारत को बैठाकर कर देंगे। कम्युनिस्टों का मार्ग हिंसापूर्ण है। रूस और चीन के इतिहास इसके गवाह हैं। कामरेडों के लिए क्रान्ति बड़ा प्यारा शब्द है, पर उनकी क्रान्ति का मतलब है चोरी-डकैती, खून-खराबी और अराजकता। उनका राज्य आया तो तानाशाही आ जायेगी, विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन ली जायेगी, समाचार-पत्रों पर वे कब्जा कर लेंगे।

"लोह-आवरण के पीछे जो होता है क्या उसके लोमहर्षक व रोमांचक वर्णन आप नहीं पढ़ते? क्या आप उसे अपने देश में दोहराना चाहते हैं? साम्यवाद एक तरह की गुलामी है। सारे देश पर एक गुट आतंक से शासन करता है। हर नागरिक को सिखाया जाता है कि वह स्टेट के लिए जिये। और मैं पूछता हूँ कि आखिर यह स्टेट है किसके लिए? यदि प्रजातन्त्र देशों में सत्ता और सम्पत्ति पूंजीवादियों के हाथ में होती है"'एक जगह केन्द्रित है, तो साम्यवादी देशों में क्या है? प्राइवेट पूँजीवाद न होकर साम्यवादी पूंजीवाद है—स्टेट-कैपिटलिज्म है। सारे देश की सत्ता व पूँजी एक गुट के हाथ में होती है। दोस्तो, यह सुनना बड़ा आकर्षक जान पड़ता है कि साम्यवादी देशों में गरीबों का राज्य होता है। गरीबों का तो हर युग में, हर देश में मरण है। साम्यवाद ने गरीबों का सबसे बड़ा मजाक किया है। लोगों से जबरदस्ती काम कराके उन्हें बराबरी की खुराक और कपड़ा आदि दिया जाता है। ऐसा साम्यवाद तो हमारे यहाँ जेलों में भी है। सब कैदियों को बराबर खाना-कपड़ा मिलता है। ऊपर से वे खेलते-कूदते और रेडियो सुनते हैं, पर कोई आजाद नहीं होता। बोलिये है जरूरत आपको ऐसे साम्यवाद की?

"रह गया स्वतंत्र पक्ष! इससे बड़ा प्रतिक्रियावादी व अवसरवादी दल भारत में कोई नहीं है। कांग्रेस के निराश सेठ, सेठियों, राजा-महाराजाओं आदि ने अपनी सम्पत्ति व हकों की सुरक्षा के लिए यह पार्टी बनाई

है। प्रारंभकर्त्ता कौन है? राजगोपालाचारी, जो अपनी कूटनीति से एक बार भी जेल नहीं गये। कांग्रेस में रहकर यदि अंग्रेजों से किसी ने पूरा-पूरा फायदा उठाया है तो वह है यह महान् व्यक्ति। उसे भारत का गवर्नर जनरल तक रहने का अवसर मिला है। बाद को उन्हें छुट्टी हो गई तो खोल ली स्वतंत्र पार्टी।

"अब सवाल है कि यदि आप पार्टी को वोट न देकर केवल व्यक्तियों को वोट दें तो क्या होगा? मेरा मतलब है कि आप सोचें भारत-भर की पार्टियों में बदमाश भरे हैं, इसलिए क्यों न महात्माओं को चुन-चुनकर पार्लियामेंट में भेजा जाये? उससे क्या होगा? अराजकता फैल जाएगी। आपका पार्लियामेंट एक चिड़ियाघर बन जायेगा जहाँ पर देश-भर के रंग-बिरंगे पक्षी आकर जमा होंगे और अपनी-अपनी बोलियाँ बोलेंगे। प्रजातन्त्र के उचित संचालन के लिए आपको किसी एक पार्टी को तो वोट देना ही होगा। पार्टी के अनुशासन से ही सरकार चल सकती है और मजबूत सरकार से ही राज्य का शासन चल सकता है।

"यह कोई कारण नहीं है कि जो कल तक जेल नहीं गया वह राज्य का शासन नहीं चला सकता। यह एक कारण हो सकता है, परन्तु केवल इसी आधार पर आदमी की कीमत नहीं आंकी जा सकती। सरकार चलाने के लिए अनुभवी व मजबूत आदमियों की आवश्यकता है। नाथूलाल एक अच्छा क्रान्तिकारी हो सकता है, अच्छा वक्ता हो सकता है। गली-गली जाकर भौंक भी सकता है, परन्तु ऐसे लोग क्या राज्य-शासन चलायेंगे, जिनकी न पार्टी है, जिनके पास न योजना है, जिनके पीछे न लोग हैं। नाथूलाल को आप एक महान् क्रान्तिकारी एवं महान् नेता समझते हैं तो अवश्य समझिये। आपकी मान्यताओं को मैं ठेस नहीं पहुँचाऊँगा। परन्तु आपको जो करना है, सोच-समझकर कीजिए। जिस वस्तु पर हम गर्व करते हैं पर जिसका उपयोग हमारे लिए कुछ नहीं होता, उसे हम अजायबघर में रख देते हैं। उसी प्रकार आप नाथूलाल को पूजा कीजिये। उसका एक-एक चित्र अपने घर में रखिये। उसकी फोटो सीने से लगाकर चूमिए। इससे ज्यादा नाथूलाल का कोई मूल्य नहीं। वह अपने-आपमें एक उलझा हुआ आदमी है जिसकी दुश्मनी केवल मुझसे है। वह अपने-आपको एक तरफ

पुराना कांग्रेसी कहता फिरता है, दूसरी ओर मेरी निंदा करता फिरता है। वह ऐसा कर सकता है क्योंकि उसके पास समय है······काम-धंधा कुछ नहीं है······मवाली आदमी है······

"मैं अपने-आपको महाराष्ट्रियन समझता हूँ। महाराष्ट्र की मिट्टी में मैंने अपनी जिन्दगी के चालीस वर्ष बिताये हैं। महाराष्ट्र की मिट्टी का पानी मुझमें खून बनकर समा चुका है।" इस वाक्य पर सभा-मंडप तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

भाषण समाप्त होते ही भीड़ से आवाज आई—"साले···झंडुलाल ···की·············।"

सेठजी के एक सहयोगी ने धीमे से उन्हें टोंचकर कहा, "सुन रहे हो कुछ···" सेठजी ने कहा,"अरे भाई काली कमली पर जिस तरह कोई और रंग नहीं चढ़ सकता, उसी प्रकार गांधीवादियों पर इन सब बातों का कुछ असर ही नहीं हो सकता। ऐसी बातें तो हम आये-दिन सुनते हैं। क्या फर्क पड़ता है? हमने अपने हृदय को इतना विशाल कर लिया है कि उन्हें क्षमा कर देते हैं। वे नहीं समझते कि वे क्या बोल रहे हैं।"

लोग कहते हैं कि नाथूलाल के भाषणों में उत्तेजना अधिक होती है। उसका काम सिवाय गालियाँ देने या चिल्लाने के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। नाथूलाल के पास कहने को तो बहुत है, पर वह अपनी बात कहना नहीं जानता। उसमें ढंग नहीं है संस्कार नहीं है। नाथूलाल का प्रभाव साधारण जनता पर अधिक पड़ता है।

सेठ झंडुलाल एक सधा हुआ खिलाड़ी है। वह अपनी बात कहना जानता है। वह सफल संगठनकर्त्ता है, परन्तु उसकी बातें साधारण लोगों को प्रभावित नहीं करतीं। पढ़े-लिखे लोगों पर उसकी बातों का असर होता है। वह इतना कच्चा नहीं है जितना उसे नाथूलाल समझता है। खैर लोग देखते हैं······चुनाव के मैदान में दो खिलाड़ी उतरते हैं, पैंतरे बदलते हैं। लोग सस्पेंस की हालत में हैं।

देखें कौन विजित होता है?

८

बजरंग की मौत के पश्चात् केशो ने समझा था कि समस्या शायद हल हो गई, परन्तु उसने देखा कि उसकी पत्नी उससे पहले से ज्यादा रूखा व अटपटा व्यवहार करने लगी है। वह अपने-आप खीझती है, चिल्लाती है। इधर दो-एक महीने से उसे मिरगी भी आने लगी थी। केशो ने दो-एक बार अपनी पत्नी पर हाथ भी उठाया। लोगों को कोई कारण समझ नहीं आता था। लोगों में तरह-तरह की कानाफूसियाँ होती थीं।

एक दिन केशो ने देखा कि उसका घर वीरान पड़ा है।

उसकी पत्नी विट्ठल दर्जी के साथ भाग गई। अपने पुत्र को भी साथ लेती गई। विट्ठल दर्जी पहले ही चार बच्चों का बाप था। दर्जी की दूकान पर उसकी मशीन उसकी पत्नी की तरह ही सिर धुनती पड़ी थी। उसे चलाने वाला कोई नहीं था।

केशो अपनी दूकान, मकान आदि मीरचंदानी को बेचकर धरमपेठ चला आया है। उसने झंडूलाल की दुकान सम्हाल ली है। झंडूलाल अब मिल ओनर्स और बैंकर्स हैं। दूकान पर बैठना उन्हें शोभा नहीं देता।

केशो और झंडू दोनों ही गरदन लटकाकर एक स्वर से कहते हैं—

"ज़माना ही बुरा आ रहा है।······मालूम नहीं हिन्दोस्तान का क्या होगा!"

झंडूलाल केशो से कहता है—"सेठ, मैं तुम्हें पहले ही तुम्हारी दूसरी शादी पर रोकने वाला था, परन्तु तुम जोश में थे। तुम्हारे उस जोश में होश का ठिकाना नहीं था। देखा आज आखिर यह परिणाम निकला। शादी का असली मज़ा, तो बिना शादी किए ही लूटने में है। खैर फिर भी तुम घबराओ मत, असली दुनिया तो मैं तुम्हें अब दिखाऊँगा। एक से एक हूरें और परियाँ देखकर तुम्हारी तबियत भी आखिर मस्त हो जायेगी।······ पैसा आखिर कमाया काहे के लिए है? बुढ़ापे में ऐश करो। जब तक दिल जवान है, तब तक बुढ़ापा कैसा? अब तो तुम आज़ाद हो। एक छोड़ दस के साथ मौज कर सकते हो। क्या तिलनखेड़ी-जैसी-सड़ी-सी बस्ती में अपनी जिन्दगी बसर कर रहे थे? अच्छा हुआ जो उस बस्ती को छोड़

दिया। ट्रस्ट वैसे भी एक दिन बस्ती के झोंपड़े उठा देगा। वहाँ लेवर कॉलोनी बनाने का प्लान है।······मायूस होने की जरूरत नहीं है। नई जिन्दगी देखने के लिए मैं तुम्हें नई आँखें दूंगा। ईश्वर जो करता है वह भले के लिए ही करता है।"

...और नाथूलाल मर गया

चुनाव की सरगर्मी जैसे-जैसे बढ़ रही थी वैसे-वैसे नाथूलाल, झंडुलाल के लिए एक जटिल समस्या का रूप धारण करने लगा था। सेठ झंडुलाल को समझ नहीं आता था कि आखिर वे क्या करें? सोचते-सोचते उनकी बल खाती हुई गरदन एक ओर झुक गई। नाथूलाल को वे पिछले दो चुनावों से देखते आ रहे थे। दोनों बार वह निर्वाचित हुआ था। सेठजी को उसके सामने पराजित होना पड़ा था। वे बाद को भले ही दूसरे क्षेत्रों से विजित होकर आ गये, परन्तु अपनी पराजय उन्हें अन्दर-ही-अन्दर जलाये देती थी। हर आनेवाले दिन में यह पौधा बड़ा ही होता जाता था। आज तक कहीं भी वे नाथूलाल को पराजित, अपमानित या कलंकित नहीं कर सके थे। झंडुलालजी की गरदन पर इतना मांस था कि प्रतीत होता था जैसे गरदन पर किसी ने रबर के रिंग रख दिये हों। वे अपनी मूँछों के बाल नोचते हुए कुछ देर सोचते रहे। उनकी गरदन सहसा तन गई।

झंडुलाल ने अपने खास आदमी को बुलाया और उसके जरिये नाथू-लाल को बुला भेजा।

नाथूलाल घूम-घूमकर सेठजी के विरुद्ध इतना प्रचार कर रहा था [illegible] सेठजी की भी अक्ल चक्कर खा गई थी। उन्होंने अपने राज-[illegible] जीवन में जितनी सफलताएँ प्राप्त की थीं, उतना ही नाथूलाल रूपी [illegible] हो जा रहा था। नाथूलाल ने अपने भाषणों द्वारा झंडुलाल को काफी मौखिक सर्टिफिकेट दिये थे। नाथूलाल के साथ-ही-साथ जनता से [illegible] सेठजी को उतनी ही चिढ़ थी। उन्हें यह समझ नहीं आता था कि आखिर मूर्ख जनता उनके जीवन की सफलता से प्रभावित न होकर एक आवारा और नंगे आदमी नाथूलाल के भाषणों से क्योंकर प्रभावित व

प्रसन्न होती है।

और नाथूलाल के भाषण ! कम-से-कम नागपुर में अपना सानी नहीं रखते थे। वह जानता था कि उसके एक-एक शब्द से सचाई टपकती है। उसे किसी का डर नहीं था। उसे मालूम था सच बोलना भी एक पाप है और झूठे मनुष्य के लिए उस सचाई का सामना करना और भी जहर के घूंट के समान है। झूठे आदमी का व्यक्तित्व रेत के एक महल के समान होता है। झंडु का व्यक्तित्व ऐसा ही था। झंडुलाल ने भौतिक सफलताएँ अवश्य प्राप्त की थीं, परन्तु परिणामवादी संसार में केवल भौतिक सफलताएँ ही किसी की महानता की कसौटी नहीं मानी जा सकतीं, भौतिक सफलता तो कुछ व्यावहारिक गुणों का परिणाम मात्र होती है। खोखला व्यक्तित्व भी कुछ उलटे-सीधे रास्तों को अपनाकर अमिट बन सकता है। नाथूलाल के भाषणों के समाचार सुनकर ऐसा लगता था मानो नाथूलाल झंडुलाल को बीच बाजार में आवरणहीन कर रहा हो, उनकी एक-एक पोशाक उतारता चला जा रहा हो।

सेठजी ने अपने निकटतम विश्वसनीय सहयोगियों को बुलाया और निर्णय लिया कि या तो वे अपने राजनैतिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेंगे या नाथूलाल को अपने रास्ते से हमेशा के लिए हटा देंगे। ऐसे असाधारण निर्णय सेठजी ने अपने जीवन में यदा-कदा ही लिये थे।

सेठजी ने जीप बुलवाई।

सेठजी ड्राइव कर रहे थे। हल्की-हल्की चांदनी छिटकी हुई थी। सेठजी नाथूलाल को हवाखोरी के लिए ले जा रहे थे। कम-से-कम नाथूलाल को तो यही कारण बताया गया था। नाथूलाल भी गाड़ी में इस आत्मविश्वास के साथ बैठा हुआ था जैसे यह उसके बाप की ही गाड़ी है। गाड़ी अम्बाझिरी तालाब पर से मोड़ लेती हुई एक विशाल महलनुमा इमारत के सामने रुकी। गाड़ी के रुकते ही दो तगड़े आदमियों ने निकलकर सेठजी का स्वागत किया।

नाथूलाल को सारा वातावरण असाधारण लग रहा था।

नाथूलाल ने वैसे इस भवन के बारे में काफ़ी कुछ सुन रखा था। लोगों में इस भवन को लेकर तरह-तरह की अफ़वाहें फैली थीं, इसको लेकर तरह-

तरह की उनमें कानाफूसी होती थी। कई लोगों का तो यह भी कथन था कि इस महलनुमा इमारत में कई बार उन्होंने लोगों को एक साथ विलाप करते भी सुना था। कई बार तो ऐसा प्रतीत होता जैसे कोई औरत सिर धुन-धुनकर यहां रोती है। उसके रुदन के ये हल्के-हल्के स्वर हवा के साथ तालाब के दूसरी ओर बाँध पर भी सुने जा सकते थे। कार्तिक और शरद पूर्णिमा को जब अम्बाझिरी के किनारे हर साल पूर्ण चन्द्र की स्निग्ध राका का स्नान करने लोग काफी संख्या में बांध पर जमा होते तो उस समय इस इमारत को लेकर उनमें कुछ-न-कुछ चर्चा अवश्य होती।

लोग कहते हैं कि झड़ूलाल ने अपनी जवानी में यहाँ न जाने कितनी रंगरलियाँ मनाई। राजे-महाराजों तथा अंग्रेज साहबों के साथ यहाँ न जाने कितने जलसे, पार्टियाँ और डान्स हुए हैं। उस समय कलकत्ता-बम्बई से एक-से-एक बढ़कर तवायफ को बुलाया जाता था। हजार-हजार रुपया तक सिर्फ एक घंटे का दिया गया है। न जाने कितनी हत्याएँ भी इसी भवन में हुई थीं। इतना ही नहीं बल्कि दो-एक प्रसिद्ध राजनैतिक हत्याओं का संबंध भी इस इमारत से बताया जाता है।

जस्टिस नियोगी के बंगले से सड़क घूमकर इस ओर जाती थी और आज इसी इमारत को देखने का सौभाग्य नाथूलाल को भी प्राप्त हुआ था।

सारी इमारत किसी मध्यकालीन बादशाह के महल की तरह लगती थी। बरामदे में तथा अन्य कमरों में हिरन, शेर तथा अन्य जंगली जानवरों के सिर लगे हुए थे। शहर से दूर होने के कारण इमारत में बिजली नहीं थी परन्तु गैस-बत्तियों द्वारा रोशनी का अत्युत्तम प्रबंध था।

यह इमारत किसी रियासती राजा से सेठजी ने खरीदी थी।

नाथू के साथ सेठजी एक बड़े-से हाल में आये। सारा फर्श साफ और चिकनी लकड़ी का बना हुआ था। हाल में चारों ओर लकड़ी के विशाल स्तम्भ थे। सारा हाल गैसबत्तियों से जगमगा रहा था। फर्श के बीचों-बीच एक गोलाकार जगह थी। किसी समय यह तवायफों के नाचने की जगह रही होगी। चारों ओर मसनदें लगी थीं। एक ओर दो कौच भी पड़े थे। उस हाल में खड़े होकर एक बार तो कम-से-कम सेठजी के सामने

उनका अतीत साकार हो उठा। वे भावुक-से हो उठे। उन्होंने कहा—"नाथूलाल, यह जगह उस पुराने जमाने की हसरतभरी यादगार है जब देश में ज़िन्दगी थी। अब तो वह ज़माना आ गया है जबकि न शराब, न नाच-घर, न नाच देखने वाले और न वे नर्तकियाँ, चारों ओर एक अजीब तरह की मुर्दनी छा गई है।"

"आप ही लोगों का तो यह ज़माना है। आप ही लोगों ने तो ये कानून बनाये हैं। सरकार ही आपकी है, फिर आप क्यों चिंता प्रकट कर रहे हैं?"

"नाथूलाल, तुम ज़िन्दगी-भर तर्क करते रहोगे। वास्तविक संसार को समझने का कभी प्रयास नहीं करोगे। मालूम नहीं तुम्हें क्यों केवल फकीर की तरह घूमना ही पसंद है।" अब तक नाथू के साथ सेठजी कोच पर बैठ चुके थे। श्वेत खद्दर के परिधान में सेठजी जँच रहे थे और पास ही नाथूलाल अपनी उल्टी-सीधी पोशाक में बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछ में एक भिखारी-सा लग रहा था। नाथूलाल ने कहा—"आप बीती हुई ज़िंदगी लौटाने का प्रयास कीजिये।"

"नाथूलाल, इस संसार में हर वस्तु का एक खास समय होता है। समय चला जाता है तो सब-कुछ चला जाता है। इन बातों का भी कभी समय था। अंग्रेज़ों तक का समय नहीं रहा, उन्हें भी इतनी बड़ी सल्तनत छोड़कर जाना पड़ा तो आखिर सेठ झंडुलाल किस खेत की मूली है? अक्लमंदी ज़माने के साथ चलकर उसे लीड करने में है।"

"······जो आप कर रहे हैं।"

"ये···बात···दे ताली!" और नाथूलाल के हाथ पसारते ही अपने समर्थन के लिये सेठजी ने नाथू के हाथ पर अपना हाथ दे मारा। सेठजी ने कहा, "नाथू, तुमने मुझे करीब से देखा है। तुम मुझे अच्छी तरह से जानते हो। लेकिन तुममें यही ऐब है कि तुम लोगों में व्यर्थ बकवास करते फिरते हो। यदि मेरे प्रति तुम्हें कोई शिकायत है तो तुम सीधे मुझसे क्यों नहीं कहते?"

नाथूलाल गंभीर हो गया। वह सामने टंगी हुई अंग्रेज घुड़सवार की विशाल तसवीर को एकटक देख रहा था। कमरे में दो-तीन तसवीरों के अतिरिक्त बाकी नग्न स्त्रियों के ही चित्र थे। हर तस्वीर में आवरणहीन

स्त्रियों की भिन्न-भिन्न मुद्राएँ बनी थी।

नाथूलाल ने पूछा —"आज इस ओर कैसे निकल आये···और वह भी मेरे साथ ?"

सेठजी के चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान फैल गई। वे कुछ सोचते रहे। उन्होंने कहा —"बस यो ही तबियत हो आई कि अपना पुराना गरीबखाना देखा जाये।···संध्या अच्छी तरह से बीत जायेगी · और तुम्हारा भी सत्संग हो जायेगा।"

"तो यों कहिए कि सत्संग की बात प्रमुख है···परन्तु वह भी अकारण नहीं हो सकता, क्योंकि मैं आपका पुराना और वह भी जानी दुश्मन हूं।"

'नाथूलाल·· मिर्च बड़ी तेज होती है···न··। फिर भी इंसान उसे क्यों खाता है ?···उसमें भी एक मजा है। उसी प्रकार अपने दुश्मन के सत्संग के बिना भी कभी-कभी जिन्दगी फुसफुसी लगती है। प्यार और खार में देखा जाए तो कभी-कभी एक-सा ही मजा आता है।"

"परन्तु मेरा सत्संग आप बिना मकसद के तो करने से रहे···।"

"मकसद ··? आओ मेरे साथ, छत पर चाँदनी का मजा लें। अथाभिरी का पानी इमारत के चरण चूम रहा है। आज पानी को भी पता है कि मैं आया हूँ · इसलिए वह भी शान्त है।"

"सिवाय मेरे कोई भी वस्तु आपके प्रभाव से शून्य नहीं है।"

"नाथू, आज तुम मुझे समझने का प्रयास कर रहे हो।"

सहसा सेठजी ने घूमकर कहा "यदि मैं तुमको अपनी अमरावती की मिल का जनरल मैनेजर बना दूँ तो ?" सुनकर नाथूलाल अप्रत्याशित रूप से हो-हो कर हँस पड़ा। नाथूलाल को इस तरह लगा जैसे उससे कोई मजाक किया जा रहा है। सेठजी को बुरा तो लगा परन्तु अपने-आपको संयत करते हुए उन्होंने कहा, "नाथूलाल, मैं तुम्हारा मजाक नहीं कर रहा हूँ। मैं रातों-रात तुम्हारी कायापलट कर सकता हूँ। मोटर, बंगला, शान-शौकत, सब तुम्हारे सामने हाजिर कर सकता हूँ।"

"सेठजी, अब इस उम्र में इन सबकी क्या जरूरत ?"

"इनकी जरूरत तो जिन्दगी के आखिरी दम तक रहती है।···इस प्रकार आती हुई लक्ष्मी को लात मारना कहाँ की बुद्धिमानी है ?"

"अपनी-अपनी समझ है।"

"'अच्छा मैं तुमसे एक रिक्वेस्ट करता हूँ।'"

"आप क्या चाहते हैं ?"

'मैं चाहता हूँ कि तुम राजनैतिक जीवन से संन्यास ले लो। बदले में चाहे जो माँगो दूँगा।…बोलो लाख…दो लाख…तीन लाख…। तुम्हारे नाम कर सकता हूँ।"

"गोया आप मुझे खरीदना चाहते हैं।"

"माई-बाप, बहस छोड़ो…हठ छोड़ो…मेरी बात का उत्तर दो।"

"सेठजी, यह सिद्धान्तों के पालन का प्रश्न है…आप राजनैतिक जीवन से हट जाइए तो मैं…सोचूँगा।"

"अच्छा कम-से-कम मेरे रास्ते से ही हट आओ। जो माँगोगे दूँगा। नाथू, हाथ पसारो…मुँह खोलो…ट्राई तो करो।"

नाथूलाल गंभीर सोच-विचार में पड़ गया। बगल में हाथ किए ज़मीन को देखते हुए आत्मविश्वास से भरे किन्तु धीमे स्वर में नाथूलाल ने कहा—'सेठजी, मेरी लड़ाई आपसे नहीं है। आप तो मेरे बुजुर्गवार हैं, आदरणीय हैं। यदि ऐसा न होता तो इतनी सहजता के साथ मैं आपके साथ, यहाँ तक न आता। मेरा विरोध तो आपके या आप जैसे लोगों के दिखावे या ढोंग से है, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। जिन्होंने सिद्धान्तों और आदर्शों की आड़ में भूखे, नंगे, बेबस और गरीब लोगों से सम्पत्ति छीनकर अपने पास एकत्रित कर ली है। जिन्होंने अपनी मक्कारी, ढोंग और चालाकी से सत्ता और संपत्ति पर अधिकार कर रखा है। जो केवल अपने लिए ही जीवित हैं। अधिकार जनता के हैं। जनता अपने नेताओं को इसलिए चुनती है कि वे नेता उन अधिकारों की रक्षा करें, न कि उनका उपयोग अपने लिए करें। सेठजी, आप समझने का प्रयास क्यों नहीं करते ?

"…सदियों से जनता मूक, बेबस, बेजान और पददलित रही है। धनी आदमियों ने इसे कुचला है, रगड़ा है। सत्ताधारियों को किसी प्रकार का भी विरोध पसन्द नहीं। मैं तो एक फकीर आदमी हूँ। इस महान् यज्ञ में अपना घरबार फूँककर हाथ सिर पर लिये फिर रहा हूँ। आप मेरी आवाज

पर भी ताला लगा देना चाहते हैं। मैं तो लोगों को ज़बान देने की कोशिश कर रहा हूँ। उनके उमड़ते हुए दुखों को भाषा प्रदान करने का प्रयास करता हूँ। आपका हाथ किसने पकड़ा है ? आप अपने जीवन में भौतिक प्रगति तो करेंगे ही। मुझ जैसे अदने-से लोग भला आपका क्या बिगाड़ लेंगे ? मैं तो जो कुछ भी उल्टा-सीधा बकता हूँ, वह तो केवल अपनी आत्म-शांति के लिए ही है। इतनी मक्कारी, बदमाशी खुलेआम नहीं देखी जाती। आप कोई रास्ता बताइये जिससे इस सबका अन्त हो जाए। कम-से-कम आप ही रास्ता बदल दीजिये। उसके बाद यदि मैं एक शब्द भी बोल गया तो अपने बाप का बेटा नहीं।"

"भाषण देना, बहस करना इतना तुम्हारी नस-नस में बस गया है कि मुझे समझ नहीं आता कि तुमसे किस भाषा में बात करूँ जिससे तुम बदल जाओ, मेरी बात स्वीकार कर लो।" संसार में भला तुम्हारी कोई ऐसी इच्छा नहीं है कि जिसे मैं पूर्ण करनेमें तुम्हें सहायता न दे सकूँ"'तुम कोई भी इच्छा व्यक्त करो। मैं सहायता देने को तैयार हूँ"'बस अपना रास्ता बदल दो।"

"'"सेठजी, मुझे तो समझ नहीं आता कि आपको मैं किस प्रकार समझाऊँ। जो बात आपको अपना रास्ता बदलने से रोकती है, ऐसी ही कुछ बात मेरे अंदर है · यही जान लीजिये।"

"मैं तो अपने फायदे के लिए अपना रास्ता नहीं बदलता। तुम्हें क्या फायदा है ? पिछले दस सालों में एम० एल० ए० रहकर तुम कहाँ पहुँचे ? आज पिछले दस सालों से इसी प्रकार गली-गली घूमकर सिर्फ गालियाँ ही बकते फिर रहे हो। · आज मैं तुम्हें इतना कुछ देने को तैयार हूँ कि जो तुम्हें एम० एल० ए० बनकर एक सदी में भी नहीं प्राप्त हो सकता"' "' पर तुम न जाने किस मिट्टी के बने हो कि टस-से-मस ही नहीं होते।"

"जिसे आप गालियाँ कहते हैं"'वह मेरे अन्तर की आवाज़ है, जिसे मैं अपने सामने होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उठाना चाहता हूँ। मैं पिछले दस-बारह सालों से अपने सामने होने वाले हर अन्याय का मुका-बला कर रहा हूँ। घूसखोरी या भ्रष्टता व्यक्तिगत नहीं बल्कि एक

सामाजिक दुर्गुण है। घूसखोर व्यक्ति जब देखता है कि उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है तो वह अपना कार्य बड़े पैमाने पर फैलाता जाता है। यदि समाज से कोई निकलकर उसे पकड़े तो कम-से-कम एक बार तो अपने बारे में सोचने के लिए वह विवश होता है।"

"अच्छा…एक काम तो कर सकते हो…कम-से-कम नागपुर से बाहर तुम चले जाओ। वहाँ जाकर अपना यह पुण्य कार्य नये जोश से शुरू कर दो। नया झंडुलाल ढूंढ लो…दो कांग्रेस को गालियाँ…चलो हम ऐसे ही समझौता कर लें……।"

"……लोग कहेंगे…आखिर नाथूलाल कायर निकला……।"

"लोगों की माँ…क्या लोगों के पीछे मरते रहते हो? कल को मर जाओगे……कोई दो गज़ कफ़न का टुकड़ा नहीं देगा……तुम्हारे नाम का कोई चिराग नहीं जलायेगा।" सेठजी ने झल्लाकर कहा।

"……सेठजी, गरीब आदमी भले ही आवरणहीन संसार में जन्म लेते हैं, परन्तु मरते समय दो-एक कम-से-कम फटे-पुराने कपड़े तो उनके शरीर पर रहते ही हैं।…उसे ही गरीब का कफ़न समझ लीज़िए…। रह गई मेरे पीछे किसी यादगार की बात, तो नाथूलाल सरीखे यहाँ हजारों पैदा होते हैं और मर जाते हैं……कई लोगों को अन्तिम समय पर किसी का कंधा भी नसीब नहीं होता। कारपोरेशन की गाड़ी उनका अन्तिम साथ देती है। नाथूलाल को भी एक ऐसा ही व्यक्ति समझ लीजिए। मैं कौन-सा करोड़पति सेठ हूँ कि जिसके पीछे उसके नाम की धर्मशालाएँ, गोशालाएँ, स्कूल या कॉलेज खुलेंगे!……मुझे तो हँसी इस बात पर आती है कि मेरे भविष्य को लेकर मेरी अपेक्षा आप इतने चिंतित क्यों हैं! आखिर यह मेरे सोचने की बात है…न कि आपके…।" सेठजी को एक साथ खीझ, झल्लाहट व क्रोध आ रहा था। परन्तु अपने-आपको उन्होंने संयत किया। वे चिंतित मुद्रा में अम्बाझिरी तालाब के पानी की ओर देख रहे थे। वे सोचते हैं, संसार में आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं मिला, जो मेरे सामने न झुका हो। यही एक ऐसा आदमी मिला है जिस पर मेरा हर हथियार फेल हो रहा है। समझ नहीं आता इसका क्या करूँ…? अब तो एक ही रास्ता बचता है।…इसे उत्तेजित करके भी कोई लाभ नहीं। नाथूलाल ने

कहा—"काफी रात हो गई है···मेरा खयाल है···चला जाए।"

"चलो···।" सहसा जैसे कोई भूली बात सेठजी को याद आई।

नायूलाल ने नीचे उतरकर देखा कि वे तगडे-से दोनों आदमी आपस में कुछ गुप्त सलाह कर रहे हैं। झंडुलाल ने कहा—"नायूलाल, आज तुम यहीं रहोगे।"

"क्यों ?"

"वह देखो सामने तुम्हारे दोस्त तुम्हें बुला रहे हैं।" नायूलाल ने दोनों गुण्डों को देखा, उनकी कुटिल मुस्कान को देखा। सेठजी ने कहा—"अब तुम इनके साथ रहोगे। यदि तुम्हारे विवेक ने काम किया तो मुझ तक अपना निर्णय भेज देना, नहीं तो कल से 'नागपुर' नायूलाल की शकल नहीं देखेगा।"

"तो आप इसलिए मुझे यहाँ लाए थे।"

"नहीं तो क्या समझते हो, अपना दामाद बनाने यहाँ लाया था······ तुमको।"

"आप क्या करेंगे ?"

"यह तो तुमको ये देवता लोग बताएँगे।"

"आप मेरी हत्या करना चाहते हैं···ताकि आपका रास्ता साफ हो जाए।"

"अक्ल मन्द हो···समझते हो।"

"इस धोखेबाजी और कायरता से आप मुझसे पेश आएँगे ? यदि ऐसा ही था तो चुनौती देकर मैदान में आना था······।"

"चुप रहो! लीडरों के बाप, तुम्हारी बकवास मुझे नहीं सुननी है। पिछले बारह सालों से मैं तुम्हें बर्दाश्त करता आ रहा हूँ। तुमने मेरा खाना-पीना, नींद सब-कुछ हराम कर रखा था। तुम्हारा सिर्फ एक मिशन था—यह था सेठ झडुलाल को गालियाँ देना। सिद्धान्तों और आदर्शों के नाम पर सिवाय व्यक्तिगत दुश्मनी के यह कुछ नहीं था। झडुलाल जुल्म करता है तो पकडते क्यों नहीं उसका हाथ ? मर्द होते तो उसका हाथ तोड देते, पर तुम निरे गली के एक कुत्ते निकले। सिवाय भौंकने के तुमने कुछ नहीं सीखा। भूँक-भूँककर तुमने अपनी ताकत वेस्ट की, मेरा टाइम बरबाद

किया सो अलग। आज तुम्हें अपने किये का प्रसाद मिलेगा। गालियाँ देना भूल जाओगे और लीडरी तो तुम्हारी दस पुश्त तक कोई न कर सकेगा। चाहता तो मैं कभी का तुम्हें अपने रास्ते से हटा चुका होता, परन्तु हर बार मैंने तुम पर दया की, यही सोचकर कि आज नहीं तो कल को कभी-न-कभी रास्ते पर आ जाओगे। पर कुत्ते की जब मौत आती है तो वह सड़क के बीचों-बीच जाकर बैठता है। उसी प्रकार झंडुलाल की ताकत को समझ कर भी तुम आग से खेलते रहे। तुम्हारी किस्मत में इसी प्रकार मरना लिखा था···तुम्हें तो बाद में ले जाने के लिए कारपोरेशन की गाड़ी भी नसीब न होगी। नाथूलाल, मेरे देश के लिए लोगों ने या तो तराजू पकड़ी है या तलवार। मैं तराजू पकड़कर चला था।···किसी भी समय मैंने अपने विरोधी का पलड़ा भारी नहीं होने दिया।···तुम मुझे गालियाँ देते जाओ मैं सुनूँ···यह मुझसे नहीं हो सकता। मेरी ताकत को यह खुली चुनौती है। पलड़ा आखिर मेरा भारी रहेगा। मैं कोई महात्मा या नाथूलाल नहीं हूँ जो दुश्मनों को चुनौती दे-देकर बुलाऊँ। मैं तो झटका करना जानता हूँ। तुम पर मेरे सब हथियार फेल गए···यह आखिरी हथियार है······ जिसका इस्तेमाल करता हूँ······।"

यह कहकर सेठजी ने बाहर कदम बढ़ाने के लिए मुँह फेरा। नाथूलाल ने चिल्लाकर कहा—"सेठजी, अकेले किधर जा रहे हो ?अपने जिन हाथों से मुझे यहाँ तक लेकर आए हो···उन्हीं हाथों से वापस ले चलिए। यह काम इतना आसान नहीं है जितना आप समझते हैं।" सेठ झंडुलाल तीव्र गति से बाहर की ओर मुड़े। नाथूलाल परिस्थिति की असाधारणता भाँप गया। उसने लपककर सेठजी का हाथ पकड़ा। नाथूलाल के हाथ पकड़ते ही एक गुण्डा उस पर झपटा। उस गुण्डे ने नाथूलाल की गरदन पर धौल मारा और चिल्लाया—"साले······तेरी माँ···बहन की···।"

नाथूलाल का सोया हुआ क्रांतिकारी मन जाग चुका था। बीस वर्ष पहले का नाथू आज जैसे सजग हो गया था। तीन आदमियों के बीच वह अकेला ही था। इस हाथापाई में झंडुलाल को नाथू ने पकड़ा था। नाथूलाल को इस गुण्डे ने पकड़ा था। गुण्डे ने कहा—"छोड़ता है कि नहीं···? नहीं तो चलाऊँ पिस्तौल !"

नाथूलाल ने गुण्डे का पिस्तौल वाला हाथ अपनी बगल में दबा लिया और उसी हाथ से नाथूलाल पिस्तौल छीनने का प्रयास करने लगा। इस छीना-झपटी में सेठजी का कुर्ता पीछे से फट गया। गुण्डे ने दाँत भींचकर पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। पिस्तौल का मुँह उस क्षण सेठ झंडुलाल की ओर था।

गोली चली……! और सेठजी की काँख में लगी। गोली लगते ही सेठजी जमीन पर गिर पड़े। पलक मारते ही नाथूलाल ने अपने दाँत बुरी तरह से उस गुण्डे के हाथ पर गड़ा दिए। परिणामस्वरूप उस गुण्डे से पिस्तौल की पकड़ ढीली हो गई। पिस्तौल हाथ आते ही नाथूलाल छलांग लगाकर एक ओर आ गया। वह असाधारण स्वर में गरजा—"…खबर-दार जो कोई आगे बढ़ा तो…!"

नाथूलाल ने दोनों गुण्डों की ओर पिस्तौल तान रखी थी।

सकते की हालत थी…

एक भीषण चुप्पी और सन्नाटा।

नाथूलाल पिस्तौल ताने खड़ा था।

दो राक्षस जैसे विशालकाय गुण्डे एक भिखारी-जैसे दुबले-पतले नाथू के सामने हैंड्सअप किए खड़े थे।

और सामने सेठ झंडुलाल की लाश पड़ी थी।

यह सब-कुछ क्षणों में ही हो गया। नाथू ने इस सबकी स्वप्न में भी कल्पना न की थी। इन गुण्डों ने कभी यह सोचा भी न था कि दूसरों के लिए खोदे गए इस गड्ढे में एक दिन सेठजी को स्वयं गिरना होगा।

जिस समय नाथूलाल हाथापाई करने में व्यस्त था उस समय एक गुण्डा न जाने क्या सोचकर तमाशा देख रहा था। शायद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस आकस्मिक परिस्थिति में क्या करे? जब कोई दुर्घटना हो जाती है तो पहले कुछ क्षण दर्शकों की समझ में नहीं आता कि वे क्या करें। कुछ क्षणों के पश्चात् उनकी चेतना लौटती है। शायद ऐसी ही हालत उस गुण्डे की हो रही थी। नाथूलाल के हाथ में पिस्तौल देखकर दोनों गुण्डे ठिठक गये।

"पिस्तौल इधर फेंक दो ।" एक ने कहा।

"कायरो...खबरदार जो पिस्तौल के लिए इधर हाथ बढ़ाया तो एक-एक को भूनकर रख दूंगा। मैं कोई झंडुलाल के टुकड़ों पर पला कुत्ता नहीं हूँ।"

नाथूलाल ने एक हाथ से अपनी धोती को कसते हुए, धोती का पल्ला कुर्ते के ऊपर से कमर में बाँधा। गुण्डों की तरफ मुंह किये हुए पिस्तौल ताने नाथूलाल ने सीढ़ियों की ओर कदम बढ़ाया। सीढ़ियों पर पहुँचकर उसने गरजकर कहा, "यह दरवाज़ा बन्द कर लो। एक गुण्डा धीरे से आगे बढ़ा। उसने दरवाज़ा अपनी ओर से बन्द कर लिया। नाथू ने अन्दर से कुण्डी चढ़ा दी। पीछे नाथूलाल सब दरवाज़े बन्द करता जाता। उसने रास्ता देखा था, अतएव छत पर चढ़ने में उसे कठिनाई नहीं हुई। सीढ़ियों पर घुप्प अँधेरा था।

छत पर आकर जैसे नाथूलाल को होश आया हो। उसकी सारी देह पसीने से तर हो रही थी। नाथू के सामने एकबारगी झंडुलाल का जमीन पर पड़ा हुआ शरीर घूम गया। वह काँप गया, परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने-आपको सम्हाला।

जहाँ कभी किसी समय नर्तकियों के शरीर नृत्य करते-करते, बल-खाती हुई अदा से चूर होकर गिर पड़ते थे, आज वहीं पर झंडुलाल का निष्प्राण शरीर पड़ा था।

दोनों गुण्डे एक-दूसरे को गम्भीर मुद्रा में देख रहे थे। वे सेठजी के आसपास खड़े थे। उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि घटनाएँ इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से प्रतिकूल दशा में मोड़ लेंगी। इस इमारत में न जाने कितनी हत्याएँ हुई थीं, आज उनमें...उन हत्याओं में हत्या करने वाले की हत्या भी जुड़ गई।

नाथूलाल छत पर तो आ गया था, परन्तु सवाल था कि अब यहाँ से कैसे बचकर निकले? नाथूलाल ने नीचे देखा तो अम्वाझिरी तालाब का पानी लहरें मार रहा था। नाथूलाल ने चप्पलों को बाँधा, धोती को और भी कसा। सहसा उसने अंबाझिरी के लहराते हुए पानी को देखा। वह पास ही की निचली छत पर कूदा। वहाँ से नाथू ने पानी में छलाँग मारी। उसके कूदते ही पानी में एक भयंकर आवाज़ हुई। एक गुण्डे ने कहा—

"कूदा साला···भाग रहा है···करो पीछा···।"

दूसरे ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"ठहरो, सोच-समझकर बात करो, वह भाग रहा है···उससे हमारा क्या ? सवाल है हमारा क्या होगा ? अपनी फ़िक्र करो···उसको पकड़कर क्या अचार डालोगे ! पिस्तौल भी अभी उसके पास है।···जो आदमी अकेला यह सब कर सकता है, उसके बाद भाग सकता है, तो उसे कौन पकड़ेगा ? वह अपनी जान के लिए लड़ रहा था···जबकि हमारी बात दूसरी थी। गलती तो वास्तव में हमारी थी। हमने बात को उतनी गम्भीरता से नहीं लिया। हमने सोचा पापड़-सा शरीर लिये, भिखारी-सा दिखने वाला यह आदमी एक घूंसा खायेगा तो पानी माँगेगा। पर हम भूल गये कि वह तो साला···पुराना खूनी है। भले ही दुनिया उसे क्रान्तिकारी कहे, पर उसने *आखिर क्या किया ? खून ही किये हैं न ? उसके माथे सात-सात*···खून हैं···उस आदमी को भला तुम क्या पकड़ोगे···कल को पुलिस को क्या जवाब दोगे ? शहर के कोई मामूली आदमी का तो आखिर खून नहीं हुआ। मालिक की लाश···और हमारी हाज़िरी···हमारी उपस्थिति को देखकर कौन विश्वास करेगा कि नाथूलाल ने खून किया है।···और उस समय···न जाने वह कहाँ होगा···? अपना इंतज़ाम करो···।"

फिर भी दूसरे गुण्डे ने दौड़कर दूसरी पिस्तौल निकाली और भागते हुए नाथूलाल पर फायर करने लगा, परन्तु अँधेरे में उसे साफ़-साफ़ नहीं दिखाई पड़ रहा था। पिस्तौल आखिर पिस्तौल ही थी···वह बंदूक का काम कैसे करती ?

दोनों गुण्डों ने सारी इमारत को आग लगा दी···बात की बात में आग फैल गई। चारों ओर घास के मैदान थे। जंगली घास ने दो तरफ़ पकड़ी। मैदानों में आग फैलने लगी। भीषण अग्नि के परिणामस्वरूप पश्चिमी क्षितिज लाल हो उठा। ऐसे लगता था मानो शाम का सूरज डूबकर अपनी लाली फैला गया हो।

लाल···लाल···लाल···! खून का रंग भी तो लाल ही होता है न !

२

रेणु के विवाह के पश्चात् रामू ने ट्यूशन बन्द कर दी। परिणामस्वरूप उसके लिए समय काटना मुश्किल हो गया। इधर बी० ए० भी कर लिया था। इसलिए इस समय उसकी ऐसी स्थिति थी कि जैसे स्वयं ही समझ में नहीं आता था कि आखिर वह क्या करे! उसे लगता कि जैसे जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया है और उसका जीवन एक नये मोड़ से घुमाव ले रहा है।

वह सुबह जगा तो उसे लगा कि जैसे उसका सारा शरीर टूटा-टूटा-सा है। उसने जमुहाई ली और अंगुलियां तोड़ता हुआ खटिया पर बैठ गया। उसे प्रतीत हुआ कि जैसे दरवाजे की कुंडी कोई खटखटा रहा है। उसने दरवाजा खोला तो सामने पेंढारकरजी की जीवित मूर्ति उपस्थित थी। रामू ने आंखें मलते हुए कहा—"या…या…बसा![1]" पेंढारकर ने मराठी में ही वार्तालाप शुरू किया—"अभी तक सोये हो, आठ बज रहे हैं।"

"क्या करूं भाई, सोया ही रात के एक बजे था तो सुबह देर से कैसे न उठता?"

"अकेले आदमी को यही तो सुख है। जो चाहे सो किया। मगर कब तक यह चलेगा?"

"जब तक ईश्वर चलाएगा।"

"चलो भगिनी मंडल। आज तुम्हें मैं खास तौर से लेने आया हूं।"

"भाई साहब, माफ करो न…! थकावट से शरीर चूर हुआ जा रहा है।"

"ऐसा कौन-सा काम किया जो तुमको थकावट लग रही है! सो-सोकर आलसी बन गए हो। यह थकावट नहीं, आलस्य है। उठो।"

"फिर कभी चलेंगे।"

"नहीं, आज ही चलना होगा। जब तक नहीं चलोगे मैं यहां से नहीं उठूंगा।"

"भाई, अभी चाय-वाय…पीनी है। मुंह-हाथ धोना है सो अलग।"

---

१. आइए बैठिए।

"मुँह-हाथ धो लो। चाय मेरे घर ही पी लेना।" सिर खुजलाते हुए रामू ने पँढारकर को घूरकर देखा और सोचा कि आज पँढारकर बाबू सहसा मेहरबान क्यों हो उठे हैं? रामू विवशतावश उठा और कपड़े पहन, हाथ-मुँह धोकर पँढारकर के साथ हो लिया। चाय पीकर पँढारकर और रामू रिक्शे पर सवार हो भगिनी मंडल की ओर चले। रामू ने पूछा—"भगिनी-मंडल में आखिर आज है क्या?"

"एक नॉवेल प्रोग्राम है।"

"क्या?"

"बुजुर्ग लोग अपने लड़के-लड़कियों सहित वहाँ आयेंगे और परस्पर मिलेंगे। जिसे जो लड़की या लड़का पसंद आयेगा, उससे उसका विवाह हो जायेगा।"

"यह तो नई बात सुनी।"

"इसीलिए तो मैंने उसे नॉवेल कहा है।"

"ऐसा तरीका तो मैंने न कहीं देखा, न सुना, न पढ़ा। आखिर यह किसकी खोपड़ी की उपज है?"

"यह मजाक की बात नहीं है। किसीकी खोपड़ी की उपज भी नहीं है। यह सामाजिक चेतना की निशानी है। तुम जानते हो कि हम महाराष्ट्रियन लोग सामाजिक रूप से जागरूक रहना चाहते हैं। दक्षिण वालों को देखो, बंगालियों को देखो, सबके अपने-अपने समाज हैं···अपने-अपने संगठन, संस्थाएँ हैं। तुम भारत के किसी भी कोने में जाओ, तुम्हें एक महाराष्ट्र-मंडल तो अवश्य मिलेगा। भगिनी-मंडल आदि तो इसकी शाखाएँ हैं···"

"किन्तु मंडल को यह नया ढंग अपनाने की क्या आवश्यकता पड़ी?"

"तुम साफ शब्दों में सुनना चाहते हो, इसलिए तुम्हें बताना ही पड़ेगा। आज के मराठे युवक महाराष्ट्रियन युवतियों की आँखों में गिरते जा रहे हैं। महाराष्ट्रियन युवकों की न तो कोई महत्त्वाकांक्षा ही होती है और न ही कोई जीने का ढंग। गुजराती, पंजाबी या मद्रासी तरुणों को देखो। किस प्रकार वे महत्त्वाकांक्षी होते हैं। किसी को ऊँची नौकरी की चिंता होती है, कोई बिजनेस के पीछे पड़ा रहता है। मिलिट्री में, मेडिकल साइंस या एड-मिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज के लिए वे लोग जी-तोड़ प्रैक्टिस करते हैं। एक हमारे

कौम है। कई युवक तो संघ के पीछे अपनी जिंदगी खराब करते मिलेंगे। दाढ़ी बढ़ाये, खाकी चड्डी पहने, एक लाठी पकड़े, नंगे पैर या दो पैसे की चप्पल पहने अपनी जिंदगी बरबाद करते मिलेंगे। ऊपर से ब्रह्मचारी रहने की धुन। इन मूर्खों से पूछो यदि इनके बाप भी ब्रह्मचारी रहे होते तो ये दुनिया में आते कहाँ से ? ब्रह्मचारी रहना है तो एक दफा छोड़कर सौ दफा रहो। किसने हाथ पकड़े हैं ? परन्तु ब्रह्मचारी रहने से समाज या कौम में समस्याएँ पैदा होंगी, कम-से-कम उन्हें तो सुलझा लो। यदि कोई पढ़ाई-लिखाई कर कैरियर बना भी लेता है तो वह दहेज़ माँगता है। गरीब माँ-बाप यह दहेज कहाँ से दें ? परिणाम यह हो रहा है कि महाराष्ट्रियन लड़कियाँ अन्तर्जातीय विवाह कर रही हैं। क्या यह अपनी कौम के लिए बेइज्जती की बात नहीं है। 'स्त्री' मासिक में मराठे तरुणों के बारे में जो लेखमाला निकली थी—'मराठी तरुणांना काम झाला'[1], उसे शायद तुमने पढ़ा नहीं। मराठे तरुण मास्टर या क्लर्क बनकर ही संतोष कर लेते हैं। इन्हीं सब बातों पर सोच-विचारकर ऐक्सपेरीमेन्ट के तौर पर यह तय किया गया था। इसलिए सोचा तुम्हें पकड़ ले चलूँ, शायद तुम्हारा भी फ़ायदा हो।"

"मेरा फायदा क्या होगा जबकि मुझे ऐसे किसी फायदे की आवश्यकता नहीं। रह गई महाराष्ट्रियन मंडल की बात, तो इसे मैं सामाजिक चेतना का एक अंग नहीं मानता हूँ। यह साम्प्रदायिकता है। हिन्दोस्तानी कभी एक नहीं हुए। यहदेश ही वाहियात है। विदेशों में जाकर भी उनमें एक भारतीय की अपेक्षा प्रांतीय भावना की प्रबलता रहती है। किसी समय राणाप्रताप या शिवाजी के गुण गाना केवल संघ का ही पेशा माना जाता था। इसमें लोगों को हिन्दुत्व की बू आती थी। अब महाराष्ट्र क्या बना, हर जगह शिवाजी का पुतला। मराठे कांग्रेसी लीडरों को इसके सिवाय भारत का अन्य कोई महापुरुष ही नहीं दिखाई देता। शिवाजी, गोखले, तिलक आदि अखिल भारतीय ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हैं। परन्तु अब महाराष्ट्र में उनकी खास तौर से इसलिए कद्र होती है क्योंकि वे महाराष्ट्रियन थे, इसलिए नहीं

---

१. मराठे तरुणों को क्या हो गया ?

कि वे महान् थे। महापुरुषों का बँटवारा भी भाषाधार प्रान्त-रचना के समान हो रहा है। महात्मा गांधी का नाम जिस प्रकार उनके शिष्य मिटाने पर तुले हुए हैं, इसी प्रकार इन नेताओं को भी महाराष्ट्र की सीमा में जरूरत से ज्यादा प्रतिष्ठा देकर उनकी वास्तविक प्रतिष्ठा को मिटा दिया जायेगा। इन महान् नेताओं के गुण गा-गाकर मौसमी नेता केवल अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। पर महाराष्ट्रियन अपने को शिवाजी समझे बैठा है। समय के अनुसार युग की मान्यताएँ भी बदलती हैं, इसलिए इस शिवाजी मैंटिलिटी में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। कांग्रेस मे भी यही जातीयतावाद घुस बैठा है। चुनाव भी केवल इसी आधार पर लड़े जाते हैं।"

"ठीक कहते हो बहादुर, तुम जैसे बेकार युवक ही आज महाराष्ट्रियन समाज की शोभा बढा रहे हैं। उनका कार्य ही निरुद्देश्य जीना है। बी०ए० हो गए, न नौकरी की चिंता, न विवाह का खयाल। कम-से-कम तुम एक महाराष्ट्रियन लड़की की समस्या तो सुलझा सकते हो। सिद्धातों की गठरी लादे-लादे भूखे पेट एक दिन मर जाओगे।"

"बाबू पेंढारकर, मैं अपने-आपको महाराष्ट्रियन की अपेक्षा एक आदमी मानता हूँ। मैं जब कभी भी किसी दुख-तकलीफ में रहा तो क्या आपके मडल ने यह जानने का कभी प्रयास किया कि मैं कहाँ सड रहा हूँ? आपका मडल आपको मुबारक रहे। मुझे अपने-आपमें जीने दीजिए।"

अब तक भगिनी मडल आ चुका था। पेंढारकर द्वारा बताए गए महान् नाटक या ऐक्सपेरिमेंट का प्रारभ हो चुका था। रामू को इस बौद्धिक दिवालिएपन पर हँसी तो आ रही थी, परन्तु वह जान-बूझकर सौम्य एव गंभीर बन गया, क्योंकि उसे मालूम था कि अब वह उस खतरनाक जगह पर आ चुका है जहाँ कि किस्म-किस्म की मुस्कान का मोल था—सौदा केवल एक बार का था और वह था सारी जिंदगी का।

३

झण्डुलाल की मृत्यु !

यह ठीक है कि नाथूलाल का झण्डुलाल के भ्रष्ट कारनामों से उग्र विरोध था, और इस विरोध ने किसी हद तक परस्पर वैमनस्य का भी स्थान ले लिया था। परंतु जो हो गया था उसकी नाथू ने कभी कल्पना तक न की थी। नाथू सिर्फ यही चाहता था कि सेठजी या तो राजनीतिक जीवन से हट जाएँ या फिर अपना मार्ग सुधारें, अपने भ्रष्ट क्रियाकलाप बन्द कर दें। नाथूलाल ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक अचल एवं विशाल-काय पर्वत भी इस तरह अचानक अपनी जगह से खिसककर घाटियों में दूर तक टूटता-गिरता धूल बनकर एक दिन हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।

पर अब सवाल था कि नाथूलाल क्या करे ? वह अपने घर न जाकर सीधा चुपचाप अपने एक मित्र के घर धरमपेठ चला आया था। उसके सामने अब केवल दो ही रास्ते थे—या तो भाग जाये, या पुलिस को आत्मसमर्पित कर दे। वह जानता था कि अन्यथा तो बचना मुश्किल है। झण्डुलाल कोई साधारण आदमी तो था नहीं। उसकी मृत्यु के समाचार से नागपुर में खलबली मच जायेगी और पुलिस हत्यारे का पता लगाने में कुछ भी कोर-कसर उठा नहीं रखेगी और दिन चढ़ते-चढ़ते यदि उसकी खोज-खबर पुलिस को लग गई तो परिस्थिति और भी बिगड़ जायेगी।

वह सोचता है कि यदि भाग जाए तो कैसा हो ? किसी को पता भी नहीं लगेगा। लोग तो यही समझेंगे कि नाथूलाल भी इसी इमारत में जल-कर कहीं मर गया होगा।

गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से चली जा रही है। गाड़ी के डिब्बे में एक कोने में खिड़की के पास नाथूलाल खिन्न एवं अनमने भाव से बैठा है। उसकी आँखों में एक भीषण उदासी है। उसका चेहरा रुआँसा और साथ ही डरावना-सा हो रहा है। उसके रूखे बाल खिड़की से आती हुई हवा के साथ बुरी तरह से उड़ रहे हैं। खिड़की से बाहर देखता है और उसकी थकी और उदास आँखें जैसे कुछ खोजने का निष्फल प्रयास कर रही हैं।

उसकी आँखें जैसे किसी को न पाकर पथरा-सी जाती हैं। वह बीड़ी निकालता है, घुटने पर ठोककर उसमें फूँक मारता है और उसको सुलगा-कर वह अपनी दुनिया में खो जाता है।

उसकी बर्थ पर एक परिवार ने कब्जा कर रखा था। सामने ही बर्थ पर एक देहाती अपनी पत्नीसहित बैठा था। लग रहा था जैसे हाल ही में उसका विवाह हुआ हो। नाथूलाल बीड़ी पीते हुए निर्लिप्त भाव से डिब्बे के अन्दर दृष्टि डालता है।...वह सोचता है कि इस संसार में लोगों ने न जाने अपने कितने छोटे-बड़े संसार बना रखे हैं। लोग जन्म लेते हैं... बड़े होते हैं...कमाते हैं...शादी करते हैं—'और बाल-बच्चे पैदा कर मर जाते हैं। उनकी सन्तान भी आगे इसी क्रम को दुहराती है...क्या यही सब-कुछ है?

फिर वह अपने-आपके बारे में सोचता है...'आखिर मैंने भी जिन्दगी में क्या पाया? सड़क के कुत्ते जिस प्रकार निरुद्देश्य जीवन व्यतीत कर एक दिन मर जाते हैं, उसी प्रकार मेरी जिन्दगी रही है। मेरे बाद मेरे नाम का कोई दिया तक जलाने वाला न रहेगा।' परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचता है कि उसे इस प्रकार निष्क्रिय, जड़ व फालतू-सा ख्याल अपने दिमाग से निकाल देना चाहिए। आखिर वह अपने अतीत के लिए क्यों पश्चात्ताप करे? दुनिया में तो करोड़ों लोग पैदा होते हैं और मर जाते हैं। कोई जायदाद बनाता है, कोई सन्तान के लिए सब-कुछ छोड़ जाता है, कोई केवल अपने नाम और स्वार्थों के ही लिए जीता है, परन्तु कितने लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों के लिए जीते हैं? दुनिया को बदलने, बनाने और सजाने वाले वही लोग होते हैं जो जीवन में एक मिशन को लेकर चलते हैं...और उसी मिशन को लेकर समाप्त हो जाते हैं। परिणाम से किसी को आँका नहीं जा सकता है। कर्म भी तो अपने-आपमें एक उद्देश्य है। नाथूलाल ईमानदारी से अपने जीवन में अपने मिशन के लिए जिया है।

क्या हुआ यदि इन सबका फल उसे नहीं मिला तो! उसकी साधना तो व्यर्थ नहीं गई।

परन्तु उसी क्षण जैसे वह आत्मग्लानि से भर उठा। वह सोचता है कि जो कुछ भी हुआ सो हुआ, परन्तु यह खून नहीं होना था। भले ही खून मुझसे

नहीं हुआ और न ही पिस्तौल मेरी थी··· पर इस सबका कम-से-कम मुझे प्रायश्चित्त करना होगा।

क्या आत्मरक्षा पाप है ? तीन-तीन भेड़ियों से घिरा अकेला भला मैं क्या करता ? सेठ के टुकड़ों पर पलने वाले मुफ़्तखोर मेरा सफाया करना चाहते थे, वह भी धोखे से। झण्डुलाल के टाइमटेबिल में तो उस दिन आखिर मेरा खून ही लिखा था। झण्डुलाल एवं उसके आदमियों ने सोचा होगा कि नाथूलाल मर जायेगा···और समस्याएँ सुलझ जायेंगी। नाथूलाल तो मरा नहीं, हाँ समस्याएँ सुलझ गईं। नागपुर के राजनैतिक मैदान में न तो अब झण्डुलाल ही रहेगा और न ही उसकी बुराई करने वाला नाथूलाल।

दोनों एक साथ पर्दे से हट गये···एक साथ···एक ही वक़्त···!

दोस्त और दुश्मनों का कभी-कभी एक-सा रिश्ता होता है।

मगर नाथूलाल, क्या तेरी सब दलीलें पुलिस मानने को तैयार होगी ? कानून तुझे बे-गुनाह साबित करेगा ? लोग तो यही कहेंगे कि नाथूलाल भाग गया।

जो हकीकत नहीं जानेंगे वे अवश्य ऐसा कहेंगे।

वे···क्यों ? हर कोई ऐसा कहेगा। सबका एक सीधा-सा सवाल होगा कि यदि वह अपने-आपको निर्दोष समझता था तो उसे भागने की आवश्यकता क्या पड़ी ? उसका भागना यही साबित करता है कि वह अपराधी था।

निर्दोष को अपना निर्दोषपन साबित करने की भला क्या आवश्कता ? मैं भाग नहीं रहा। मैं तो पापियों के समाज से दूर जा रहा हूँ··· ऐसी जगह जा रहा हूँ जहाँ जीवित रह सकूँ।···मैं जीवित रहना चाहता हूँ।

नाथूलाल ! जीवन की संध्या में जीवन के प्रति यह मोह कैसा ? जीवन से इतना ही मोह था तो पहले ही सोच-समझकर क्यों नहीं कदम उठाये ! जानते हो जान-बूझकर सुकरात ने अपने विरोधियों के सामने क्यों ज़हर पिया था ? चाहता तो वह बचकर निकल सकता था और बाद को अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर सकता था। वास्तव में संसार को उसकी

मौत की अपेक्षा उसके जीवन की कहीं अधिक आवश्यकता थी। फिर भी उसने जहर पिया उनके सामने जो अपनी कायरता, अज्ञानता एवं ईर्ष्या के कारण उसके बैरी थे। सुकरात जानता था कि उसके विरोधियों में कोई उसका बाल बराबर भी मुकाबला नहीं कर सकता, फिर भी उसने जहर पिया। क्यों? उसने जान-बूझकर जहर पिया और अपने-आपको अमर कर लिया। कानून भले ही न न्याय करे, पर तेरी आवाज में यदि सचाई होगी, ताकत होगी, तो लोग कम-से-कम तुझ पर दाग नहीं लगाएँगे।'' भागना कायरता है।

नाथूलाल को बात वज़नदार लगी। वह उठा, उसने अपना सिर झटका। उसे बुरी तरह से चक्कर आ रहे थे। उसे हँसी आ गई। कहाँ की गाड़ी? और कहाँ का डिब्बा? वह सड़क पर आया। रास्ते से रिक्शा पकड़ वह सीधा पुलिस कोतवाली की ओर बढ़ गया। रिक्शे में वह उदास और गमगीन बैठा था। रास्ते में उसने दो-एक पुलिस लारियों को अंबाझिरी की ओर तेज़ी से जाते हुए देखा। वह समझ गया कि झण्डुलाल की मृत्यु का समाचार फैल गया है।

वह शांत, गमगीन, निश्चल भाव से पुलिस कोतवाली की ओर बढ़ता है।...

४

मारुति ने अब रिक्शा चलाना छोड़ दिया है। वह दिन-भर बैठा चिलम ही फूँका करता है। कहता है—"अपना रिक्शा होगा तभी चलाऊँगा।" घर में गरीबी बढ़ रही है। कभी-कभी तो घर में खाने तक को कुछ नहीं रहता। लक्ष्मी खाली उल्टे-सीधे पड़े हुए बर्तनों को देखती है।

लक्ष्मी, जो सबसे ज्यादा शांत और मौन रहती थी, अब तुनक-मिज़ाज हो गई है। बात-बात पर गालियाँ देने लगती है, किसी को भी डाँट देती है। पार्वती सुनकर रोने लगती है। मारुति चुपचाप सुनता है। अपनी चिलम लेकर बाहर आ जाता है। घर से बाहर फटी बनियान पहने काँपते हुए हाथ को लिए तख्त पर पाँडुरंग बैठा है।

पाँडुरंग का हृदय पिघलकर पानी-पानी हो गया है। वह किसी पर क्रोधित नहीं होता। लक्ष्मी उसे गालियाँ दे जाती है, फिर भी वह चुप ही रहता है। कहता है—"लक्ष्मी, तूने मेरी ज़िन्दगी-भर सेवा की है, और एक मैं था कि तुझे सदा पीटता ही रहा, गालियाँ देता रहा, तेरे पैसे चुराता रहा। भगवान् ने बुढ़ापे में पापों का यह फल दिया है। लकवा हो गया है। खैर मुझे दुख नहीं है।" पाँडुरंग की आँखों में आँसुओं के साथ-ही-साथ एक हीनता का भाव आ जाता है। लक्ष्मी बड़बड़ाती, गालियाँ देती हुई गरम पानी से पाँडुरंग को स्नान कराती है। पाँडुरंग लक्ष्मी के पैर छूने के लिए हाथ बढ़ाता है। लक्ष्मी उसे गालियाँ देती हुई अपने पैर पीछे खींच लेती है।

रामू बुत की तरह खड़ा है। सुनता है। क्या…दो सौ रुपये भी नहीं ला सकता…? तूने आज तक क्या कमाया ?…क्या सीखा ? तेरे बी० ए०…की कीमत क्या ? कहाँ गये वे सब तेरी बाँसुरी की तारीफ करने वाले…?

आज तक रामू ने किसी के सामने पैसे के लिए हाथ नहीं पसारे थे। उसे चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दिखा। कोई भी दोस्त काम का नहीं। हारकर, मन को मज़बूत कर केशो के पास जाता है। केशो सुनकर कहता है—"मैं तुमको एक पैसा भी नहीं दे सकता, क्योंकि तुम नालायक आदमी हो। जिस लड़की से तुम शादी कर अपनी ज़िंदगी बना सकते थे, वह तुमने किया नहीं। कम-से-कम उसके बाप के सामने अकड़कर फायदा उठा सकते थे। उसके खानदान की चोटी तुम्हारे हाथ थी। कम-से-कम कुछ नहीं तो उन्हें उनकी बदनामी का डर बताकर उनसे अच्छी रकम झाड़ सकते थे। वह तुमसे हो नहीं सका। सेठ झंडुलाल के पास नौकरी लगवाई थी। बढ़ते-बढ़ते तुम उसके मैनेजर हो सकते थे। ऊपरी कमाई होती सो अलग, पर तुम कहते हो कि मैं रजिस्टर में गलत एंट्री करूँगा नहीं। महात्मा गांधी के बाप बने फिरते हो, पहले अपनी औक़ात तो देखो। तुम्हारी जाति ही गरीबों की है। तुम्हारी नस्ल में ही गरीबी है। तुम गरीब पैदा हुए हो और गरीब मर जाओगे। तुम्हारी नस-नस में गरीबी और बेवक़ूफी भरी है। आये हुए मौके का फायदा उठाना तुम्हारी नस में नहीं है। लक्ष्मी की कद्र यदि तुम जानते तो तुम्हें मैं दो सौ नहीं बल्कि दो हजार भी दे देता।"

रामू गरदन लटकाए लौट आता है। उसे मालूम नहीं कि केशो [illegible] टूट चुका था। उसकी पत्नी भाग गई थी, इधर झंडुलाल का खून हो गया था, उसका एक मात्र सहारा जाता रहा था। वह दूकान बेचकर सिल-लेडी छोड़ने की तैयारी कर रहा है। पास जिंदगी-भर की कमाई है, पर वह अकेला थका-हारा और टूटा हुआ आदमी है। ऐसे समय रामू दो सौ रुपये माँगने पहुँचता है—केशो उसे भला क्या कहे?

४

पत्रकारों का कथन था कि गांधी हत्याकांड के पश्चात् [illegible] के यह दूसरा अवसर था जबकि उनके दैनिक व साप्ताहिक पत्रों की [illegible] हुई हो। नाथूलाल का मुकदमा क्या शुरू हुआ लोगों में [illegible] बातें होने लगीं, एक सनसनी-सी फैल गई। लोगों में उधर [illegible] की अफवाहें फैल रही थीं। लोग सिलमखेड़ी-स्थित नाथूलाल के [illegible] लगाकर निराश लौट रहे थे। वहाँ तो पुलिस का पहरा था। [illegible] के अनुसार अलग-अलग परिणाम देखे जा सकते थे। एक ओर [illegible] लोग थे जिनकी सहानुभूति नाथूलाल से थी। वे बार-बार [illegible] कि नाथूलाल ने आखिर यह क्या किया? कोई कहता था कि [illegible] का खून करते ही नाथूलाल गिरफ्तार कर लिया गया। किसी का कहना था कि झंडुलाल का खून कर नाथूलाल तो फरार हो गया था, [illegible] ने ही उसे ढूँढ निकाला—जितने मुँह उतनी बातें!

दूसरी ओर था कांग्रेसी वर्ग। कांग्रेसी हल्कों में तो जैसे खलबली मच गई। अपने इतने बड़े नेता की मृत्यु को वे कम-से-कम इस प्रकार बैठे-बैठे नहीं देख सकते थे। उच्च कांग्रेसी नेता पुलिस पर जैसे टूटे पड़ रहे थे। वे नाथूलाल को दण्ड दिलाने का पूरा-पूरा प्रयास कर रहे थे। नाथूलाल को वे कुचल देना चाहते थे। नाथूलाल को जो कांग्रेसी देखता, दाँत पीस-कर एक भद्दी-सी गाली देकर निकल जाता और नाथूलाल उदासीन व निर्लिप्त भाव से उन गालियों के प्रसाद देने वाले को देखता। नाथूलाल को लगता जैसे उसकी प्रतिष्ठा की इमारत से एक-एक ईंट हिला-हिलाकर

पानी में फेंकी जा रही है। उस इमारत की छत जैसे गिर पड़ी है। हर दम कुछ-न-कुछ बोलने वाला नाथूलाल एक भीषण चुप्पी साधे बैठा था।

उधर पुलिस महकमा था, जिसे नाथूलाल पर इस बात का क्रोध था कि नाथूलाल ने सारे पुलिस विभाग को अपनी बहादुरी दिखाने का मौका क्यों नहीं दिया? यदि सभी अपराधी नाथूलाल की तरह हत्या करके अपने-आप पुलिस को आत्मसमर्पण करते जाएँ तो पुलिस की आखिर जरूरत ही क्या ? नागपुर से लेकर बम्बई तक आई० जी० पुलिस को ट्रंककाल एवं वायरलेस पर संदेश भेजे जा रहे थे।

स्थानीय अखबार भंडुलाल की मृत्यु के समाचारों से भरे पड़े थे। समाचारों के साथ-ही-साथ उन अखबारों ने उस भस्म हुई हवेली की तस्वीरें भी छापी थीं।

तिलनखेड़ी के लोग कोतवाली के चक्कर लगाते हैं, परन्तु उन्हें नाथूलाल से मिलने की आज्ञा नहीं दी जाती। वे पुलिस कोतवाली पर ईंट-पत्थर बरसाकर अपना क्रोध शांत करने का प्रयास करते हैं। बड़बड़ाते हुए लौट जाते हैं। पुलिस वालों के सात पुरखों तक को वे आशीर्वाद देते हुए लौट आते हैं।

इस सबसे नाथूलाल की परेशानी बढ़ती जाती है। वह आराम चाहता है, एकांत चाहता है। वह ऐसा स्थल चाहता है, जहाँ आराम कर शांति से वह अपने मन को हल्का कर सके। कभी सोचता है कि आखिर उसने यह क्या किया ? अच्छा-भला अपने-आप यहाँ क्यों चला आया ? यहाँ यदि वह स्वयं न आता तो यह सब-कुछ उसे न तो देखना ही पड़ता और न ही भोगना ही पड़ता।

हवालात में अन्य कैदी भी थे परन्तु उनमें नाथूलाल का दर्जा जैसे सबसे अलग और ऊँचा था। वे कैदी मौन रूप से नाथूलाल को आदर ही दे रहे थे। सुबह से अभी तक वे देख चुके थे कि एक साधारण-सा दिखने वाला मनुष्य अपने पीछे कितना बड़ा तूफान खड़ा कर सकता है। इन लोगों ने दिन-भर बाहर उमड़ती हुई भीड़ देखी थी। एक समय तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उमड़ते हुए ये लोग कोतवाली ही तोड़ देंगे। पुलिस ने उमड़ती भीड़ पर गोली चलाने का डर दिखा किसी तरह नाम-मात्र को काबू पाया था।

की। यदि आज वह आज़ाद होता तो उसे ऐसी किसी प्रकार की बाधाओं में से न गुज़रना पड़ता। आज जो कुछ भी हो रहा था उस सबका ज़िम्मेदार नाथूलाल अपने-आपको ही ठहरा रहा था। इन समस्त विचारों की ऊहा-पोह में वह मौन ही रहता। सारे मुकदमे की कार्यवाही को वह मौन होकर निर्लिप्त भाव से देख रहा था। अदालत में उसके दोनों ओर पुलिस के सिपाही राइफल पर नंगी संगीनें चढ़ाये खड़े रहते, परन्तु इन सबका नाथू-लाल पर कोई प्रभाव न होता।

जब से यह मुकदमा चला पान-बीड़ी-सिगरेट वालों की किस्मत का दरवाज़ा खुला सो अलग।

इस सब थकावट व घुटन से भरे वातावरण से यदि कहीं कोई नाथूलाल को राहत मिलती तो वह थी सुमति बेन की उपस्थिति। जब तक नाथूलाल हवालात में रहा तब तक नियमित रूप से दोनों समय भोजन लेकर सुमति बेन आती रही थी। जब से नाथूलाल को सेंट्रल जेल पहुँचाया गया था तब से सुमति बेन के इस कार्य में व्यवधान उपस्थित हुआ था। परन्तु सेन्ट्रल जेल में भी सुमति बेन नियमित रूप से नाथूलाल की खोज-खबर रखती थी।

सुमति बेन ठक्कर नागपुर की प्रसिद्ध साम्यवादी कार्यकर्त्री थी। थी तो वह अमीर घराने की, परन्तु एक सामान्य-से आर्थिक स्तर के कम्यूनिस्ट मास्टर से विवाह कर लेने के कारण उसे भी साधारण परिवार में आ जाना पड़ा था। मास्टर गुजराती था, स्वयं सुमति बेन महाराष्ट्रियन थी। सुमति बेन का सारा समय पार्टी के काम में ही जाता था। घर का काम पूरा कर वह अपनी पुत्री को स्कूल पहुँचाने निकलती और वहीं से पार्टी के दफ्तर चली जाती। शाम को लौटते समय लेडी साइकिल पर अपनी बच्ची को भी लेती आती। सुमति बेन की खड़-खड़ करने वाली पुरानी लेडी साइकिल से नागपुर-निवासी अपरिचित नहीं थे। उस साइकिल को चोर भी चुराने योग्य वस्तु नहीं समझते थे। पार्टी के काम से नागपुर की सड़कें नापते रहना सुमति बेन का कार्य था। कभी-कभी तो नंगे पैर ही वह साइकिल पर अपनी बच्ची को पीछे बैठाए हवा से बातें कर रही होती। वह स्वयं तो स्थूलकाय थी, परन्तु फुर्ती उसकी नस-नस से टपकती थी। नाथूलाल

का खाना लेकर जब वह आती तो देखते-ही-देखते वह सारा भोजन नाथू के सामने सजा देती। नाथू भी एक आज्ञाकारी बालक की तरह खाना खाता, तब तक वह साड़ी के पल्लू से अपने मुँह तथा माथे का पसीना पोंछती। नाथूलाल के भोजन करते ही वह सब जूठे बर्तन जमा कर अपनी थैली मे भरती और चल देती।

सुमति बेन के जाते ही, तृप्त होकर नाथूलाल बीड़ी सुलगाता और एक लम्बा कश खींचकर सुमति बेन को लौटते हुए देखता। जैसे कोई सवार धूल उड़ाता हुआ निकल जाता है और उसके जाने के बाद धूल-ही-धूल रह जाती है, उसी प्रकार सुमति बेन के जाते ही उसके बारे में अनेक छोटे-मोटे खयाल उठकर नाथू के दिमाग में अपना ताना-बाना बिनना प्रारम्भ कर देते।

हवालात से बाहर पहरे पर राइफल पर संगीन चढाए पुतले की तरह निश्चल खड़े सिपाही को पीठ को नाथूलाल देखता है और एक कोने मे लेटने का उपक्रम करता है।

मुकदमे का प्रारम्भ तो काफी शांति से हुआ था, परन्तु कुछ ही दिनों में मुकदमे ने काफी ज़ोर पकड़ लिया था। पुलिस एव अधिकारी वर्ग पूरे ज़ोर-शोर के साथ नाथूलाल के विरुद्ध फैली हुई शक्तियो को एकत्रित करने में व्यस्त थे।

सहसा मुकदमे के रुख व समाचारपत्रों के समाचारो से जनता को कुछ ऐसा महसूस हुआ कि जैसे नाथूलाल का पलडा हल्का हो रहा है। लोग यहाँ तक कहते सुने जाने लगे कि नाथूलाल को फाँसी हो जाएगी। इसलिए अदालत के सामने जन-समूह पूरे जोश-खरोश के साथ उमड़ पड़ा। परिस्थिति बुरी तरह से बिगड़ रही थी। बाहर दगा हो जाने की आशका होने लगी। नाथूलाल ने अदालत से अनुरोध किया कि यदि उसे अनुमति दी जाए तो उसके कहने से शायद परिस्थिति सुधर जाए। आपसी सलाह-मशविरे के पश्चात् अदालत ने पुलिस को आज्ञा दे दी। पुलिस के कड़े पहरे में नाथूलाल बाहर आया। सामने उच्छृंखल,पुलिस से अनियत्रित हो रहा अपार जनसमूह उमड़ रहा था। दूर तक सिर-ही-सिर दिखाई पड़ते थे। पुलिस रक्षा के लिए जनता पर गोली चलाने की सोच रही थी।

नाथूलाल को सहसा तथा अप्रत्याशित रूप से अपने सामने देख शेर की तरह गरजने वाला जनसमूह मेमने की तरह शांत हो गया। नाथूलाल ने अपना गला साफ़ किया तथा माइक पर लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—"भाइयो, मेरे प्रति आपका जो अपार स्नेह है, उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। परन्तु आप लोगों ने जो रास्ता अख्तियार किया है, गलत है। पुलिस को मैंने अपने-आप आत्मसमर्पित किया है। मैं चाहता तो बचकर निकल सकता था। मैंने अपने-आपको न्याय के हवाले कर दिया ताकि मेरे विरोधियों को मेरे विषय में कुछ उल्टा-सीधा कहने का अवसर न प्राप्त हो। यह सारा मुकदमा मेरा अपना व्यक्तिगत मामला है। यह एक खून का केस है। खून के केस तो ऐसे होते ही हैं। आपको उत्तेजित नहीं होना चाहिए। यह कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं है, जहाँ आप लोगों का यह जोश काम आयेगा। हमारा देश प्रजातंत्रात्मक है। प्रजातंत्र का यह सबसे बड़ा व्यंग्य है कि हर मनुष्य को कोई भी वस्तु उतने परिमाण में मिलती है,जितने परिमाण में वह हुल्लड़ मचाता है। इस सत्याग्रह और नारेबाज़ी के ज़माने में लोगों ने हर मामले को पार्लियामेंट बना लिया है। परिवारों में भी बेटे एक तरफ होकर माँ-बाप के खिलाफ़ बग़ावत कर रहे हैं। दुनिया की हर बात का हल जनमत से ही नहीं निकाला जाता। इस प्रकार अशांति व हुल्लड़बाज़ी से न्याय नहीं माँगा जाता। आपने गलत रास्ता अपनाया है। यदि मेरे प्रति आपको थोड़ा भी प्रेम है तो मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप शांतिपूर्वक लौट जाइए। इसके बाद भी यदि आप लोग मेरी बात नहीं मानेंगे तो मुझे बहुत दुख होगा।"

नाथूलाल के ये शब्द शांत जनसमुदाय पर बिजली की तरह प्रभाव डाल गए। जिस कार्य को पुलिस वाले अपनी ताकत से इतने समय में न कर सके उसे नाथूलाल ने अपने चन्द शब्दों से ही पूरा कर दिया। लोग आपस में एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। लोगों में अजीब तरह की हलचल-सी हुई और उनका उमड़ता हुआ जोश ठंडा पड़ने लगा। लोग वापस तो मुड़ने लगे थे परन्तु नाथूलाल के शब्दों से उन्हें शांति नहीं मिली थी। वे केवल नाथूलाल का मुँह रखने के लिए ही मुड़े थे। मन-ही-मन तो वे अधिकारी

वर्ग को गालियाँ दे रहे थे। कई तो दाँत भींचकर हृदय के [illegible]
थे। उन्हें नाथूलाल पर भी मन-ही-मन क्रोध आ रहा था। [illegible]
आज नाथूलाल को क्या हो गया है। वह इस तरह [illegible]
नाथूलाल को देखते ही लोगों ने सोचा था कि नाथूलाल [illegible]
को लाख-लाख गालियाँ देगा। वह जनता को [illegible]
जोश में जनता पुलिस पर चढ़ दौड़ेगी और नाथूलाल को [illegible]
परन्तु यहाँ तो सब-कुछ उल्टा ही हो गया।

इस जनसमूह को देखकर नाथूलाल का [illegible]
कि वह इस लड़ाई में अकेला नहीं है। हजारों और [illegible]
और गरीब लोग उसके साथ हैं। सारा दृश्य [illegible]
लग रहा था। नाथूलाल इस सबसे प्रभावित हुए बिना [illegible]

नाथूलाल के शब्दों से लोगों को पूरा-पूरा संतोष नहीं [illegible]
वे नाथूलाल के इस व्यवहार के लिए तरह-तरह के [illegible]
बाजियाँ लगाने लगे। नाथूलाल ने नियमित रूप से [illegible]
को आते हुए देखा। वैसे वह सुमति बेन को देखता [illegible]
द ढाढ़स मिलता। लोग तो लौट गए परन्तु अधिकारियों [illegible]
रीत प्रभाव पड़ा। नाथूलाल की वास्तविक शक्ति के [illegible]
से हो गए। उन्हें लगा कि इस साधारण-से दिखने वाले [illegible]
लौह शक्ति छिपी है और इसी लौह शक्ति के [illegible]
को आत्मसमर्पित किया है।

मुकदमा अपने नियम-क्रम के अनुसार चल रहा था [illegible]
के बयानों के आधार पर अम्बाजिरी तालाब के [illegible]
की हवेली पर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया था। [illegible]
इमारत का जब ईंट, पत्थर, मलबा हटाया तो नीचे से [illegible]
लाश निकली। लगे हाथ पुलिस ने सारी हवेली को [illegible]
चार-पाँच अस्थिपंजर भी निकले।

अदालत में भी नाथूलाल ने कोई खास बयान नहीं दिया। [illegible]
कभी कुछ पूछा गया तो उसने संक्षिप्त उत्तर देकर [illegible]
लिया। अपना अंतिम स्टेटमेंट भी उसने कोर्ट को [illegible]

दिया। मुकदमे की सारी कार्यवाही जब समाप्त हुई तो उसे भारी राहत मिली। ३०२ के अतिरिक्त पेनल कोड की अन्य कितनी ही धाराएं थीं जिनके अन्तर्गत नाथूलाल को गिरफ्तार किया गया था।

मुकदमा समाप्त होने पर, मुकदमे में अख्तियार किए गए रुख से यदि किसी को सर्वाधिक निराशा हुई थी तो वह थी सुमति बेन को-उसने सोचा था कि नाथूलाल अदालत में ज़ोर-शोर से गरजेगा और अदालत में अच्छे-खासे भाषण देगा, परन्तु प्रारम्भ से अंत तक एक मौन साधे रहने के कारण नाथू के प्रति सुमति बेन को निराशा व खीझ हो उठी। नाथूलाल पर उसे बार-बार क्रोध आ रहा था। फिर भी मुकदमे के निर्णय से पहले वह अपने पतिसहित अधिकारियों से अनुमति प्राप्त कर नाथूलाल से मिली। सुमति बेन को देखते ही नाथूलाल के चेहरे पर एक प्रसन्नता-सी दौड़ गई। सुमति बेन ने देखा कि उसके सामने एक जीर्णकाय पंजर खड़ा है। उसके रूखे बाल हवा में उड़ रहे थे। दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उसने एक चादर लपेट रखी थी। नाथूलाल की शक्ल को देखकर यह विश्वास करना असम्भव था कि उसने खून किया है। नाथूलाल की शक्ल पेशेवर खूनियों का सबसे बड़ा मज़ाक प्रस्तुत कर रही थी।

इधर-उधर की बातों के पश्चात् सुमति बेन ने कहा—"आपने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा।"

"उसकी मैंने ज़रूरत नहीं समझी। मुझे जो कुछ कहना था उसे मैंने लिखकर अदालत को दे दिया था।"

"मेरा अनुमान ही आखिर सच निकला। मैं समझती थी कि राहों-चौराहों पर गरजने वाला शेर अदालत में अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठायेगा। मुझे कभी उम्मीद नहीं थी कि परिस्थितियां उसे इस हद तक कायर बना देंगी। मैं सपने में भी नहीं सोच सकती थी कि आप जैसा निर्भीक आदमी अदालत के कठघरे में खड़ा होकर इस तरह बकरी बन जायेगा।"

"तो आप चाहती थीं कि अदालत में, मैं ज़ोर-शोर से गरजता… उछल-कूद मचाता…दो-चार कुर्सियाँ तोड़ता…।"

"मैंने क्या…हर आदमी ने यही समझा था कि अदालत में आप जोश

खरांश से अपना बयान देंगे। सरकार के अन्याय का पर्दाफ़ाश करेंगे। न्याय की ऊँची गद्दियों पर बैठने वालों को आप ललकारेंगे। परन्तु आप तो शुरू से आख़िर तक एक मेमने की तरह ही रहे। कोर्ट में यदि आप कुछ बोलते भी तो मिमियाते हुए। लोगों को यही समझ नहीं आ रहा था कि नाथूलाल इस प्रकार बदल कैसे गया? क्या वह इतना डर गया? क्या उसे अपने प्राणों का इतना मोह हो गया? आपने जनता की उम्मीदों पर पानी फेर दिया। इंतज़ार करते-करते एक दिन मुकदमे ने समाप्त होकर उनकी इन्तज़ारी का ही अन्त कर दिया।"

सुमति बेन की शक्ल देखते ही नाथूलाल ने सोचा था कि सुमति बेन हर बार की तरह इस दफ़ा भी उसकी तबियत का हाल पूछेगी, उससे सहानुभूति के दो शब्द कहेगी, परन्तु यहाँ तो बात ही जैसे उल्टी निकली। सुमति बेन का बात करने का ढंग भी आज अस्वाभाविक-सा था। नाथूलाल को सुमति बेन के प्रश्नों से ऐसा आभास हुआ जैसे उससे [illegible] माँगी जा रही है। नाथूलाल ने जैसे कोई बहुत बड़ा अपराध [illegible] हो। "बैठिये, खड़ी क्यों हैं?" कहकर नाथूलाल भी [illegible] में पड़ी हुई बेंच पर बैठ गया। ज़मीन की ओर देखते हुए वह कुछ सोचने लगा। सुमति बेन ने कहा, "आपने गोर्की का उपन्यास [illegible] है?"

नाथूलाल ने प्रश्नसूचक दृष्टि से सुमति बेन को देखा। [illegible] कहा, "इस उपन्यास का नायक पावेल जब भी [illegible] किस प्रकार [illegible] के साथ अधिकारियों के जुल्मों का [illegible] उसके नारों से तहलका मच जाता था। कोई भी पाठक [illegible] से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उसके [illegible] था।"

"सुमति बेन, अब भला मैं आपको क्या [illegible] के नाते आपने मुझसे केवल यही अपेक्षा की थी कि [illegible] लम्बे भाषण दूँगा। आपने यही सोचा था कि [illegible] तथा पूँजीवाद के ख़िलाफ़ नारे लगाऊँगा। [illegible] उन्हें मार-धाड़ के लिए भी उकसाऊँगा। [illegible]

का विश्लेषण केवल लाल चश्मे से किया। पावेल तो हर दम राजनीतिक अपराध में पकड़ा जाता था। यह तो एक साधारण-से खून का केस था। किसी राजनीतिक मामले या दावपेंच से तो इसका कोई सरोकार था ही नहीं। मेरे शांत रहने के अपने कई कारण हो सकते हैं। मेरे गरजने का तो यही मतलब होता कि मैं कसूरमन्द हूँ। विषयान्तर कर न्याय व प्रशासन को गाली देने से भला क्या होता ? कौओं के कोसने से ढोर तो मरते नहीं। कल को यदि मुझे सजा होती भी है तो कम-से-कम मेरे विरोधियों को तो मेरे खिलाफ़ आवाज उठाने का मौका नहीं मिलेगा। रह गया राहों-चौराहों पर गरजने वाला नाथूलाल...तो वह मेरा कार्य तो कभी नहीं रहा। अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाना मेरा सदा कार्य रहा है। परन्तु यह मैंने एक स्वतन्त्र आदमी की हैसियत से किया है।"

"वास्तव में आपको सदा मैंने अपने सामने आदर्श-स्वरूप रखा। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। आप सरीखे न जाने कितने सत्यवादी लोग अकेले ही राख में चिनगारी की तरह चमककर यत्र-तत्र शांत हो गये। उन्होंने अपनी ताकत को कभी नहीं पहचाना। बिना पार्टी के और एक सुनिश्चित योजना के आप इस तरह चिल्ला-चिल्लाकर मर भी जायेंगे तो भला कौन पूछता है ? काश ! कि हमारी पार्टी को आप जैसे नेता मिले होते ? नाथूलाल, सृष्टि का मूल ही संघर्ष है, द्वंद्व है। घर्षण के बाद जो स्थिरता आती है वही स्थायी स्थिरता है। उसके लिए कायर की तरह चुप रह जाना भी अत्याचारों को सहारा देना है। पूँजीवादी वह नहीं होता जिसके पास पूँजी होती है। पूँजीवाद एक व्यवस्था का नाम है जिसमें श्रमिक का शोषण होता है। पूँजीवाद को प्रश्रय देने वाले चाहे गरीब ही क्यों न हों, पूँजीवादी ही कहलाएँगे। आप जिन्दगी-भर झंडुलाल से सिर मारते रहे, पर शांति आखिर कब आई ? जब एक रास्ते से हमेशा के लिए हट गया। मैं तो आपके इस अप्रत्याशित परिवर्तन को कायरता ही कहूँगी।"

"सुमति बेन, मेरा काम तो अदालत को केवल सत्यता से परिचित करा देना था। आपने तो खुद देखा है कि मेरे खिलाफ़ किस प्रकार महान् महा-रथी लोग थे। सेठजी की मृत्यु का बदला लेने के लिए किस प्रकार वे तुले

हुए थे। यदि यह कोई दूसरे के हकों का सवाल होता तो मैं अवश्य गरजता। जिसे आप मेरी कायरता कहती हैं, वह मेरी कायरता नहीं है, जीवन की एक अवस्था है जिसे अपने जीवन की संध्या में समझाने के लिए मेरे पास वाणी नहीं है। जिन्दगी में मैंने बहुत-कुछ देखा है—भोगा है—सहा है। सेठ झंडुलाल की मृत्यु ने और इस मुकदमे ने मेरी कमर तोड़ दी है। जिन्दगी का बोझ ढोता-ढोता मैं बूढ़ा हो गया हूँ। कहाँ तक, किसके और कब तक अकेला लड़ूँ? लड़ने का भी कुछ साध्य होता है। साधन को लेकर ही कब तक उलझा रहूँ! सेठजी से मेरा वादा था कि यदि वे राजनैतिक जीवन से हट गये तो मैं अपने हाथ पीछे खींच लूँगा, शान्त हो जाऊँगा। हर मनुष्य हर कार्य का कारण ढूँढ़ता है। हर मनुष्य जिसे कुछ देता है उससे कुछ अपेक्षा रखता है। आपने मेरी इतनी खोज-खबर ली, मेरे दुख को हल्का करने का प्रयास किया, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। इसे मैं आपकी मानवता कहूँगा। यह सोचकर मैं अपने दिल को कभी नहीं दुखाऊँगा कि आपने केवल यह सब एक आशा से किया था। और जब वह आशा पूरी नहीं हुई तो आपने अपने मन में मेरे प्रति जो एक प्रतिष्ठा की दीवार खड़ी की थी उसे गिरा दिया। आपको आज भी मैं आदर देता हूँ, आपकी कर्मठता धन्य है।"

"ये सब एक हारे हुए आदमी की बातें हैं—ऐसा आदमी जो जिन्दगी में पस्त हो गया है। कर्मवीर जिन्दगी की आखिरी साँस तक लड़ता है। अत्याचारों से टक्कर लेता है। आज सारे देश की क्या हालत हो रही है? बोलने वालों के मुँह बन्द कर दिए जाते हैं। जो [illegible] कर सकते हैं उनके अपने-आप मुँह बन्द हो जाते हैं। मुट्ठी-भर लोग देश की किस्मत का फैसला करते हैं। प्रजातन्त्र एक बड़ी आडम्बर [illegible] के [illegible] है। [illegible] को छोड़कर [illegible] और [illegible] पर कब्जा किए हुए [illegible] देश को [illegible] कर रहा है...... ।"

"सुनिए देव, तुम्हें मालूम होने की जरूरत नहीं है। [illegible] लेखक [illegible] कुमार [illegible] का [illegible] 'दुष्यन्त' [illegible] था। उसका एक पात्र [illegible] कहता है—[illegible] के [illegible] और [illegible] घर हो नहीं हुए, [illegible] लिए [illegible], वह [illegible] कि [illegible] का

है। आदत, विश्वास, साँचा, नियम सब एक-एक कर टूटे। मुझे तो लगता है यह पीढ़ी ही टूटे आदमियों की है। ये टूटे हुए आदमी अपने-आप टूट-टूटकर धूल बन रहे हैं। उनका समय समाप्त हो रहा है। नई पीढ़ी अधिक जानदार है। जिन्हें मैं आज तक गालियाँ देता रहा वे तो वैसे ही समाप्त हो रहे हैं। मैं यह नहीं कहता कि नवीन पीढ़ी बुराइयों से रहित नहीं है, परन्तु इस आज़ाद देश में पानी की हर नई आने वाली लहर पिछली लहर से ऊँची और ताकतवर ही होगी। इस नए ज़माने को नापने के लिए सुमति बेन तुम्हें अपने पैमाने को या तो तराशना होगा या बदलना होगा। आज तक हम अपनी निश्चित मान्यताओं को लेकर ही जीते आए हैं। उन मान्यताओं के बाहर देखने का हमें अभ्यास नहीं। मैं स्वयं मानता हूं कि विकास की यह प्रक्रिया अत्यंत मन्द है। आज लोग अपने हक़ों की माँग तो करने लग गए, ऐसे लोग जो कल तक फकीर थे आज अमीर हो गये। परन्तु अपने-आपमें संस्कार न ला सके। आज उन संस्कारों की आवश्यकता है जिससे सामाजिक व राष्ट्रीय चरित्र बने। संसार में राष्ट्रीयता जबकि अभिशाप बन चुकी है—तो भी अब तक हमारे यहाँ उसका विकास ही नहीं है। प्रजातन्त्र का मतलब हो गया है ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को खुश करना। जो चिल्लाता है उसका मुँह भर दिया जाता है। सिद्धांतों को ताक में रखा गया है। सुमति बेन, ये ही सड़े-गले और टूटे आदर्श इन टूटे हुए लोगों के साथ मिट रहे हैं।"

सुमति बेन नाथूलाल की बातों से सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने जैसे अपने-आपको समझाते हुए कहा—"हूं...यह देश ही साधु-महात्माओं का देश है। काश कि इन संतों के व्यक्तिगत व अति धार्मिक आदर्श समाज के किसी काम आ सकते? ज़िंदगी से परास्त होकर आखिर आप भी संतों जैसी बातें करने लगे। यह सब आपकी निष्क्रियता और जड़ता की निशानी है। अब आप अध्यात्म की ओर बढ़ो और माला फेरो। अपने-आपको धोखा भी दे सकोगे और दुनिया भी कहेगी कि नाथूलाल संत हो गया। मैं तो यही कहूँगी कि नाथूलाल अब मर गया है।"

नाथूलाल हँस पड़ा, उसने कहा—"सुमति बेन, आप क्यों खामखाह मुझपर नाराज होकर अपनी मानसिक शांति खराब करती हैं। हो सकता है

जिस कोण से आपने मुझे व मेरी हरकतों को देखा है वह आपके लिए सही हो। मार्क्सवाद अपने-आपमें एक बहुत बड़ा गतिशील दर्शन है, परन्तु दुनिया की समस्त समस्याओं का एक मात्र हल नहीं।"

सुमति बेन परिवारसहित लौट गई। नाथूलाल मुस्कराकर सुमतिबेन को सपरिवार जाते हुए देखता है।

६

नाथूलाल की अरजी कोर्ट ने मंजूर कर दी थी, अतएव उसे पुलिस के साथ केवल पन्द्रह मिनट के लिए तिलनखेड़ी में अपने घर जाने की आज्ञा प्राप्त हो गई। पुलिस की लारी नाथूलाल को लेकर सुबह-सुबह ही उसके घर के सामने रुकी। नाथूलाल हथियारबन्द पुलिस कान्स्टेबल्स से घिरा हुआ था। उसने अपना घर खुलवाया। सारा घर सांय-सांय कर रहा था। नाथूलाल ने सोचा कि यदि इतने दिनों में ही मेरे घर का यह हाल हो गया है तो जब मैं सज़ा पूरी कर निकलूंगा तो इसका क्या हाल होगा? नाथूलाल के इस तरह अचानक बस्ती में चले आने का किसी को पता तक नहीं था। पड़ोसिन ने सुबह-सुबह गोबर के कंडे थोपते हुए जब पुलिस में घिरे हुए नाथूलाल को देखा तो वैसे ही गोबर-सने हाथों से वह नाथूलाल की ओर बढ़ी। उसने नाथूलाल को राम-राम की। नाथूलाल ने अनमने भाव से जवाब दिया और अपने घर में चला गया। पड़ोसिन ने शीघ्रता से हाथ धोये और चली बस्ती को खबर देने। नाथूलाल ने देखा कि घर में उसी प्रकार चीजें बिखरी पड़ी हैं जैसे कि प्रतीक्षा कर रही हों --नाथूलाल अभी लौटा, अभी लौटा। परन्तु स्वयं नाथूलाल को ही क्या पता था कि यह शाम कितनी मँहगी होगी? उसके बाद आज उसे अपने घर आने का मौका मिला था। सुबह उसने खिचड़ी बनाई थी और कुछ बाकी रख दी थी यह सोचकर कि उसे वह शाम को खायेगा। वह खिचड़ी बर्तन में पड़ी-पड़ी सड़कर, सूखकर बेकार हो गई थी। नाथूलाल ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि घटनाएँ इस प्रकार अप्रत्याशित रूप में मोड़ लेंगी। वह केवल अपने घर के अन्तिम दर्शन करने आया था—अपनी

अन्तिम बार देखने आया था। नहीं तो अपने दो पैसे के मिटते हुए झोंपड़े-नुमा घर से उसे कुछ भी नहीं लेना था। वहाँ उसकी प्रतीक्षा में कोई रोने वाला भी नहीं बैठा था। दो-चार बकरियाँ, कुत्ते उस समय अवश्य घर के दालान में बैठे हुए थे, जिन्हें नाथूलाल का इस प्रकार आ जाना अच्छा नहीं लगा। इतने में ही बस्ती के दो-चार आदमी नाथूलाल के घर से बाहर इकट्ठे हुए। नाथूलाल चादर लपेटे, लकड़ी का सहारा लिये खड़ा था। उसे लगता था कि जैसे कोई वस्तु बार-बार आकर उसके गले में अटक जाती है। वह गला फाड़कर रो देना चाहता था।

समय हो रहा था। उसकी आँखों से अनजाने ही आँसू बहने लगे। उसने आँसुओं को पोंछ डाला और पुलिस की लारी में बैठते हुए कहा—"चलो···।" उसके स्वर में वही आत्मविश्वास था। इस मुकदमे ने नाथू को सदियों बूढ़ा बना दिया था। उसे अब चलने के लिए लकड़ी के सहारे की आवश्यकता पड़ती थी। लोगों को यह समझ नहीं आया था कि नाथूलाल आखिर क्यों आया और आया तो इतने शीघ्र क्यों लौट गया? हमेशा की तरह आज भी उन्होंने यह मानकर संतोष कर लिया कि सरकार जो करती है वह ठीक ही करती है-- सरकार सोच-समझकर ही कदम उठाती है। नाथूलाल के सामने उसके अपने घर का दृश्य घूम गया···जेल जाने से पूर्व वही उसका अन्तिम आयोजन था। उसके घर में यदि वस्तुओं की आँखें होतीं तो शायद नाथूलाल की राह देखते-देखते वे आज तक पागल हो गई होतीं। घर का बिखरा सामान उसी तरह नाथूलाल की प्रतीक्षा करता हुआ पड़ा था। बस्ती छोड़ने से पहले अमरावती रोड पर आकर नाथूलाल ने पूरी तरह से घूमकर तिलनखेड़ी बस्ती को देखा, जैसेकि वह बस्ती से मौन विदा ले रहा हो। पूर्व क्षितिज पर हल्का-सा लाल प्रकाश फैलने लगा था। प्रभात के अन्धकार में सारी तिलनखेड़ी सुप्त पड़ी थी। केवल दो-तीन दूधवाले ही अपनी साइकिलों पर दूध के बड़े-बड़े बर्तनों की खड़···खड़···से प्रभात की सुप्त शांति को भंग कर रहे थे। चारों ओर एक भीषण सन्नाटा छाया था। नाथूलाल की आँखों में पुनः तरलता आ गई। पुलिस लारी की जाली से वह बस्ती को देखता है। पुलिस के सिपाहियों के सिरों व संगीन चढ़ी राइफलों को पार कर उसकी दृष्टि बस्ती

के झोपड़ों पर रुकती है।

भगवान् बुद्ध ने जब वैशाली के अन्तिम दर्शन किये थे तो कहा था, "तथागत अब कभी न देखेंगे वैशाली।" उन्हें शायद महसूस हो गया था कि वैशाली का यह अन्तिम दर्शन है। नाथूलाल को भी कुछ ऐसा ही आभास हुआ कि जैसे वह अपनी चिरपरिचित तिलनखेड़ी को अब न देख सकेगा। बस्ती में अपना अतीत नाथूलाल के सामने साकार हो उठा। उसे लगा कि जैसे तिलनखेड़ी और उसका व्यक्तित्व दो अभिन्न तत्व हैं।

तिलनखेड़ी बस्ती !

नाथूलाल की चेतना पर जो अज्ञात रूप से अपना घर कर बैठी थी, उससे आज पीछा छुड़ाना नाथूलाल को कठिन प्रतीत हो रहा था।

नाथूलाल सोचता है कि बस्ती के घुटे हुए वातावरण में रोज की तरह आज भी सुबह होगी। सुबह होते ही लोग अपने-अपने बिलों से या बिल जैसे घरों से काम पर जाने के लिए उदास और सहमे हुए निकल पड़ेंगे। उन्हें पता लगेगा कि सुबह-सुबह आज बस्ती में पुलिस के पहरे में नाथूलाल आया था। बस्ती की दूसरी ओर झंडुलाल की विशाल दैत्यकाय हवेली बस्ती के ऊपर सिर निकाले आज मृतप्राय-सी दिखाई पड़ती थी। पिछले पचास सालों से बस्ती के सिर पर छाई रहने वाली हवेली को आज सुप्त देख लोग भला क्या-क्या कल्पनाएँ न करते होंगे ? वे क्या-क्या विचार करते होंगे ? यह सोचकर कि झंडुलाल इस हवेली का मालिक अब इस संसार में नहीं है। हवेली को नाथूलाल ने बड़े ही निर्मम व निश्चल भाव से देखा। नाथूलाल ने सोचा कि लोग रोज की तरह आज भी उठेंगे, दातुन करेंगे, ठंडे पानी से नहाएँगे। दातुन करते-करते, या स्नान करते वे भजन भी गुनगुनाते रहेंगे···साथ ही बीच-बीच में गंदी एवं भद्दी गालियों से एक-दूसरे का स्वागत भी करते होंगे। काली कठोर एवं निराशापूर्ण रात्रि आज भी रोज की तरह बीतेगी।

बस्ती वालों के दिन को उनके काम-धंधों ने निगल लिया था। रात वे ठूँठ की तरह सोकर बिता देते थे। माँ-बाप के काम पर चले जाने पर तीन-चार वर्ष की अवस्था से दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था तक के गंदे, नंगे, चीथड़ों, धूल और गर्द से सने लड़के सेम्बुड़ बहाते हुए—अपने नग्न-

नितंबों का प्रदर्शन करते बस्ती में इधर-से-उधर कोलाहल करते फिरेंगे। ये बालक गिल्ली-डंडा खेलकर, पतंग उड़ाकर या ऐसे-वैसे किसी महत्त्वहीन खेल या कार्य से अपना दिन गुजार देंगे और शाम को थके-हारे रोते हुए अपने माँ-बाप की प्रतीक्षा करेंगे। अंत को रूखा-सूखा खाकर—जिसमें माँ-बाप से मिली कुछ मार भी होगी —चीथड़ों में सो जायेंगे।

बस्ती के कुछ लोग शनिवार को मनोरंजन के रूप में रामायण का पाठ कर लेते। केशो की दूकान पर बहस चर्चा करते, जमाने को गालियाँ देते, पड़ोसियों की चुगलियाँ, खाते, निंदा करते, बीड़ी या चिलम पीकर बढ़ते हुए भावों पर कांग्रेस व सरकार को भद्दी-सी गालियाँ देकर अपने-अपने घरों को लौट जाते।

बरसों की संचित थकान के कारण उनकी भूख मर गई थी। चटनी, प्याज, मिर्ची या जवस के तेल से भाकरी या ज्वार की मोटी-सी सूखी रोटियाँ खाकर अपने शरीर का वे तिल-तिल जलाए जाते थे। गरीबी, अज्ञान, पिछड़ेपन और अंधविश्वासों की सड़ांध में पड़े-पड़े इनकी जिन्दगी के दिन बीतते थे। बस्ती में दफ्तरों के जो दो-एक बाबू थे वे सिर ऊँचा किए घूमते थे। वे अपने-आपको किसी रईस से कम नहीं समझते थे। वे कभी-कभार अपने पड़ोसियों को २५ या ३०-३१ तारीख को दो-चार रुपये उधार देकर अपनी परोपकार वृत्ति पर मन-ही-मन फूले नहीं समाते थे। इसी तरह जीवन बीतता और मनहूसियत को दूर करने कभी होली, दिवाली जैसे 'त्योहार' आ जाते। दिवाली को लोग दिए जलाते और लक्ष्मी का पूजन करते—ऐसी लक्ष्मी, जिसने उन पर सदियों से कृपा नहीं की। फिर भी वे हर साल की तरह अपनी चिर-परिचित पुरानी अभिलाषाओं और श्रद्धा से लक्ष्मी का पूजन करते। होली को शोर मचाते, रंग-कीचड़, गोबर या अन्य बदबूदार पदार्थों से एक-दूसरे को सरोबार कर परस्पर गन्दी गालियाँ बकते। गले में ढोलक लटकाए कबीर आदि के नाम पर अश्लील दोहे गाते, अबीर-गुलाल उड़ाते, और भाँग पीकर मस्त हो जाते। इसमें कभी किसी को सख्त चोट भी आ जाती। किसी का लकड़ी का टाल जला दिया जाता या गोकुलपेठ, धरमपेठ से किसी का लकड़ी का कम्पाउंड तोड़-कर या बाँस-बल्लियाँ चुराकर होली के हवाले कर दिए जाते। दिवाली

में कुछ लोग जुआ खेलकर आने वाले वर्ष की भाग्य-आजमाई करते। शराबबन्दी के जमाने में भी दो-एक लोग इधर-उधर से शराब पीकर आ जाते और शोर मचाते।

आपस में एक-दूसरे से जलते, नफरत करते और अपने से ज्यादा अपने पड़ोसी की चिंता करने में अधिक व्यस्त रहते। हर किसीको मालूम होता कि उसके पड़ोसी ने आज कितने बार छींका है। पड़ोसियों की हर बात का लेखा-जोखा उनकी प्राइवेट डायरी में होता। किसी की लड़की यदि जवान हो रही होती तो उसके विवाह की चिंता का भार कम-से-कम छ-सात पड़ोसियों पर अवश्य होता।

हर मनुष्य के स्वार्थ का अपना छोटा-सा घेरा होता। उसमे वह लड़ता-झगड़ता, विवाह करता, बच्चे पैदा कर, कमाकर, चोरी या दान कर मर जाता। पैदाइश और मौत के बीच, इंटरवल— जिसे लोगों ने जीवन की संज्ञा दी है—इसी प्रकार बीतता। किसीको मालूम नहीं था कि जन्म से पहले *क्या था और किसी को मालूम नहीं कि मौत के बाद क्या होगा ?*

बस्ती के लोग आपस मे मिलते तो वे किसी ऐसी बात की चर्चा न करते जिसका सम्बन्ध उनके जीवन से न हो। उनकी चिंता का सबसे बड़ा विषय होता, वस्तुओं के बढ़ते हुए भाव। हर वस्तु के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए भाव आपस में रेस के घोड़ों की तरह एक-दूसरे से होड़ ले रहे हैं। हर कोई सोचता है—आदमी का क्या होगा ? आदमी आखिर क्या खाएगा ? क्या पीएगा ? हर आनेवाले दिन मे एक-न-एक वस्तु दुर्लभ होती चली जा रही है आज गेहूँ नही तो कल चावल नही। लड़ाई के जमाने मे तो कंट्रोल था, राशनिंग थी क्योंकि अनाज की तंगी थी। उस समय तो लड़ाई चल रही थी, किन्तु अब तो भारत स्वाधीन है। फिर भी उससे अधिक तंगी, वही कंट्रोल, वही राशनिंग, वही कार्ड और वही लंबी-लंबी कतारें जिनमे लोग गेहूँ, चावल या शक्कर के लिए प्रतीक्षा करते-करते प्यास व कमजोरी से तड़पकर, गिरकर बेहोश हो जाते। गिरने या बेहोश होने पर अलग कर दिए जाते।

इस प्रकार महत्त्वहीन जीवन व्यतीत करते-करते धीरे-धीरे घिसटते-घिसटते एक दिन वे मौत के किनारे जा पहुँचते। उस समय उसके साथी

उसे श्मशान ले जाते। श्मशान ले जाते समय उन्हें राम की सत्यता व जगत् की अनित्यता का आभास होता। अपने साथी को जलाकर, श्मशान से लौटकर पुन: वे अपने नित्यप्रति के कार्यों में लग जाते।

नाथूलाल देखता है कि हर आनेवाले नये दिन के साथ तिलनखेड़ी बस्ती का रंग फीका पड़ता जा रहा है। झंडुलाल, केशो आदि तो बस्ती से वैसे ही हट गए हैं। नई पीढ़ी के लोग, जिन्हें काम-धन्धों पर जाने के लिए बस्ती से काफी दूर जाना पड़ता था, मकान खोजकर, इतवारी, सीताबर्डी या नये आबाद होने वाले महल्लों में बस गए थे। तिलनखेड़ी के आसपास खाली पड़े रहने वाले मैदान आबाद होते जा रहे थे। उनके प्लाट बना दिए गए थे, जहाँ नए-नए मकान, घर, महल्ले आदि आबाद होते चले जा रहे थे। उधर श्रद्धानन्द पेठ और अंबाझिरी तक कहीं भी खाली ज़मीन का एक टुकड़ा भी नहीं दिखाई पड़ता था। तिलनखेड़ी का हर गिरने वाला झोंपड़ा पुन: आबाद नहीं होता था।

जिन लोगों से नाथूलाल को घृणा थी, नफ़रत थी, जिन पर उसे किसी समय क्रोध या खीझ आती थी, आज उन्हीं पर उसे सहसा दया या सहानुभूति हो आई। नाथूलाल ने सोचा कि वे तो आखिर दया या सहानुभूति के पात्र हैं। इतने बड़े अभावग्रस्त देश का एक छोटा-सा अंग, एक छोटा-सा कोना तिलनखेड़ी कोई नये अभाव से पीड़ित तो नहीं है। जिस दिन देश उत्पादन की अधिकता से तंग होगा, इंसान इंसान को पहचानेगा, हर आदमी को आत्मप्रतिष्ठा, आर्थिक संपन्नता, स्थायी व शांत एवं सुरक्षित जीवन प्राप्त होगा, उस समय ये दोष, अभाव, अंधविश्वास शायद अपने-आप जाते रहेंगे। यही संसार है, यही दुनिया है। जगत् का यही क्रम सदियों से चलता चला आ रहा है। वह दिन कब आयेगा जब ये आदमी टूटे हुए नहीं होंगे! शायद नई पीढ़ी इन दोषों से किसी हद तक मुक्त हो।

जेल का फाटक आ चुका था। पुलिस लारी के सहसा रुकने से नाथूलाल का ध्यान भंग हुआ।

अदालत को नाथूलाल के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला, इसलिए उसे निर्दोष बताकर मुक्त कर दिया गया।

रामू

जब चटर्जी ने ट्यूशन बन्द करने की बात की थी तो भले ही रामू पर उसकी कुछ भी प्रतिक्रिया हुई हो, परन्तु उनके कहने का आशय केवल एक संगीत पाठशाला खोलने का था, जिससे रामू को व्यवसाय मिल सके। बातों के सिलसिले में उन्होंने इस योजना को साकार रूप देने का निश्चय कर ही डाला। नतीजा यह हुआ कि पाठशाला खुल भी गई। रामू पाठशाला का प्रमुख बना और चटर्जी के घर ही रहने लगा।

रेणु का कमरा रामू को ही मिल गया था। रामू का आगमन रेणु की माँ को अखरा नहीं, क्योंकि रामू से उसे काफी सहायता मिल जाती थी। रामू के आने से पहले दबी ज़बान में चटर्जी से रेणु की माँ ने प्रतिवाद करने का प्रयास किया था—"रेखा की शादी हो लेने देते तो ठीक था।" वाक्य सुनते ही घूमकर लाल आँखों से चटर्जी ने जवाब दिया था—"उस लड़के को शायद तुमने पहचाना नहीं। यदि उसके चरित्र पर सदेह किया जा सकता है, तो मुझे मालूम नहीं कि दुनिया में तुम किसे भला कहोगी? उस जैसा यदि आज मेरा कोई बेटा होता, तो मेरी छाती गज-भर की हो जाती। वह जीनियस है।"

पूरा उत्तर सुनने से पहले ही चटर्जी की पत्नी वहाँ से खिसक चुकी थी। रामू चटर्जी के एक के बाद एक अहसान के नीचे दबता चला जा रहा था। इसलिए रेणु का प्रस्ताव अस्वीकार कर उसे कभी खेद नहीं हुआ था।

रामू के सामने मारुति का चिलम पर दम लगाता हुआ चेहरा घूम जाता है। मारुति का चेहरा! जिसमें दो सौ रुपयों की एक गहरी प्यास है।... और एक रामू है कि उसके लिए पैसों की व्यवस्था कर नहीं पाया है।

... ...

रेणु का खत आया कि वह नागपुर आ रही है। घर-भर के लोग प्रसन्न हो उठे। रेणु को स्टेशन पर लेने भी सब पहुँचे। रामू ने रेणु को देखा और देखता ही रह गया।

रेणु के चेहरे पर जहाँ एक समय दूधिया चाँदनी बरसती थी, अब वहाँ कफन जैसी सफेदी थी।

गाड़ी से उतरकर रेणु ने मुस्कराने का यत्न किया। उसने ओंठों को जबान से तर किया। उसके ओंठ सूख रहे थे। रेणु का चेहरा भी फीके स्वरों में गाये गए फीके गीतों के समान था। वह धीमे-धीमे बोल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई दूर पहाड़ों से बोल रहा हो।

सुबह सोकर उठते ही नहा-धोकर रेणु ने अपना सिर भी धोया। सिर सुखाने वह छत पर धूप में आकर बैठ गई। रामू को देखते ही उसने मुस्कराने का यत्न किया। उसे 'यत्न' कहना ही ठीक होगा।

रामू ने रेणु को उस दिन भी देखा था जब वह उसकी शिष्या के रूप में चटर्जी के साथ सिर झुकाए खड़ी थी। उसके बाद रामू ने वे दिन भी देखे जब रेणु ने उससे हर तरह की छूट लेने का प्रयास किया—वे भी अजीब मादकता के क्षण थे, और आज भी एक दिन है जबकि रेणु को देखते ही रामू के हृदय से एक हल्की-सी सिहरन निकल गई। कितनी ही मिश्रित भावजन्य अनुभूतियाँ उसे हुईं। रेणु ने कहा, "कहो मास्टर बाबू, संगीत पाठशाला के क्या हालचाल हैं ?"

"तरक्की पर है।"

"खैर सुनकर खुशी हुई। तुम्हारी तो अब हर चीज तरक्की करेगी क्योंकि मार्ग में कोई रोड़ा जो नहीं है।"

"कैसा रोड़ा ?"

"दुनिया में कई तरह के रोड़े-पत्थर होते हैं···जिनका काम पथिक के पैरों को तकलीफ पहुँचाना होता है।"

"आप ऐसा क्यों सोचती हैं···रेणु जी ?"

"तो मुझे भी रामू के साथ 'आप' और 'जी' लगाना पड़ेगा।"

"ऐसा करें तो बुरा नहीं है, क्योंकि अब तो आपकी स्थिति ही दूसरी है।"

"लेकिन मैं तो वही हूँ।"

"उससे क्या होता है ?"

केशराशि को हवा में फैलाते हुए रेणु ने कहा—"हाँ ठीक कहते हो।...निर्दय परिस्थितियों से तुम्हारा सामना नहीं पड़ा। इसलिए बातें बनाने का तुम्हें पूरा-पूरा हक है।"

"रेणु ! अभी तक क्या तुमने मुझे क्षमा नहीं किया ? प्रतीत होता है जैसे तुम अभी तक मन में क्रोध पाले बैठी हुई हो। चार माह हो गए किन्तु मुझे तुम्हारे स्वभाव में परिवर्तन नजर नहीं आया। क्या वे अच्छे नहीं हैं ?"

रामू ने जैसे रेणु की संवेदना को छू लिया हो, वह पिघल गई। उसने कहा—"ऐसी बात नहीं है, मेरे देवता! मैं शिकायत नहीं करती। पर क्या करूँ बहुत कमजोर हूँ। अपनी तकलीफों को अन्दर-ही-अन्दर चुपचाप पीना नहीं जानती। मैं तो सिर्फ इतना ही कहती हूँ कि मुझे इतना सुख मिला है, इतना सुख मिला है कि वह अपनी सीमा को लाँघकर दुख बन गया, एक पहाड़ हो गया। वह एक ऐसा बोझ है कि जो मेरी हर साँस को दबाये जा रहा है। पिताजी कितने अच्छे हैं। परिवार में मुझे हर किसी से स्नेह मिला। हर कोई मेरी सुनता था, मेरे नाज-नखरों को पूरा करता था। विवाह से पहले मैंने दुःख जाना ही नहीं। विवाह के बाद भी वे इतने अच्छे स्वभाव के मिले। उनका घर भरा-पूरा है। सास पूरी देवी हैं। जो प्यार माँजी मुझे न दे सकीं, वह उन्होंने दिया। परन्तु रामू, यदि केवल यही कुछ मुझे मिला होता तो मैं अत्यन्त प्रसन्न रहती। मैंने शायद सुखों की चरम सीमा को छू लिया होता। परन्तु तुमको पाकर मैंने उस सीमा का अतिक्रमण कर दिया। सुख, अधिक सुख बनकर, अपनी सीमा लाँघकर भारी दुख बन गया। उस दुख का बोझ हर साँस के साथ खींचती हूँ। बाट जोह रही हूँ उस समय की जबकि दुःख अपनी सीमा तोड़ देंगे। उस समय मुझे वास्तविक सुख मिलेगा, इसलिए मैं दुख का अधिकाधिक भार वहन करने को तैयार हूँ। वह दुख मानसिक न होकर शारीरिक भी हो जाए तो उसे पुण्य ही मानूँगी। इस कारण पाप करना चाहती हूँ। रामू, अच्छा हुआ जो तुम यहाँ रहने आ गये। जितने दिन तुम

यहाँ रहोगे, जी भरकर तुम्हें सुनाया करूँगी। जाने फिर कब भेंट हो···! शायद न भी हो···!

"पर रामू, एक बात! उनका संसार अपने स्वार्थ के लिए उजाड़ने का मुझे कोई हक नहीं है। उनके निर्दोष जीवन के आनन्द में मैं कभी बाधक नहीं बनूँगी···।

"डर केवल तुम्हारा······"

इससे पहले कि रेणु अपनी बात पूरी करे उसने देखा कि रामू शीघ्रता से सीढ़ियों से उतर रहा है।

रामू ने कमरे की बत्ती तो बुझा दी थी किन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी। करवट लेकर वह सोचता है—'मुझे क्या चाहिए···?' परन्तु यह सवाल इतना स्पष्ट होकर इतने आवश्यक रूप से रामू के सामने कभी तो नहीं आया था। आज क्यों आया? वह उठकर खिड़की तक जाता है। खिड़की से धन्तोली व रामदासपेठ तक फैले···अँधेरी रात में सोये-से जान पड़ने वाले घरों को देखता है। पुनः आकर बिस्तर पर लेट जाता है।

सामने फिर वही सवाल है—'मुझे क्या चाहिए···?' उत्तर है—'प्यार···!'

फिर वह सोचता है—'प्यार! परन्तु सैक्स के बिना आखिर उसका क्या मूल्य? सैक्स के बिना प्यार का क्या अस्तित्व? वह एक प्रकार की मांसलता है जिसका शरीर के बिना कोई महत्त्व नहीं। नारी उसकी आधार-शिला है; वह मात्र भावना नहीं है, छाया नहीं है। उसका माध्यम प्रत्यक्ष और भौतिक होता है। केवल उससे मिलनेवाली अनुभूति ही भावनामय होती है। इसके अतिरिक्त सब छलना है, धोखा है।···मेरा मन बेकाबू हो जाता है। कुछ चाहता है। एक प्रकार की प्यास लगती है···उस प्यास को दूर करने का नाम ही शायद ज़िंदगी है। आलिंगन···चुम्बन···क्या पाप है? अपने-आपमें तो कोई वस्तु न बुरी होती है न अच्छी···वह तो ऐसी होती है···जैसी बनाई गई है। हम ही उसे बुरा बनाकर, बुरे बनते हैं। सृष्टि का सृजन जिससे हुआ—क्या उसे ही पाप माना जाए? पर मैं तो

पापी नहीं हूँ।

'ह—ह—ह···! तुम पापी नहीं हो! कौन कहता है? जिन्हें तुम पुण्य कहते हो···वे तुम्हारे पाप ही हैं। किसे पुण्य कहते हो? अपने स्वार्थ को, अपनी कायरता को? स्वार्थी, तुमने अपने-आपको बचाने के लिए यह सब-कुछ किया। तुम कायर थे। परिस्थितियों का सामना करने की अपेक्षा तुमने उनसे भागना ही उचित समझा। पलायनवादी, यदि अब तुमने वापस लौटने का प्रयास किया तो वह और भी बड़ा पाप होगा। जहाँ रुके थे वहीं रुके रहो।'

रामू चारपाई पर सहसा उठकर बैठ गया। उसे लगा कि जैसे दरवाजे से कोई भारी-सी, डरावनी-सी काली छाया उसकी ओर चली आ रही है ···वह काँप गया···खटिया पर बैठे-बैठे ही वह पीछे खिसका। उसने कहा—"तुम कौन?"

"मैं···खैर तूने आखिर पूछने की हिम्मत तो की, मैं कौन? मैं वही हूँ जिसे आज तक तू पहचान नहीं पाया। मैं वही हूँ जिसे आज तक तूने दबाकर रखा। यदि मुझे पूरी तरह से नहीं देख सकता तो कम-से-कम धुँधले रूप में ही देख···मुझे देखना होगा···तू बचकर नहीं निकल सकता ···मैं रामू हूँ ··तेरी प्रतिच्छाया।"

"तुम कैसे रामू हुए···?" रामू बुदबुदाया। रामू को ऐसा लगा जैसे उस छाया का कोई निश्चित आकार नहीं है।

उस छाया का आकार उसकी कल्पना के अनुसार क्षण-क्षण बदल रहा है। धुएँ के बादलों की तरह जैसे वह आकृति सारे कमरे में फैलती चली जा रही है। रामू ने अपनी कल्पना में भयभीत हो दोनों हाथ हवा में फैलाते हुए जैसे कहा—"नहीं!···नहीं···!! मुझे अकेला देखकर डराने का प्रयास मत करो। इतने बड़े संसार में मैं अकेला हूँ, इसलिए तुम कमजोर समझकर मेरी ओर आ रहे हो। संसार के प्यार से मैं वंचित रहा। माँ-बाप का प्यार मुझे नहीं मिला···कर्नल साहब का प्यार मिला, परन्तु उनके और मेरे बीच औपचारिकता की दीवार है।···उन्हें क्या बताऊँ कि मैं क्या सोचता हूँ? जो किसीका दोस्त न रहा कम-से-कम उस पर दुश्मनी तो न लादो···मैं पागल हो जाऊँगा।" जैसे वह अपने सिर के बा[illegible]

हुए कहता है।

"तुम पागल नहीं होग्रोगे, बल्कि दूसरों को पागल बनाग्रोगे। ग्राज तुम प्यार की भीख माँगते हो। संसार की चाहे जो वस्तु भीख में मिल जाए किन्तु ग्रादर ग्रौर प्यार भीख में नहीं मिलते—माँगने से नहीं मिलते। तुम ग्रकेले हो ग्रौर ग्रकेले रहोगे, केवल ग्रपने कारण···रेणु ने जब हाथ बढ़ाकर तुम्हारे ग्रकेलेपन को तुमसे छीनकर दूर फेंकना चाहा था तो उसे तुमने पूरे जोर के साथ ग्रपने हाथों में दबाकर रखा था। मानो वह तुम्हारी कोई ग्रमूल्य व्यक्तिगत निधि हो। यदि ऐसा ही था तो ग्राज उससे डरते क्यों हो? बस इतनी ही ताकत थी? ग्रकेलेपन को तुमने ग्रपने व्यक्तित्व की महानता समझा। इस कारण प्रकृति के शाश्वत नियमों का उल्लंघन कर तुमने ग्रपने को धोखा दिया। ग्राज उस धोखे की धुंधली चादर तुम्हें हटती नज़र ग्रा रही है। उस चादर को हटाग्रो मत, पड़ी रहने दो। तुम नग्नसत्य नहीं देख सकोगे। तुमने यह जान लिया है कि तुम्हारे विचार खुली हवा में नहीं पनपे थे। यह तो कोई कारण नहीं कि दूसरे ग्रपनी मर्यादा छोड़ दें, तो तुम भी ग्रपनी मर्यादा छोड़ दो। तुम प्यार से वंचित रहे···तो कम-से-कम तुमने दुनिया को ग्रपना प्यार दिया होता··· फिर देखते उसका परिणाम! कुत्ता तुम्हें काटता है तो बदले में तुम तो कुत्ते को नहीं काटते!···पर हक़ीक़त यह है कि तुम खुद ही सूखे थे—ग्रपने-ग्रापमें उलझे हुए ग्रौर ढीले थे।"

"डरे हुए को क्या डराते हो? मरे हुए को क्या मारते हो?"

"जिसे तुम डर कहते हो वह तो तुम्हारी कमज़ोरी का परिणाम है।"

"वह तो मेरी पवित्रता का ग्रावरण था।"

"सच कहते हो पतित! भूल गए तिलनखेड़ी में उस दिन ग्रर्धरात्रि के निरभ्र ग्राकाश को देखकर तुमने क्या-क्या सोचा था? क्या-क्या कल्पनाएँ की थीं? ग्रौर सुबह उसीको पागलपन कहकर छिटक दिया था। पवित्रता पहले मन से प्रारंभ होती है। शरीर तो उसका ग्रन्त है। ग्रौर ग्राखिर पवित्रता का क्या मतलब होता है? हर वस्तु की एक सीमा होती है। तुम्हारी पवित्रता ग्रपनी सीमा लाँघकर ग्रपवित्रता बन गई। रेणु की

अपवित्रता के लिए कौन जिम्मेदार है ? रेणु ने तो अपना उत्सर्ग कर दिया।"

"इसमे मेरा क्या अपराध था ? मैंने किसी को निमंत्रण तो नहीं दिया था। कोई यदि मेरे जीवन मे बरबस आने का प्रयास करे तो मैं क्या करूँ ?"

"बस ! इन्हीं खयालो ने तुझे मिटा दिया। तू केवल अपनी, केवल अपने-आपकी चिंता करता रहा। जिस समय वह तेरे घेरे मे पैर रख रही थी, उसी समय क्यों नही तूने उसे रोका, अपने-आपका घेरा क्यों नही तूने तोड़ा ? तूने जो किया वह जान-बूझकर किया, इसलिए कि तू अपने-आपको बचाना चाहता था। अहम् का ढोंग रचने वाले ! तू अहम् की ताकत के बोझ को नही उठा सकता।"

"बस करो······अब अधिक नही सुना जाता······मुझे नही मालूम कि मुझे क्या करना चाहिए था।"

"मिस्टर रामचन्द्र पाटिल ! ससार में जो होना है, सो तो होता ही है। उसे तुम चाहो या न चाहो, देखो या न देखो। दुनिया किसके लिए रुकी है ? यदि रात को तुम नींद न लोगे तो क्या रात बीतेगी नही ? जिंदगी मे संघर्ष और परीक्षाओं को पार करने मे ही मनुष्य मजबूत बनता है। डर-डरकर चलने से, जीवन को एक ही सीध मे ले जाकर तुम एक गधे या खच्चर से ज्यादा काम तो नही कर पाओगे। ईश्वर ने जीवन मात्र ढोने के लिए नही दिया है। अन्तर्मुखी बनकर तुमने जडता और निष्क्रियता से प्यार किया। तुम्हे जहां से भी चोट मिलने का भय लगा वहां से तुम भागे। इस पर विजय नही प्राप्त की। केवल उन सबसे बचकर तुम अपने-आपमें कुंठित होते चले गये, कछुए की तरह, तुम्हें लगा कि जैसे सारी दुनिया तुम्हारे पीछे हाथ धोकर पडी है। सब तुम्हारी उपेक्षा करते है। तुम्हारी आत्मपरता मे भावुकता की मात्रा कही अधिक थी। इस कारण तुम व्यावहारिक नही बने, कर्ममय नही हुए, सघर्षरत नही रहे। तुमने कुछ नही किया, तुम अपने-आपमें निष्क्रिय और जड रहे। परन्तु दूसरे को, जो कुछ करना चाहता था, तुमने रोका। यदि तुम अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर डालकर निष्क्रिय ही रह गये होते तो भी एक बात थी। परन्तु तुम तो

चट्टान की तरह दृढ़ हो उठे। वह तुम्हारा क्षणिक बचाव मात्र था। तुम्हें यदि सहारा न मिले तो शायद तुम्हारा जीवन ही दूभर हो जाये। तुमने अपनी जड़ पर ही कुठाराघात किया। अपने ही सहारे को ठोकर मारी। जो कोयले का कण चारों ओर से दबकर और जलकर हीरा बन सकता है, वही आग में पड़कर राख भी हो सकता है। तुम्हारे पास हीरा बनने का अवसर था किन्तु तुम्हारी अन्तर्ज्वाला ने तुम्हें राख बनाकर ही दम लिया। तुमने अपने-आपका तिरस्कार किया। तुमने डायरी लिखी, परन्तु उसमें भी तुम अपने-आपको पूर्णतया खोल न सके। तुम्हें इस बात का डर था कि यदि कहीं किसी ने पढ़ लिया तो वह तुम्हें चरित्रहीन कहेगा। क्या जरूरत थी डायरी लिखने की, जबकि मन की बात मन ही में रह गई? नारी के व्यक्तित्व को तुमने कभी समझने का प्रयास नहीं किया। वह नेगेटिव एप्रोच की अपेक्षा रखती है, जबकि तुम सदा अपने-आपमें पॉज़िटिव बने रहे। कल्पनाओं एवं भावनाओं के संसार में रंगे रहकर तुम अपने-आपमें जलकर खाक हो गए जबकि रेणु अपने-आपमें लुटकर महान् हो गई। जलकर और दबकर वह हीरा बन गई।"

रामू शीघ्रता से उठा। उसने स्विच ऑन किया। प्रकाश में उसे सुकून मिला। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। उसने पसीना पोंछा और सतर्क नज़रों से दरवाज़े की ओर देखने लगा। दरवाज़ा बन्द था। बाहर के निपट अँधेरे में कमरा प्रकाशमान हो उठा था। दूर दीवार पर रेणु का एक बड़ा-सा चित्र फ्रेम में टंगा मुस्करा रहा था। रामू को लग रहा था कि रेणु की भारी एवं चौड़ी पलकें जैसे उसके हृदय के आर-पार निकलने का प्रयास कर रही हैं और वह पूरे यत्न के साथ अपने-आपकी आत्मरक्षा कर रहा है।

रामू खुली खिड़की से दूर वीरान काली सड़क को देखता हुआ खड़ा है। वैसे रामू ने अपने-आपको इतना विचलित कभी नहीं पाया था जितना रेणु के विवाह के पश्चात्। जीवन के जिन मूल्यों को किसी समय वह आदर्श मानता था, आज वे ही उसे निस्सार-से मालूम पड़ रहे थे। उसे महसूस हो रहा था कि आज तक उसने जो किया, उससे जीवन में एक प्रकार की रिक्तता के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त किया जा सका है। अपने

ट्यूशन से आगे बढ़ते-बढ़ते एक दिन अपनी शिष्या से विवाह कर लिया। रामू सोचता कि यदि उसने रेणु के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तो उसके नाम की भी चर्चा होगी। लोग उसकी ओर अंगुलियाँ उठायेंगे, उसकी गरीबी का मज़ाक करेंगे। उस दिन उसके पास क्या जवाब होगा ? रेणु स्वयं अपने विवाह के पश्चात् एक दिन अपनी भावुकता को स्वीकार करेगी। फिर उसने सोचा कि कहाँ अभी रेणु ने विवाह कर लिया है। अभी तो सगाई होगी···समय लगेगा···अभी तो काफ़ी समय है। मेरी स्वीकृति पर वह सगाई तोड़ देगी।

परन्तु एक दिन रामू ने देखा कि भरी महफ़िल में घोड़े पर सवार होकर, सिर पर फूलों का सेहरा बाँधे एक राजकुमार-जैसा पुरुष बैंड-बाजों के साथ आता है। सबके सामने रेणु से सात फेरे लगवाकर उसे साथ ले जाता है।

और···रामू के अन्दर से जैसे कोई गरजकर कहता है—"बजा बेटा बाँसुरी अब ज़िन्दगी-भर।"

२

शाम को चटर्जी सपरिवार सिनेमा देखने चले गए। नौकरानी को भी साथ लेते गए। केवल रेणु ही घर पर रह गई थी। रामू की तबियत वैसे दिन-भर से भारी हो रही थी। वह अपने कमरेमें ही पड़ा 'Beethovan the Creator' के पन्ने उलटता रहा। उसे आज तक यह पहेली समझ नहीं आई कि यह किताब उसके घर में कैसे और कहाँ से आई थी ? फिर भी उसने आज तक इस किताब को बड़े यत्न से सम्हालकर रखा था। वह उसे इस प्रकार पढ़ता जैसे वह कोई बाइबिल हो।

किसी नें दरवाज़ा खटखटाया।

रामू ने कहा—"चले आओ।" देखा तो सामने रेणु खड़ी थी। रामू ने उठने का प्रयास किया। वह कुर्सी खींचकर पास ही बैठ गई। रेणु के चेहरे की आभा लौट रही थी। रामू ने कहा—"रेणु, क्या बात है, दुबली होकर लौटी हो ? सुना है कि लोग तो शादी के बाद मोटे हो जाते हैं।"

"तुम्हारी शादी होगी तो तुम्हारे इस कथन की सत्यता के लिए तुम्हारा वज़न देखूंगी।"

"जरूर! जरूर!! एक बार छोड़ सौ बार देखना। ···वैसे अब तुम्हारे चेहरे की रंगत लौट रही है। गाड़ी से जब तुम उतरी थीं तो तुम्हारा चेहरा बिल्कुल ही पीला हो रहा था।"

"सफ़र में ऐसा ही होता है।"

"रेल के सफर में या जिन्दगी के सफ़र में ?"

"कुछ भी समझो·· लाम्रो सिर दबा दूँ।" रेणु ने रामू को प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा। परन्तु प्रतिवाद नहीं किया। वह मेमने की तरह सीधा और चुपचाप पड़ा था। उसे पिछली रात की उस धुँधली और काली छाया का स्मरण हो आया। उसके माथे पर फिर पसीना आ गया। रेणु ने तौलिए से रामू का मस्तक पोंछा।

"तुम्हें बहुत पसीना आ रहा है।" रेणु ने रामू का सिर अपनी गोद में रख लिया था। रामू की आँखें धीमे-धीमे बन्द होने लगी थीं।

"रेणु···तुम यह क्या कर रही हो ?"

"चुप रहो···नहीं तो सिर-दर्द बढ़ेगा।"

"चुप तो नहीं रह सकता। हाँ निरर्थक प्रश्न नहीं करूँगा। · रेणु, क्या तुमने वे उपन्यास पढ़े हैं जिनके लेखकों ने 'नीति के नए मानदंड' उपस्थित करने के प्रयास किए हैं ? उनकी नायिकाएँ एक के साथ संबंध समाप्त कर किसी दूसरे के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास करती हैं और अवसर आने पर किसी तीसरे के साथ खिसक जाती हैं। भविष्य के सुख में उन्हें अतीत का दुख नहीं होता।"

"हिन्दी या भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेज़ी में ऐसे उपन्यास अधिक हैं। यह 'नीति के नए मानदंड' स्थापित करने की बीमारी भी हिंदी में बाहर से ही आई है। जीवन के कटु सत्यों को छिपाने के लिए मनुष्य को सदैव सुन्दर-सुन्दर शब्दों के आवरण खोजने पड़े हैं। मुझे अपने अतीत का दुख है।"

"उस सत्य को तुम कटु कह सकती हो। हो सकता है कि कोई उसे सुखद कहे।"

"कोई से तुम्हारा क्या मतलब है ? सीधी बात क्यों नहीं करते ? तुम्हारे सिवाय 'वह कोई' कौन हो सकता है ? क्रिया की प्रतिक्रिया भयानक होती है, रामू ! जिस चट्टान पर तुम दृढ़ थे, मुझे वह अब हिलती नजर आ रही है। जानते हो उस चट्टान के नीचे भारी फिसलन है। फिर तुम भी 'नीति के नए मानदंड' स्थापित करते फिरना।"

सुनकर रामू तिलमिला उठा। उसने कहा—"रेणु, यदि तुम्हारा ऐसा ही विश्वास है तो मैं भी कहूंगा कि तुम जो कर रही हो वह ठीक नहीं है। तुम अब परिणीता हो।"

"अपने पर लगाए गए आरोपों को दूर करने का सबसे सरल तरीका दूसरे पर प्रत्यारोपण करना होता है। मैं जो कुछ भी हूँ केवल तुम्हारे कारण हूँ। मेरी जबान न खुलवाओ। तड़प उठोगे। और उल्टा-सीधा बक जाओगे। उसके लिए बाद को तुम्हें ही पश्चात्ताप होगा।" इतने में ही बाहर से मोटर की आवाज आई। रेणु उठकर जाने लगी। रामू ने कहा—"काश, यह सिनेमा सारी रात चलता !"

"जिंदगी-भर क्यों नहीं कहते ?...रात ही क्यों ?" कहकर रेणु सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

दुर्योधन ने जब भगवान् श्रीकृष्ण को कैद करना चाहा था तो भगवान् का विराट् रूप देखकर उसकी आँखें पथरा गई थीं। भगवान् का रूप इतना विशाल था कि दुर्योधन की आँखों में सारा दृश्य 'आउट ऑफ़ फोकस' हो रहा था। भगवान् के समस्त रूप को देखने में असमर्थ होने के कारण दुर्योधन ने आँखें बन्द कर ली थीं। उसी प्रकार जब रामू के माँगने पर रेणु ने उसे सौ-सौ के दो नोट लाकर पकड़ा दिए तो रेणु की महानता को देखने में रामू ने अपने-आपको असमर्थ पाया।

रामू की आँखें अपने-आप बन्द हो गईं। उन बन्द आँखों में आँसू भर आए। रेणु ने वे आँसू पोंछ दिए। रामू ने आँखें खोलीं तो रेणु कह रही थी—"काश, तुम सदा मुझसे माँगते ही रहे होते ! मैं अपना जीवन इसी माध्यम से सार्थक कर पाती। तुम्हारी चुप्पी को देख आखिर मुझे ही हाथ पसारने पड़े। लेकिन उस फैले हुए आँचल में तुमने भीख नहीं डाली,

बल्कि ठोकर मार दी। तुमने उस पर थूक दिया। काश कि तुमने अपनी सीमा की महानता को पहचाना होता! तुम्हें अपनी सीमाओं का ज्ञान नहीं था। लेकिन अब अपने-आपको बड़ा समझोगे तो अपनी सीमाएँ अत्यन्त छोटी पाओगे।"

रेणु ने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी कि विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करने वाला कभी उससे दो सौ रुपये भी माँग सकता है।

रामू ने पांडुरंग को रुपये दिये। मारुति ने एक पुराना रिक्शा खरीदा। उसकी अनेक वर्षों की साध पूरी हुई। पांडुरंग रामू को आशीर्वाद देता है। लक्ष्मी रामू के सिर की बलाएँ लेती है। कहती है रिक्शे की कमाई से अब पुरनी का ब्याह करूँगी।

रामू बुत की तरह खड़ा है। प्रतीक्षा करता है कि कब यह नाटक समाप्त हो और वह वहाँ से लौटे। यह सारा आदर-सम्मान, आशीर्वाद तो रेणु के अधिकार की वस्तु है। यहाँ भी वह रेणु के अधिकारों पर डाका ही डाल रहा है। वह आत्मग्लानि से भर उठा और लौट आया।

मारुति अब रिक्शावाला नहीं बल्कि रिक्शा-मालिक है। जब कोई उसे पुकारता है—'ऐ रिक्शावाला, रिक्शा खाली है क्या?' तो वह मन-ही-मन खीझ उठता है। वह सोचता है कि उसे रिक्शा-मालिक कहकर क्यों नहीं पुकारा जाता? वह रिक्शा-मालिक तो तब बनेगा जब उसके अपने रिक्शे चलेंगे। उसका काम उस समय केवल वसूली करना और हिसाब गिनना होगा।

पर वह सोचता है ऐसा मालिक बनने से क्या लाभ? इसके लिए रिक्शे वालों की गालियों के बोझ को भी उठाना जरूरी है।

मारुति को मालूम है कि रिक्शेवाले गालियों के रूप में अपने मालिकों को कितने आशीर्वाद दिया करते हैं।

३

"तुम्हारे जमाई राजा की चिट्ठी आई है।" चटर्जी ने मूँछों में ही मुस्कराते हुए कहा।

"क्या लिखा है ?"

"उनकी तबियत ख़राब रहती है। यहाँ आ रहे हैं। हवा बदली भी हो जाएगी और रेणु को भी साथ ले जायेंगे। इस समय वे अपने घर पर अकेले ही हैं और बीमारी में अकेलापन अच्छा नहीं होता।"

"आना है तो आ जाए... किसने रोका है ? उन्हीं का घर है।" लड़की उन्हीं की है...पर बहाने क्यों ? औरतें जब मायके जाती हैं तो उनके आदमियों की तबियत का खराब हो जाना, उन्हें जुकाम हो जाना आदि साधारण बातें होती हैं। मर्द रोटी की समस्या को सुलभा भी लें तो बाकी काफी कुछ रह जाता है। उसका क्या करें ? अपने दिन भूल गये क्या ? जब तक मैं यहाँ रहती तो मुझसे लड़ाई-झगड़ा किया करते, किन्तु मेरे मायके जाते ही आपकी हज़ार शिकायतें शुरू हो जातीं। और मिमियाते हुए कर्नल चटर्जी अपने ससुर के घर हाज़िर हो जाते...क्यों झूठ है ?"

"मेहरबान, तुमने आज तक कब झूठ बोला है ? वह तो हमारे कानों में ही कुछ ऐसे कीड़े हैं जिनके कारण हमें कभी-कभी झूठ सुनाई दे जाता है।"

"जाओ भी...बुढ़ापे में भी तुमको मज़ाक...सूझता है...।" चटर्जी ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा—"बुढ़ापा होगा तुम्हारे लिए। मर्द तो हरदम जवान ही होते हैं। साठे पर पाठा होता है। सुना नहीं पुराने समय में साठ-साठ साल के लोगों ने भी शादियाँ की थीं।"

"तो कर लो तुम भी एक और।"

"एक छोड़ दो-दो से करने को तैयार हूँ, किन्तु तुम्हें उन बहुओं की सास बनना होगा। सौत का रिश्ता नहीं चलेगा।"

'रेणु चली जाएगी।' यह विचार आते ही रामू का कलेजा मछली की तरह तड़प उठता था। रामू रेणु के पति से मिला। वही हँसता-मुस्कराता चेहरा जैसा कि उसने चित्र में देखा था। उसने कहा—"रेणु, तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या होती है।"

"मेरे भाग्य से या मेरे पति के...सीधी बात क्यों नहीं करते ?"

"ईर्ष्या तुमसे होती है कि तुम्हें ऐसा पति मिला।"

"क्या तुम्हें भी पति की आवश्यकता है ? यदि मेरी कोई सहेली इस तरह की बातें करती, तो मान भी लेती। लेकिन तुम तो आदमी हो ···इसलिए ईर्ष्या का तो सवाल ही नहीं उठता। मौका तुमने खोया था न कि मेरे पति ने तुमसे छीना था।"

आगे कुछ कहना रामू ने बेकार ही समझा। नागपुर आने से पहले रेणु के पति ने उसको पत्र डाला था। रेणु ने वह पत्र रामू को देकर कहा — "इसे पढ़ो।"

"किसका पत्र है?" रामू ने पूछा। उत्तर पाकर रामू ने कहा — "तुम्हारे पति का पत्र मैं भला कैसे पढ़ूँ? तुम भी अजीब हो। इस पत्र को पढ़ने का अधिकार तो तुम्हारे घरवालों को भी नहीं है।"

"बेशक···किन्तु इसे मैं अपनी अन्तरंग सखी को तो पढ़ा सकती हूँ।"

"बेशक···।"

"तो तुम मेरे मित्र ही तो हो, जिससे कि मैं अपने सारे सुख-दुख कह सकती हूँ। ठीक है न···! कोई यदि पूछे कि तुम मेरे कौन हो ? तो कहूँगी सब-कुछ में से पति को ऋण करके जो भी बचे वह।"

रामू ने कहा—"वाह···क्या रिश्ता बनाया! यह तो गणित का सवाल बना दिया···खैर···रेणु··· इसमें शक नहीं कि मैं मूर्ख हूँ···कितनी ही बातों को उनके समय बीत जाने के बाद ही पहचानता हूँ।"

आधी रात गए रामू जागता रहा। घड़ी ने एक बजाया। वह दरवाजा खोलकर खुली छत पर आया। चारों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया था। लगता था कि जैसे रात भी सो चुकी है। सितारों के रूप में ही आसमान की अगणित छोटी-बड़ी आँखें खुली थीं। रामू की आँखें आसमान की ओर उठती हैं···सहसा वह भावुक हो उठता है। वह देखता है कि पूर्णिमा का चन्द्र आज पश्चिम की ओर खिसकने की तैयारी कर रहा है। रामू ने चाँद को देखा और उसके शरीर से एक अज्ञात-सी सिहरन निकल गई। वह बाँसुरी उठा लाया। वह सोचता है कि जब चाँद सोने जायेगा तब दिन होगा···रेणु सो रही होगी। उसके कमरे में बहार होगी··· पर मैं तो बाहर ही हूँ। रेणु स्वप्नों में खोई हुई होगी। उसे मालकोश राग पसन्द है···

समय भी ठीक है। रामू ने पूरे जोर के साथ अपनी तान छेड़ दी। पहले तो उसकी तान काँपती-सी नज़र आई, किन्तु बाद को उसने उठाव ले लिया। उसमें स्थिरता भी आ गई।

रामू छत की मुँडेर पर बैठा इस तन्मयता के साथ बाँसुरी बजा रहा था मानो रेणु उसके सामने ही बैठी हो।

रात के उस गहरे सन्नाटे को चीरकर उस तान ने रेणु को जगा दिया। बिस्तर से ही रेणु ने खुली खिड़की से बाहर देखा। उसे लगा जैसे रामू उसके सामने ही आ गया है।

कमरे में घड़ी की टिक्-टिक् सुनाई दे रही थी। दूर ज़ीरो बल्ब जल रहा था। दूसरे पलंग पर ही उसके पति गहरी नींद में सोए थे। रेणु को ताजमहल का दृश्य याद हो आया जबकि प्रथम प्रहर की चाँदनी में तन्मय होकर उसने रामू की वंशी सुनी थी। उस समय रेणु ने क्या-क्या नहीं सोचा था!

लेकिन परिणाम…!

दूसरी चारपाई पर सो रहा था।

रेणु सोचती है कि दो-एक दिन बाद मैं चल दूंगी, फिर ये तानें कहाँ से सुनूंगी? रेणु को मालूम नहीं कब धुन समाप्त हुई और कब वह सो गई। उसने स्वप्न देखा…वह देखती है…

चारों ओर पानी ही पानी है। चारों ओर विशाल और गम्भीर सागर है। दूर तक पानी फैला है—ऐसा पानी जिसकी एक बूँद भी नहीं पी जा सकती। गरजती हुई लहरें शोर करती हैं और द्वीपस्तंभ के चरण चूमती हुई निकल जाती हैं। उस कांपते हुए विशाल समुद्र में छोटे-से एक द्वीप पर एक द्वीपस्तंभ सीधा, अटल और निश्चल खड़ा है। जैसे उसे किसीसे कोई शिकायत नहीं। सितारों के हल्के-से प्रकाश में समुद्र का पानी चमकता है। सरल व गहरी नीली-सी दिखाई पड़ने वाली समुद्र की सतह के नीचे न जाने कैसे-कैसे विषैले पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, जन्तु और मछलियाँ हैं। पानी के कम्पन के स्वर कान फाड़े डालते हैं। द्वीपस्तंभ प्रकाशहीन है।…

द्वीपस्तंभ का रक्षक देखता है क्षितिज से एक काली छाया उसकी ओर समुद्र पर तैरती हुई बढ़ी आ रही है। वह खिड़की से एकटक आँखें गड़ाये

स काली छाया को देखता है। सहसा रक्षक चिल्लाता है—'यह तो हाज है……!"

द्वीपस्तंभ प्रकाशहीन है। वह शोर मचा देता है। सारे कर्मचारी दौड़ ड़ते हैं, पर प्रकाश का पता नहीं। बिजली के तार उलझ गये हैं या किसी कारण से काम नहीं दे रहे हैं।

जहाज निकट आता जा रहा है। रक्षक चिंतातुर होकर इधर-उधर दौड़ते हैं। जहाज करीब आ गया है। सहसा द्वीपस्तंभ प्रकाशमान हो उठता है। जहाज ने बरबस दिशा मोड़ी। जहाज बच गया था। वह द्वीप से टकराया नहीं, रक्षक ने अपने मस्तक का पसीना पोंछा। जहाज के पीछे दूर तक जहाज के पानी में जहाज के चले जाने से राह-सी बनती चली जा रही थी। रक्षक लौटा। लेकिन रक्षक देखता है कि जहाज पुनः लौटकर आ रहा है और द्वीपस्तंभ का चक्कर लगाकर पुनः दूर जा रहा है। उसने सारी रात उस जहाज को द्वीपस्तंभ के आसपास चक्कर लगाते ही देखा।

कलकत्ते के जीवन में रेणु ने पहली बार समुद्र देखा था। जहाज देखे थे। द्वीपस्तंभ देखे थे। उसे कितना आश्चर्य हुआ था। वह प्रकृति के अनंत वातायन में खो गई थी।

रामू दिल मसोसकर रह गया कि काश ! इस समय रेणु आकर बाँसुरी सुन पाती। रामू के सामने पहले केवल दो ही दीवारें थीं। परन्तु अब तो उसके सामने एक ऐसी ऊँची, भारी, और मजबूत दीवार आ गई थी जिसके पार करने के प्रयास मात्र से ही उस पर आवाजें उठने का भय था। लोग अँगुलियाँ उठाएँगे। वह कमरे में पीछे हाथ किये हुए खड़ा था। सामने रेणु का चित्र उसने देखा, फोटो भारी-सी पलकों से मुस्करा रही थी। उसने फोटो को उतारा। एक क्षण उसे देखता रहा। फिर फोटो टेबल पर रख वह सो गया।

सुबह वह देर से उठा। उठते ही उसे रात की घटना याद आई। टेबल पर रेणु का चित्र पड़ा था। रेणु की माँ ने दो बार ऊपर सन्देश भिजवाया तो पता लगा कि मास्टर बाबू सो रहे हैं। वह स्वयं ऊपर आई। खिड़की खुली थी। उसने देखा कि रामू के हाथ में रेणु की फोटो है।

ठिठक गई, चुपचाप देखने लग गई। रामू को रेणु की माँ का आगमन मालूम नहीं था।

रामू ने फोटो को अधरों से लगाया और मुस्कराते हुए उसे कील पर वापस टाँग दिया। रेणु की माँ ने यह सब देखा और वह लौट गई।

नौकर रामू को बुलाने आया—"माँजी आपको बुला रही हैं।"

रामू एक गीत की धुन गुनगुनाता हुआ नीचे उतरा। मेज पर एक कप चाय और नाश्ता रखा था।

"चाय पी लो···।" धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में रेणु की माँ ने कहा।

"जी ··।" और रामू मेज पर बैठ गया।

"मास्टर बाबू···!"

"जी···।" रामू ने सिर उठाया तो देखा कि रेणु की माँ की आँखों में ऐसे भाव हैं जो उसे छलनी करके ही दम लेंगे। रामू को चाय कड़वी-सी लगी। "तुम्हारे कमरे में रेणु की जो फोटो है वह टेबल पर कैसे पड़ी थी?" रामू का माथा ठनका। उसने सोचा कि इस बुढ़िया ने देख भी लिया कि टेबल पर फोटो पड़ी थी। उसने कहा—"रेणु को मैंने वहीं पहुँचा दिया है, जहाँ वह थी। उसका वही स्थान है। वहीं वह अच्छी लगती है। टेबल पर तो वह ऐसी लग रही थी कि मानो स्थान-भ्रष्ट हो गई हो।"

"पर उतारी क्यों थी ?"

"साफ करने के लिए। उस पर काफी धूल-गर्द जम गयी थी।"

"तुम्हें वह फोटो कैसी लगती है ?"

"जैसी आपको।"

"मुझे तो अच्छी नहीं लगती, क्योंकि रेणु का चेहरा उसमें पूरा खिला नहीं।"

"हो सकता है।"

"यदि फोटो मुझे अच्छी जँचे तो ?"

"बताया न कि जैसी आपको जँचती है ठीक वैसी ही मुझे लगती है।"

"तुमने जब फोटो उतारी थी तो उसे साफ कर पकड़ा भी होगा और पकड़कर देखा भी होगा···।"

"उसे मैंने देखा था। फोटो इतनी सुन्दर थी कि मैंने चाहा कि फोटो-

ग्राफर की कला को चूम लूं। और मैंने ऐसा किया भी। मैं कला की कद्र करता हूँ। यदि मेरी माँ की भी फोटो ऐसी होती या फोटोग्राफर ने उसके बुढ़ापे की एक-एक झुर्री को साफ-साफ बताया होता तो मैं उस फोटो को चूम लेता। इसलिए कि उसके बीच एक कला की अन्तर्धारा है और सौन्दर्य उस अन्तर्धारा का प्राण है. सौन्दर्य है, जो सत्य बनकर प्रकृति के भिन्न रूपों मे प्रकट होता है।...." उत्तर देकर रामू का मन हल्का-सा हो गया और वह एक घूंट में ही ठंडी चाय पी गया। बिस्कुट वैसे ही पड़े रहे। रामू जब तक उत्तर दे रहा था तो उसकी आँखें सामने दीवार पर थी। रेणु की माँ ने उसे घूरा। छोड़ा हुआ तीर उसी रूप में वापस आ चुका था। कमरे से वह चली गई।

रामू के कमरे से रेणु की फोटो हटवा दी गई थी।

किसी ने कल्पना तक नही की थी कि एक दिन अपने शब्दों से आग बरसानेवाले नाथूलाल की यह हालत भी होगी। नाथूलाल के अतीत की छाया भी शायद उसके वर्तमान रूप से बेहतर थी। नाथूलाल के नाम पर लोगों के सामने अब था—एक क्षीणकाय लम्बा-सा व्यक्ति जिसके सब बाल सफेद हो चुके थे। उसके बाल बुरी तरह से बढ़े तथा उलझे हुए थे, दाढ़ी भी बढ़ गई थी। बहुधा वह मटमैली चादर से ही अपने शरीर को ढके रहता है। उस चादर मे जगह-जगह पैबंद लगे हुए थे। वह किसी से अब बात करना पसन्द नही करता। उससे यदि कोई बातें करने का प्रयास करे भी तो उसे हाँ·· हूँ·· में जवाब देकर वह टाल जाता है। बातों के सिलसिले मे ही बिना कुछ कहे-सुने वह आगे बढ़ जाता है। उसके जाने के बाद उसकी आँखों का भीषण सूनापन भुलाए नहीं भूलता। अपनी रिहाई के बाद वह इसी हालत मे अंबाझिरी और तिलनखेड़ी तालाब के आसपास घूमता रहता है। भीषण गर्मी, सर्दी और बरसात में लोगों ने उसे इसी प्रकार घूमते पाया है। तीखी गर्मी मे, मूसलाधार वर्षा मे वह एक ही जगह घंटों खड़ा रहता है। तिलनखेड़ी बगीचे की बेरियों के सघन जंगलों मे वह निरुद्देश्य भटकता फिरता है। शाम के समय लोगों ने उसे कई बार लगातार क्षितिज की ओर टकटकी

लगाकर ही बैठे पाया है। वह किसीसे मिलना भी नहीं पसंद करता। न ही किसी की बात सुनना उसे पसन्द है। लोगों में उसके लिए आदर है—परन्तु उन्हें समझ नहीं आता कि आखिर उसके लिए वे करें तो करें क्या? लोगों को उस पर दया भी आती है—परन्तु इस दया का मूल्य क्या? तिलनखेड़ी में उसका घर सूना और वीरान पड़ा है···जो खंडहर होता जा रहा है। कभी-कभार वह अपने घर की ओर मुड़ता अवश्य है। यदि किसी ने दयावश वहाँ उसके खाने-पीने को कुछ रख दिया हो तो उसे खा-पीकर वह सीधा अपने 'मिशन' पर निकल पड़ता है। अन्ततः वह वीरान इलाके में घूमता ही रहता है—निपट अकेला! किसी को नहीं मालूम कि वह क्या चाहता है? वह क्यों घूमता है? और घूम-घूमकर किसे ढूंढ़ता है? प्रकृति के विशाल प्रांगण में उसने अपने-आपको खो दिया है कुछ पाने के लिए। उसे पाने के लिए वह अपनी ही दुनिया में मस्त है। जैसे वह अपने-आपको खोजना चाहता है उस 'विराट' में वह घूमता है और घूम-घूमकर ही शायद उसे पाना चाहता है। कोई कहता है नाथूलाल पागल हो गया है, कोई कहता है कि वह साधू हो गया है—संत बन गया है। जितने मुंह उतनी ही बातें।

ऐसे असफल आदमी को भला जीने का हक भी क्या है? जिसने जिंदगी में न एक पैसा कमाया और न ही औलाद पैदा की– उसके जीवन का दुनिया की भाषा में मूल्य ही क्या? आज उसके यदि नाती-पोते होते तो क्या वे किलकारियाँ मारते उसके आस-पास न दौड़ते? लोगों के जीवन का जमा-खर्च ही औलाद पैदा करना और पैसे कमाना है। नाथूलाल ने कुछ भी तो नहीं किया। यह व्यक्ति ही भटका हुआ था यदि आज वह भटकता फिरता है तो उसमें नई बात कौन-सी है? परन्तु इन सबके बावजूद भी तिलनखेड़ी में ऐसे पागलों की कमी नहीं है जो नाथूलाल की चिंता में अपना सिर खपाते हैं– जिन्हें नाथूलाल का खयाल आते ही हाथ का कौर हाथ ही में रह जाता है। भोजन छोड़कर उठ बैठते हैं—सोचते हैं जब नाथूलाल ने भोजन नहीं किया तो उन्हें भोजन करने का क्या हक है? बस्ती से कितने ही लोग नाथूलाल के लिए रोटियाँ बांधकर ले जाते हैं और जंगलों की खाक छानकर उसका पता

लगाकर उसे रोटी खिलाकर ही लौटते हैं। रोटी खिलाने के बाद दो-एक ने रुँधे गले से हाथ जोड़कर नाथूलाल से प्रार्थना भी की थी—"बाबा क्यों अपने-आपको बरबाद कर रहा है—लौट आ—तेरा घर तुझे बुला रहा है। बस्ती के लोग तुझे बुला रहे हैं "नत्थू लौट आ।" परन्तु नत्थू भी एक उजड्ड था कि चुपचाप दूसरी ओर मुँह किए चादर से अपने हाथ पोंछता हुआ दूसरी ओर निकल जाता था। जंगल में घास काटने वालियों ने कई बार नाथूलाल को सूखी घास पर अस्त-व्यस्त दशा में सोते हुए पाया था—उन औरतों ने हाथ जोड़-जोड़कर नाथू को समझाया था, परन्तु आदमी का साया करीब आते ही नाथू दूर सघन पेड़ों में कहीं विलीन हो जाता—आखिर ऐसे आदमी के लिए कौन चिंता करता? कौन रोता? लोगों के पास केवल एक यही काम तो नहीं था।

इधर रेणु के पति के आने के कारण, पिछले दो दिनों से रामू रेणु से खुलकर नहीं मिल पाया।···जाने का भी समय आ गया। रेणु को स्टेशन तक छोड़ने सब गये। डिब्बा नागपुर से ही लगता था, इसलिए रेलवे [illegible] को पार करते हुए कुली ने सीधा डिब्बे में ले जाकर ही सामान रखा। रामू एक भीषण चुप्पी साधे हुआ था। रेणु के पति ने कहा, 'सुना है [illegible] कि आर्टिस्ट सदा अपने मूड में रहते है, लेकिन आपको देखकर [illegible] हो गया। आपको मैंने हर दम डिप्रेस्ड मूड में ही देखा है। [illegible] में पान चबाते हुए कहा—"अरे भइया, ये गाने-बजाने वाले [illegible] होते हैं।" कर्नल ने अपनी पत्नी को घूरकर देखा। रामू के चेहरे पर एक फीकी मुस्कान खिच गई। रामू वहाँ से हटकर दूर [illegible]।

कर्नल चटर्जी परिवारसहित वहाँ से खिसक [illegible]। रामू डिब्बे में [illegible] आया। रेणु ने अपने पति को रेलवे टाइम टेबल [illegible] ने रेणु का हाथ दबाते हुए कहा, "अब की कलकत्ता से [illegible] बढ़ाकर लौटना।"

"मेरी चर्बी तो तभी बढेगी, जब तुम पर [illegible] और जब तुम्हारा विवाह होगा उसके पश्चात् ही [illegible] यानी तुम्हारी प्रसन्नता का अनुमान कर प्रतिक्रिया [illegible]

होने का प्रयास करूँगी।"

"मेरा विवाह...!"

"क्यों, इसमें नई बात क्या है ? इसके नाम से तुम बिदकते क्यों हो ? उम्र निकल गई तो इसके लिए भी पछताओगे।...देखना तुम्हारे सामने रखी हुई दीपशिखा किसी दिन जलते-जलते पूरी तरह समाप्त न हो जाए।"

"कर्नल चटर्जी खैर यह भी कृपा कर देंगे।" रामू सोच रहा था कि यदि गाड़ी लेट हो तो कितना अच्छा हो ! यदि रेलवे को रामू की इच्छा पूरी करने का अवसर दिया जाता तो शायद भारत-भर की रेलगाड़ियाँ चलती ही नहीं।

कलकत्ता मेल आ गया। उसमें डिब्बा जुड़ा। गार्ड ने सीटी दी और गाड़ी चल दी।

रेणु का चेहरा धीरे-धीरे छोटा पड़ता गया। उसके बाद दूर तक पटरियों पर रेल क्रमशः छोटी होती-होती एक बिन्दु बनकर ओझल हो गई।

रेणु देखती है कि रेल से बाहर झाड़-झंखाड़, मैदान आदि क्षेत्र उसकी विपरीत दिशा में जा रहे हैं, या वह विपरीत दिशा को जा रही है। लेकिन देखती है कि और भी तो कई लोग साथ हैं।

कर्नल लौट रहे हैं। रामू की बाँह पकड़े रेणु की माँ फटे स्वर में कहती है, "वह अपनी ओर से मज़ाक कर रही थी।

"ऐ मास्टर बाबू...अब तुम भी शादी करवा लो ..कब तक पागलों सरीखे गाते-बजाते फिरोगे ?"

"वह भी हो जायेगी...रेणु की माँ...तुम देखती भर जाओ।" चटर्जी ने रामू को अपनी बगल में भरते हुए कहा।

